हमारी विरासत

(शिमला तथा उसके आसपास के प्राचीन भवन)

डा. अशोक जेरथ

एकीकृत हिमालयी अध्ययन संस्थान
(यू०जी०सी० सैन्टर ऑफ एक्सीलैंस)
हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला–171005
के लिए प्रकाशित

हमारी विरासत

(शिमला तथा उसके आसपास के प्राचीन भवन)

अशोक जेरथ

एकीकृत हिमालयी अध्ययन संस्थान
(यू०जी०सी० सैन्टर ऑफ एक्सीलैंस)
हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला--171005
के लिए प्रकाशित

विवरण

अपनी ओर से

शिमला में प्रवास अनेक बार हो चुका है, पहले सर्विस के दौरान ही यहां आना हुआ तो दूसरी बार भी यहां आने का मन बना लिया था। वस्तुतः हिमाचल सदा से ही मेरे आकर्षण का केन्द्र रहा है—दूसरा घर। पर इस बार, दूसरे मरहले में, कार्यालयी व्यस्तता के बावजूद सरकार द्वारा घोषित विरासत में लिए गए भवनों को ज्यों ज्यों देखा अभिभूत होता रहा। इनका अद्भुत स्थापत्य वर्तमान उभरते कंकरीट के जंगल में अपना वर्चस्व स्थापित करता लगता है। अक्सर ये भवन शिमला के मौसम को देखते हुए धज्जी दीवारों से निर्मित किए गए थे। खुले गलियारे, कलात्मक पोर्च, ढलुवां छतें और एक—दूसरे से मिलते प्रकोष्ठ, भीतर से ही दूसरे माले तक चली जातीं सीढ़ियां, काष्ठ फलकों से सज्जित आन्तरिक भीत्तियां एवम् फर्श सभी का निर्माण जहां के मौसम को सामने रख कर किया गया था। इन भवनों का विलक्षण 'ले ऑऊट' निश्चय ही भवन निर्माण के अनेक सौपानों की ओर संकेत करता है। अक्सर मलबे, पत्थर और काष्ठ शहतीरों को बीनकर बनाई गई दीवारें भीतर की ऊर्जा को भीतर ही समाए रखती हैं। अनेक भवनों में प्रवेश द्वार, खिड़कियां और खुले गलियारों का निर्माण इस प्रकार किया गया है कि दिशा भ्रम न होकर धूप सारा दिन भीतर आकर अपना वर्चस्व स्थापित कर सके और उसकी ऊर्जा को हर समय, जब तक कि सूर्य अस्त नहीं होता, इन भवनों में रहने वाले महसूस कर सकें। इस ऊर्जा को धज्जी दीवारें अपने आप में जज़व किए रहतीं हैं।

लगभग उन सभी भवनों को इस 'प्रोजेक्ट' के अन्तर्गत लिया गया है जो सरकार द्वारा विरासत के अन्तर्गत लिये गये हैं और जो सौ वर्ष से ज्यादा पुराने हैं। व्यवस्था ने तो वहां विरासत की पट्टियां लगाकर अपना कर्त्तव्य निभा दिया है पर उनकी जर्ज़र हालत पर उसे तर्स नहीं आता लगता—वैयक्तिक प्रयासों से कुछ भवन बचे जरूर हैं पर अधिकतर धूल—धूसरित होकर भग्नावशेषों में बदल गए हैं,मात्र ढांचे खड़े हैं तो अनेक जलकर राख हो गए हैं। कुछेक जो विभागीय संरक्षण में सुरक्षित हैं उनका भी जीर्णोद्धार आवश्यक हो गया है। पर इस ओर व्यवस्था का ध्यान नगण्य है।

यद्यपि विरासत में लिए गए लगभग सभी भवनों को इस कार्य के अन्तर्गत लिया गया है तथापि ऐसे भी अनेक भवन, जो बहुत पुराने हैं और अपने विलक्षण स्थापत्य के लिए प्रसिद्ध हैं, और जिनकी ओर व्यवस्था का ध्यान किसी कारणवश नहीं गया, भी इस कार्यक्षेत्र में लिए गए हैं।

बहुत से भवनों का इतिहास अन्धेरे में गुम है। यद्यपि इक्का—दुक्का प्रयास इस ओर हुए हैं तथापि समग्र प्रयास की जरूरत बहुत अरसे से महसूस की जा रही थी। इस ओर आकाशवाणी और दूरदर्शन के माध्यम से इन पर दस्तावेजी रूपकों की श्रृंखला बनाने और प्रस्तुत करने का सराहनीय प्रयास रहा है। इन शब्दों के लेखक ने स्वयं अनेक स्थानों पर जाकर इनके बंद इतिहास को खोला है। इस ओर कभी अंग्रेजों का आंशिक प्रयास अवश्य रहा है पर समग्र रूप से कभी कोई गम्भीर प्रयास नहीं किया गया।

इस कार्य को सरअंजाम देने के लिए जो भवन चुने गए हैं जिनके इतिहास, स्थापत्य, इन भवनों के साथ जुड़ी हस्तियों आदि का दस्तववेजी लेखा—जोखा देने का यह प्रयास आशा है पाठकों को रुचिकर लगेगा। लेखन के साथ—साथ इनके दस्तावेज बनाने के लिए इनकी तस्वीरों को भी अपने वर्तमान स्वरूप में लिया गया है। एक प्रयास यह भी रहा है कि अपने निवर्तमान स्वरूप को भी दस्तावेज में बांधा जाए इसके लिए जितने स्रोत थे उनको खंगाल लिया गया है।

यद्यपि यह कार्य शिमला और उसके आसपास के भवनों को लेकर शुरू किया गया था पर पर्वत सुन्दरी

डलहोजी के डेढ़ सौ वर्ष पूरे होने पर डलहोजी और वहां के दो गिरजाघरों को भी इसमें लिया गया है। इस कार्य को सम्पन्न करने के लिए अनेक लोगों का सहयोग रहा है उनकी सूची परिशिष्ट में दी जा रही है। विशेष तौर पर श्री एम0एल0 वर्मा,निजी सहायक के प्रति अभारी हूं जिसके सहयोग के बिना यह कार्य शायद सम्भव न हो पाता।यह कार्य आगे के शोध के लिए आधार सिद्ध होगा ऐसी आशा है। इसके प्रकाशन में एकीकृत हिमालयी अध्ययन संस्थान के योगदान के लिए आभारी हूं। आभारी हूं इसके निदेशक प्रोफेसर वर्मा और संस्थान के अति सकिय प्रशासक श्री प्रेम वर्मा का जिनके सहयोग के बिना यह कार्य सम्भव नही था।

डॉ0 अशोक जेरथ
शिमला

भवनों के निर्माण की प्रक्रिया और शिल्प

शुरू शुरू में अक्सर एक बसेरा ढूंढने की फिराक में जैसे तैसे घर का सामान जुटाकर एक घरौंदा बना लिया जाता है ,बहुधा शिल्प की ओर ध्यान नहीं दिया जाता। शुरू में शिमला में भी ऐसे ही घरौंदे बनकर तैयार हुये।वैसे भी उन दिनों शिमला में सुविधाओं का नितांत अभाव था। उन्नीसवीं शताब्दी के शुरू में न ही मार्ग थे और न ही रेल की ही सुविधा ही उपलब्ध थी। अक्सर सामान आदि खच्चरों की पीठ पर ढोया जाता था। अंग्रेज घोड़ों या खच्चरों पर ही सवार होकर दूर का सफर तय करते थे और अंग्रेज महिलायें जिन्हें अक्सर मेमें कहा जाता था,पालकियों में बैठकर पर्वतीय सफर तय करतीं थीं कि शिमला पहुंचने पर उनके शरीर के अंग दुखने लगते थे।ऐसे में भला शिल्प की बात कैसे सूझती ? इतिहास गवाह है कि कैनेडी हाऊस नामक भवन जिसे प्रथम भवन होने का गौरव हासिल हुआ था वस्तुतः लकड़ी के शहतीरों पत्थरों और गारे से बनाया गया था और उन दिनों इसे लकड़ी और गारे की कोठी की संज्ञा के साथ अभिहित किया गया था। धीरे धीरे जब यातायात के साधन जुटे तो सुविधायें भी पनपने लगीं।इन सुविधाओं के होने से कलात्मक मन भी करवट लेने लगे और भान्ति भान्ति के कलात्मक भवनों का निर्माण होने लग पड़ा था।

मुख्यतः तीन तरह की शैलियों में ये भवन निर्मित किये गये थे। नियो गोथिक शैली ,ब्रिटिश विक्टोरियन शैली और जियार्जियन शैली। एक स्थानीय प्रभाव से भी प्रभावित काठकुणी शैली में धज्जी दीवारों की सहायता से निर्मित भवन उन्नीसवीं शताव्दी में बनाये गये थे।

बहुत कम लोग जानते हैं कि 19सवीं और बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में गोथिक शैली के भवन निर्माण में एक बार फिर प्रयास किया गया था। वस्तुतः गोथिक शैली के भवनों का निर्माण मध्ययुगीन युरोपीय देशों में तेहरवीं–चौहदवीं शताब्दी में हुआ था। सर्वप्रथम फ्रांस में,जनसंख्या से परे ऐसे गिरजाघर बनाए गए जो खूब खुले और ऊंचे हालनुमा प्रकोष्ठ रखते हों और जिन की पिरामिडल, 'डोम शेप्ड' छतें दूर से ही देखीं जा सकतीं थीं। अक्सर इनकी खिड़कियां मेहरावदार होतीं और इनकी छतों का भार भी लम्बी मेहरावों पर ही टिका होता। पत्थरों को तराशकर दीवारें चुनी जातीं, पर ये दीवारें ऊंची और सशक्त अवश्य होतीं थीं पर छतों का भार इनमें बनी खिड़कियों की मेहरावों पर ही होता। ये मेहरावें ऊंपर से तीखी 'डोम शेप्ड' होतीं। अनेक बार दीवारों को बीच में काट कर मेहरावों पर बरामदे की छत बाहर की ओर बढ़ाकर भीतर के हाल कमरे के साथ गलियारों का भी निर्माण किया जाता था ताकि इन गिरजाघरों में पूजा और प्रवचन के समय यदि भीतर का स्थान कम हो जाए तो बाहर भी लोग खड़े हो सकते थे या बैठ सकते थे। अक्सर इन गलियारों को भीतर के हॉल कमरे के साथ बड़े–बड़े प्रवेश द्वारों या काष्ठ फलकों से जोड़ा या अलग किया जा सकता था। जहां पादरी आदि धर्म किया, प्रवचन आदि में संलग्न होते, उस दिशा की खिड़कियों के रंगीन शीशे बाईबल तथा उससे सम्बंधित कहानियों के नायिकों और नायिकाओं के चित्रों से संलग्न होते इन्हें 'मोज़ैक वर्क' कहा जाता।

वास्तविकता यह है कि इस शैली में पहले गिरजाघर ही बनाए जाते थे पर बाद में इसके शिल्प को नदी किनारों पर निर्मित की जाने वाले 'कॉस्लनुमा' भवनों में भी प्रयोग में किया जाने लगा। इसका उदाहरण फ्रांस में शीन नदी के किनारे बना 'कॉस्लनुमा' महल है जिसे 'चैट्यू' की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। बाद में ग्रेट ब्रिटेन में, 'कन्ट्री साईड' अर्थात ग्राम प्रान्तर में ऐसी अनेक इमारतें बनाई गई कि इस शिल्प को विक्टोरिया कालीन बने भवनों में भी प्रयोग किया जाने लगा था। हां यहां कहीं तो इन मेहरावों का सहारा लिया जाता तो कहीं मात्र दीवारों पर ही ढालुआं छतें टिकी होतीं। इन कॉस्लनुमा भवनों और गिरजाघरों की इतनी चर्चा हुई

कि इनके शिल्प को रईस लोगों ने अपने भवनों को उतारना शुरु कर दिया था पर विशुद्ध गोथिक शिल्प तथा स्थापत्य गिरजाघरों तक ही सीमित रहा। बाद में 19सवीं शताब्दी के अंत में एक बार फिर इस शैली ने जोर पकड़ा। अब यह अपना परिष्कृत रूप लेकर सामने आई–इसे 'नियो गोथिक'शिल्प अर्थात नई गोथिक शैली कहा गया। इस शिल्प में ढले अनेक गिरजाघर हिमाचल में भी वजूद में आये जिनमें से रिज, शिमला में स्थित काईस्टचर्च, कैंटोनमेंट में स्थित कैथोलिक चर्च तथा उसके पास ही स्थित दूसरा चर्च भी इसी शैली में बनाया गया है। पर इसका सर्वोत्तम उदाहरण अपर धर्मशाला, फोरसिथगंज में स्थित गिरजाघर को लिया जा सकता है। कसौली का गिरजाघर भी इसी प्रकोष्ठ में रखा जा सकता है। शिमला या इसके आस–पास ब्रिटिश शैली के अनेक भवन 19 सवीं शताब्दी के मध्य और अंत में निर्मित किए गए लेकिन कहीं पर भी इस शिल्प का अनुसरण नहीं किया गया। मात्र एक भवन को छोड़ कर– और यह भवन है 'सेंटनिनियंज' जो अभी हाल में ही तीन भवनों पर आधारित 'ब्रिटिश शिमला रिजॉर्ट' का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बना है।वस्तुतः इस रिजॉर्ट में बने तीन भवन तीन अलग अलग शैलियों का प्रतिनिधित्व करते दीखतें हैं। 'सेट निनियज' भवन जैसे कि नाम से ही लगता है कभी गिरजाघर रहा होगा।इसका स्वरूप भी गिरजाघर की तरह ही लगता है।इसकी छत एक वृहद् पवित्र क्रास की ओर संकेत करती दीखती है। इसकी खिड़कियां भी मेहरावदार हैं और पिरामिड के आकार की ढालुआं छत स्थानीय स्लेटों से ढकी है। दूसरा भवन जो सबसे ऊपर के क्षेत्र में स्थित है निश्चय ही ब्रिटिश विक्टोरियन शैली का अद्भुत नमूना कहा जा सकता है।

ब्रिटिश विक्टोरियन शिल्प उन्नीसंवीं शताव्दी के मध्य में विकसित हुआ था।यद्यपि भवन निर्माण की यह शैली ब्रिटेन के अनेक नगरीय परिवेशों में तीन दशक पहले से ही स्थापित हो चुकी थी तथापि चर्चा में यह बाद में आई।वस्तुतः यह मध्ययुगीन शाश्वत विक्टोरियन शैली का ही आधुनिक स्वरूप था जो और भव्यता और विशालता लेकर सामने आया। अर्धकाष्ठ के कलात्मक तिकोने प्रकोष्ठ,शास्त्रीय एवम् परम्परागत छतरीनुमा बाहर की ओर खुलती ख़िड़कियां ,सुर्ख ईंटों तथा पकी मिट्टी के फलकों के साथ सज्जित गलियारे और जालीदार कलात्मक कास्ट लोहे के पोर्च इन भवनों को भव्यता प्रदान करते हैं।ये भवन अपने अन्यतम सौपानों में एक ओर तो ग्रामप्रान्तर में बने विशाल भवनों और भवन समूहों की ओर संकेत करते हैं उदाहरण स्वरूप विख्यात वास्तुशिल्पि रिचर्ड नॉरमन शॉ द्वारा बनाया गया बंगला तो दूसरी ओर कंजूसी से बनाये गये घर जिनमें से कठिनता से कोई भव्यता झलकती है। और इन दोनों स्वरूपों के बीच अनेक प्रकार के भवनों का निर्माण इस शैली को भव्यता और विशदता प्रदान करता रहा। ग्लेन इस शैली का अन्यतम उदाहरण कहा जा सकता है। दो मालों में विला स्वरूप लिए यह भवन नैसर्गिक परिवेश में ग्रामप्रान्तर में ढला इस वास्तुशिल्प का अनुपम नमूना कहा जा सकता है। इस भवन पर व्यौरे अन्यत्र दिये गये हैं। विशेषकर माटी और पत्थरों से बनी विशुद्ध ग्रामीण परिवेश में जीवंत, धरती से जुड़ी दुमंजिला यह इमारत स्थानीय शिल्प का प्रतिमान कही जा सकती है।पर यह इमारत ऊपर कहे गये दोनों भवनों से कहीं ज्यादा मौसम 'प्रूफ' है क्योंकि यह इमारत विशुद्ध मिट्टी और लकड़ी व बांस से बनाई गई है।जो गर्मियों में न ज्यादा गर्म होते हैं और न ही सर्दियों में ज्यादा ठण्डे ही रहते है। वस्तुतः यह इमारत ग्लेन के मालिक ने कभी अपने नौकरों के लिए बनवाई होगी।

तीसरी तरह का वास्तुशिल्प जियार्जियन शिल्प के रूप में लिया जा सकता है। यह भवन निर्माण का सहज और सादा स्वरूप है जिसमें खुले गलियारों,हॉल प्रकोष्ठों ,बाहर निकली हुई गैलरियों पर बनी ढालुआं छतों से सर निकालतीं चिमनियों को देखा जा सकता है। अक्सर इस शिल्प में बने भवनों के चहुं ओर खिड़कियां सुशोभित होतीं हैं।राजकुमारी अमृतकौर द्वारा बनाई गई समरहिल में कोठी इसका ज्वलंत उदाहरण है। इसके

व्यौरे भी अन्यत्र दिये गये हैं।

अक्सर शिमला में पुराने भवनों को ब्रिटिश विक्टोरियन शिल्प पर आधारित बनाया गया हैं। पर ऐंसा नहीं कि वे इस शैली पर पूरा उतरतें हों। वस्तुतः ये भवन जरूरत के अनुसार परिवर्तित शिल्प में भी मुखरित हुए हैं। कहीं कहीं पर विक्टोरियन और जियार्जियन शैलियों का भी मिला जुला स्वरूप मिलता है। और अनेक भवनों में स्थानीय धज्जी दीवारों को इस्तेमाल कर ताप को बांधा गया है। होटल ओबराय कलार्क का भवन उदाहरण स्वरूप लिया जा सकता है।

हम कल के शिमला की बात कर रहे थे पर आज इनमें से कोई भी शैली भवन निर्माण में इस्तेमाल नहीं होती। हां पुराने भवनों की मुरम्मत अवश्य उनकी बनावट को सामने रखकर की जाती है अन्यथा अब तो चारों ओर कंकरीट के जंगल उगने लगे हैं। वक्त रहते हमें सम्भलना पड़ेगा।ये कंकरीटं के बने मकान शॉकप्रूफ नहीं होते।जरा भी झटका लगे तो ईश्वर ही मालिक है जबकि परम्परागत शैलियों में बनाये गये घर न केवल शॉक एवजार्वर हैं अपितु मौसम के हिसाब से भी मुफीद हैं।अब कहीं कहीं पर दुबारा इन परम्परागत भवनों का निर्माण होने लगा है। धर्मशाला में विदेश से स्थापत्य में शिक्षा हासिल कर आई एक विदेशी महिला ने स्थानीय चीजों जैसे बांस,मिट्‌टी,गारे और गोबर मिले मिट्‌टी वाले भूसे से प्रकोष्ठों का निर्माण और लिपाई करके भवन बनाये हैं जो अति लाभदायक सिद्ध हुए हैं। शिमला में भी किसी ऐसे ही उद्यमी की दरकार है जो इस ओर ध्यान देकर लोगों को परम्परागत भवन बनाने के लिए प्रेरित कर सके ताकि और ज्यादा कंकरीट के जंगल पैदा न हो सकें।

■■■

With Best wishes,

Veena Jerath

22. 12. 2018

शिमला में निर्मित प्रथम भवन

'कैप्टेन कनेडी,जो कि प्रथम पर्वतीय इलाकों के प्रशासक का राजनीतिक ऐजेन्ट था, उसने सर्वप्रथम, 1819 ई0 में एक काटेज बनाई थी जो काष्ठ और मलबे से मिलकर बनाई गई थी। वस्तुतः इसे सर्वप्रथम कैप्टेन कनेडी के सहायक लैफटीनैंट रॉस ही ने तैयार करवाया था। बाद में कैप्टेन कनेडी का वह आवास होने से कैनेडी हॉऊस के नाम से विख्यात हुआ। उस समय इस कॉटेजनुमा भवन के आगे पीछे बीहड़ जंगल था। आज भी उस प्रथम काटेजनुमा कैनेडी हाऊस की तस्वीरें उपलब्ध है जो बीहड़ वनों से घिरा हुआ दर्शाया गया है। लेकिन कुछ लोग 'कॉन्स्टेंन्शिया' जिसे बाद में 'मैन्स' भी कहा गया, को शिमला का प्रथम भवन कहते हैं जो युनियन चर्च के पास स्थित है तो 'स्टर्लिंग कॉस्ल' को दूसरे स्थान पर मानते हैं और कैनेडी हॉऊस को तीसरे स्थान पर रखते हैं। लेकिन शिमला 'पास्ट एण्ड प्रेजेन्ट' के लेखक एडवर्ड जे. बक्क बड़ी शिद्दत के साथ 'कैनेडी हॉऊस' को ऐतिहासिक दस्तावेजों के आधार पर स्थापित करते हैं।

अलबत्ता एक अन्य दस्तावेज के अनुसार 'क्राईस्ट चर्च लॉज' जो कि 'क्राईस्ट चर्च' के पास एक खूबसूरत दुमंजिला इमारत है ,जिसको आजकल सिद्धोवाल भवन कहा जाता है शिमला की प्रथम इमारत कहने और स्थापित करने की कोशिश रही थी। 15 मेई 1910 ई0 में अर्ल रॉबर्ट द्वारा अर्कडीकॉन निकोल्लस को 'क्राईस्ट चर्च लॉज' के पते पर लिखा गया पत्र दिलचस्प है। पत्र इस प्रकार है–''वह घर जिसमें अभी आप रह रहे हैं–मेरे पिता ने बनवाया था–1826 ई0 के करीब। तब उस समय शिमला में यही एक भवन था जिसे वे 'बैलीहैक' से अभिहित करते थे। अगले वर्ष अर्थात सन् 1827 ई0 में लॉर्ड अमहर्स्ट प्रथम गवर्नर जनरल के तौर पर वहां रहे। अर्ल अमहर्स्ट ने इसके बदले में मेरे पिता को एक प्लेट दी थी जो आज भी मेरे पास है।''

इस लॉज में चर्च के मुख्य पादरी वास करते थे। यह भवन आज दो हिस्सों में बंट गया है। वस्तुतः दो सेट नीचे हैं और दो सेट ऊपर हैं। भीतर घुसते ही पोर्च है जहां से सीढ़ियां ऊपर दूसरे माले की ओर जातीं हैं। इस पोर्च को बैठक के तौर पर सजाया गया है। इसके साथ बाईं ओर का खुला कमरा ड्रांईग रूम के तौर पर इस्तेमाल किया जाता है और इसके साथ लगता एक छोटा प्रकोष्ठ 'बेडरूम' के तौर पर इस्तेमाल किया जाता हैं तो पोर्च के दाईं ओर खुला कमरा डाइनिंग रूम के तौर पर इस्तेमाल होता है और उसके साथ लगती रसोई है। एक तरह से पोर्च के दोनों ओर एक ही अनुपात में ये प्रकोष्ठ हैं। बिल्कुल इसी प्रकार का सेट पश्चिम दिशा में भी है। ऊपर बेडरूम हैं।

धज्जी दीवारों से बनी यह इमारत 179 वर्ष पुरानी होने पर भी इसके रख–रखाव के कारण अभी भी सुव्यवस्थित है। बाहर उत्तर दिशा की ओर खुला प्रांगण है जहां कभी लॉन रहा होगा पर अब धूप सेकने के लिए मात्र आंगन है।

यह भवन उचित स्थान पर रिज के बिल्कुल पीछे वाले पठार पर क्राईस्ट चर्च के साथ लगता है। सन् 1946 ई. में जॉह्न हर्टन नामक किसी अंग्रेज ने सिद्धोवाल परिवार को बेच दिया था। सिद्धोवाल परिवार शाही परिवार है जिसके रिशते पटियाला शाही घराने के साथ रहे हैं।

'क्राईस्टचर्च लॉज' की जब बात हो रही है तो आईए 'क्राईस्टचर्च एनेक्सी' की भी लगे हाथ बात कर लें। यह एक दुमंजिला खूबसूरत भवन है जो क्राईस्ट चर्च के पार्श्व में रिज की उत्तर दिशा में स्थित है जहां से रिज शुरू होता है। स्लेटी पत्थरों से इसकी बाहिरी भीत्तियां निर्मित की गईं हैं जो खिड़कियों के ऊपरी फ्रेमों तक चलीं गईं हैं। वस्तुतः ये दीवारें पहली मंजिल तक चलीं जाती हैं जिसके बाद धज्जी दीवारों का कलात्मक स्वरूप

शुरू होता हैं काष्ठ के शहतीरों और मलवे से बनी ऊपरी मंजिल की दीवारों को ढालुआं टीन की लाल छत इसे शैट्यु का कलेवर प्रदान करती हैं। प्रवेश–द्वार के ऊपर, दूसरी मंजिल की खिड़की गैलरीनुमा छतरी बनाती इसे खूबसूरती प्रदान करती हैं।

ऐतिहासिक दस्तावेजों से हमें पता चलता है कि इसका निर्माण सन् 1857 ई. में किया गया था। वस्तुतः चर्च में मुख्य अनुष्ठानों के समय खूब भीड़ रहती थी फलस्वरूप प्रेयर में सभी श्रद्धालु भाग नहीं ले सकते थे अतः यह 'एनेक्सी' तैयार की गई। नीचे पूरा हाल है जहां प्रेयर होती थी। पोर्च बहुत छोटा है जहां से लकड़ी की खुली सीढ़ियां ऊपर जाती हैं। ऊपर एक हाल कमरा है और उसके आगे पश्चिम दिशा में एक प्रकोष्ठ हैं। इस हालनुमा कमरे में 'कॉयर' गाये जाते थे और हाल कमरे के साथ लगे प्रकोष्ठ में उन लोगों के बैठने की सुविध ा थी जो धूम्रपान करना चाहते थे। इसी हॉल कमरे के साथ दक्षिण दिशा में एक अन्य गलियारे की तरह प्रकोष्ठ है जो विशिष्ट अतिथियों और महिलाओं के बैठने के लिए प्रयोग में लाया जाता था।

सन् 1910–11 ई. में इसे एक पुस्तकालय में बदल दिया गया जिसे 'स्टेशन लाईब्रेरी' का नाम दिया गया। इस पुस्तकालय में अनेक अनुपलब्ध पुस्तकें अंग्रेजों द्वारा दीं गईं। उस समय लगभग पांच हज़ार पुस्तकें इस पुस्तकालय में थीं।

देश की आज़ादी के साथ–साथ अंग्रेज चले गए तो यह पुस्तकालय शिमला नगर निगम के प्रशासन में आ गया। जो सन् 1986 ई. तक रहा। सन् 1986 में इसे स्थानीय शिक्षा विभाग को स्थानांतरण कर दिया गया। जितने भी कर्मचारी थे–पुस्तकालय अध्यक्ष, सहयोगी, रिस्टोरर, दफतरी आदि की सेवायें भी शिक्षा विभाग को स्थानांतरण कर दी गईं। इसे 'स्टेट लाईब्रेरी'का रुतबा दिया गया। हिमाचल में मात्र एक ही स्टेट लाईब्रेरी है। पर स्थान के अभाव के कारण आधा पुस्तकालय गांधी भवन में स्थानांतर किया गया। इस समय इन दोनों पुस्तकालयों में लगभग 70000 पुस्तकें हैं। रिज पर 'एनेक्सी' में 25000 पुस्तकें हैं और गांधी भवन में 45000। नीचे के हाल में पुस्तकों की अलमारियें भरीं पड़ीं हैं। यहां से किताबें सदस्यों को आबंटित होती हैं। ऊपर का हाल कमरा बच्चों के लिए बैठकर पढ़ने आदि के लिए और एक हिस्सा अनुसंधित्सुओं के लिए है जहां बैठकर वे किताबें पढ़ सकते हैं, नोट बना सकते हैं। पश्चिम दिशा में स्थित प्रकोष्ठ में रिसर्च के लिए अनुपलब्ध पुस्तकें रखीं गईं हैं और हाल कमरे के दक्षिण दिशा वाला कमरा पुस्तकालय अध्यक्ष का है जहां कभी प्रतिष्ठित मेहमान और महिलायें बैठा करतीं थीं। वर्तमान पुस्तकालय अध्यक्ष श्री एस. के. डिडवाल स्वयं खूब रुचि लेते हैं पर उनके हाथ बन्धे हैं। कुल सालाना बजट 15000/– रुपये हैं जिनमें टेलीफोन, बिजली आदि का खर्चा भी निकालना पड़ता है अतः स्वयं कोई किताब नहीं खरीद सकते। किताबें उन्हें राजा राम मोहन राय ट्रस्ट द्वारा भेजीं जातीं हैं। स्टॉफ की कमी और बजट के अभाव के कारण जो चाहते हैं कर नहीं पाते। अनुपलब्ध पुस्तकें जो उन्हें अंग्रेजों से मिलीं थीं बहुत बुरी हालत में हैं पर वे चाहकर भी उन पुस्तकों को दुरुस्त नहीं कर सकते। इस समय कुल 6200 सदस्य इस पुस्तकालय के हैं जो निरंतर पुस्तकें ले जाते रहते हैं।

इस प्रकार शिमला के प्रथम भवन के विवाद में तीन प्रमुख भवन लिए जाते है–एक 'कैनेडी हॉऊस' जिसकी चर्चा हम ऊपर कर आये हैं और ब्योरे आगे भी मिलेंगे, दूसरा भवन 'कॉन्सटेन्शिया' जिसे 'मैन्स' की संज्ञा से भी जाना गया था और तीसरा भवन 'क्राईस्ट चर्च लॉज' था जिसकी चर्चा हम ऊपर कर आये हैं। 'कॉन्सटेन्शिया' जिसे मैन्स' की संज्ञा से भी अभिहित किया जाता है वर्तमान में 'यंग वुमैन्स क्रिश्चियन एसोसिएशन' भवन के तौर पर जाना जाता है। यह भवन युनियन चर्च के पार्श्व में, ऊंचे पठार पर स्थित हैं खुले हालनुमा कमरे गलियारों से युक्त यह भवन जियार्जियन शैली में बनाया गया है। धज्जी दीवारों से युक्त इस भवन के फर्श काष्ठ–फलकों से बनाए गए हैं।

सन् 1830 ई0 तक शिमला में कुल तीस घर थे जो 1841 ई0 में एक सौ की संख्या तक पहुंच गए थे तो 1866 ई. तक इनकी संख्या 290 हो चुकी थी और सन् 1880–81 में इनकी संख्या 1141 तक पहुंच चुकी थी। मार्च 1901 ई0 में शिमला और कुसुम्पटी में कुल मिलाकर 1847 घर थे।

इन भवनों में अनेक के नाम बड़े अद्‌भुत थे कि उनके भवन होने का गुमां तक नहीं होता–मसलन 'ईगलस मांउट', 'वॉयलेट हिल', 'रलेनार्म' जिसे स्थानीय लोग 'लेडी क्लब' कहते थेः 'स्ट्राबेरी हिल' 'रेस व्यू', 'अम्बरोजिया', 'बेल्लीहारनेस्स', 'द'सिडरस', 'पाईन हाउस' आदि। धीरे धीरे 'लॉज' शब्द का प्रयोग होने लगा फिर 'काटेज' और 'विला' शब्द भी प्रचलित होने लगे। इसी प्रकार 'कॉस्ल भी गॉटर्न और बेनटिक्क के साथ जुड़ कर 'गार्टन कॉस्ल' और 'बेनटिक्क कॉस्ल' हो गए।

इन भवनों में 'स्ट्राबेरी हिल' के साथ अनेक दिलचस्प घटनायें जुड़ी हैं। 'स्ट्राबेरी हिल' छोटे शिमले के बाजार से निचली तरफ एक सुन्दर बंगला रहा है जो उन दिनों कर्नल टेप्प के पास था। कर्नल टेप्प कैप्टन कनेडी के बाद पर्वतीय रियासतों का पुलिटीकल एजेन्ट बनकर आया था। बाद में वह बार्नस कोर्ट' चला गया। 'स्ट्राबेरी हिल' को बाद में सर एडवर्ड बार्नस के मिलिटरी सचिव कर्नल चर्चिल ने खूब संवारा। 'स्ट्राबरी हिल' ड्यूक ऑव मार्लबोरोह् के अपने घर का नाम था और कर्नल चर्चिल उस परिवार से सम्बंधित था अतः इस भवन का नाम भी उसने स्ट्राबरी हिल रख दिया। तब यह एक मंजिला इमारत थी जिसे बाद में कैप्टन पेन्ग्री ने 1849 ई0 में लार्ड डलहौजी के रहने लायक बनवाया था। इस भवन के रकबे के बारे में कल्पना करें कि यह 1850 के आस–पास दो हज़ार रुपये किराये पर दिया गया जो आज लगभग बीस हज़ार रुपये से भी ज्यादा बनता है।

'स्ट्राबरी हिल' काफी देर तक अलायंस बेंक के उप–प्रबन्धक की जयदाद रहा था। इस दौरान इसके प्रांगण को खूब संवारा गया और अनेक फलदार वृक्ष लगाए गए। बाद में यह भवन तथा उसके साथ लगी जमीन–जयदाद कई हाथों से होकर सर राबर्ट कारलायल के पास पहुंची जिन्हों ने इसे 'ट्रस्ट ऑव इण्डिया' को 80000 रुपये में बेच दिया। अन्ततः यह भवन राजा सर दलजीत सिंह के हाथ लगा जिन्होंने उसे स्टेट कौंसिल, कश्मीर के अध्यक्ष के हाथ डेढ़ लाख में बेच दिया।

इसी प्रकार उसी परिसर के पास एक अन्य भवन अद्‌भुत नाम से था–'टोर्रेन्शियम हाऊस' जो कि मेजर जनरल आर.टोर्रेन्स के नाम से अभिहित किया गया था जो कि ब्रिटिश इण्डिया सेना में अडजुटेंट ज़नरल थे।

यह भवन भारतीय, स्थानीय और विदेशी शिल्प पर आधारित था। भवन तो भवन इसके प्रांगन को बखूबी सजाया गया था जिनमें सुन्दर फूलों के पौधे, फलदार वृक्ष और कलात्मक झाड़ियां करीने से सजाई गईं थीं। एक सुन्दर सरोवर तैयार किया गया था जिसके ऊपर एक पुल बनाया गया था जो भवन के मुख्य द्वार तक जाता था। इस सरोवर के किनारे विपिंग विलो के पौधे लगाए गए थे जिनकी टहनियां नीचे पानी तक चलीं जातीं थीं मानो अठखेलियां कर रही हों। लेकिन इस भवन तथा परिसर का सबसे बड़ा आकर्षण एक बगीचा था जो विभिन्न गुलाब के फूलों से मदमाता था। तभी इसका नाम 'रोजेविले' पड़ गया था। पर सरोवर को बाद में भर दिया गया। वहां टेनिस कोर्ट बना दिया गया और बगीचे में देवदार और चीड़ के पौधे रोप दिए गए थे। इस जयदाद को 1916 में श्री डब्ल्यु जे. लिटस्टर ने 55000 रुपये में खरीद लिया था।

इसी प्रकार विशेष भवनों में 'ओक ओवर' भी आता था जो कभी महाराजा पटियाला का घर था वर्तमान में हिमाचल प्रदेश के मुख्य मंत्री का निवास स्थान है।

■■■

शिमला का उद्‌भव और कनेडी हॉऊस

शिमला गांव के कस्बे में बदलाव की एक लम्बी दास्तां है। शिमला शब्द श्यामला का परिचायक है जिसके बारे में अनेक भ्रांतियां फैलीं हैं। कुछ के अनुसार यह एक फकीर की झोंपड़ी थी, काली स्लेटों की छत से ढकी। यह जाखू पहाड़ी पर स्थित थी जहां एक फकीर राहगीरों को पानी पिलाता था। शिमला की मौलिक बस्ती उस पठार पर थी जो तत्कालीन सेक्रेटेरिएट के पूर्व में रोमन कैथोलिक चर्च और कोर्ट हॉऊस के बीच में स्थित था। कोयला जलाने वालों का एक जत्था मस्जिद के बिल्कुल पास रहता था।

19वीं शताब्दी के आरम्भ में शिमला कोई विशेष आकर्षण का स्थान नहीं था। 1815 ई0 में ब्रिटिश इण्डिया ने झिंद राणा से इसे खरीद कर नेपाल 'वार' में अंग्रेजों की सहायता करने निमित्त तत्कालीन महाराजा पटियाला को भेंट में दिया था। महाराजा पटियाला ने यहां एक सेनीटेरियम बना कर छोड़ दिया। एक अंग्रेज अफसर जब 1816 ई0 में गोरखा सेना को सुबाथु से कोटगढ़ खदेड़ रहा था तो शिमला के घने जंगलों में से गुजरते हुए उसने ठण्डक को महसूस किया तो उसने इन जंगलों को साफ कर यहीं ठहरने की ठानी। ए0 विलसॅन ने अपनी कृति 'अबोड ऑव स्नो' में लिखा है कि वह पहाड़ी जिस पर शिमला अब स्थित है– दो स्कॉच अफसरों, जिनका नाम 'जेराड ब्रदर्स' था, की खोज थी। इस डायरी में 30.8.1817 में लिखा गया था–

'एक आम साईज के गांव, शिमला में, एक फकीर रहता था जो यात्रियों को पानी पिलाता था। हमने वहां अपने खेमे गाढ़े थे– जाखू के पास और वातास का सुन्दर दृश्य मन को हर्षा गया था।'

इसके बाद मेजर कलोज़ और विलियम लॉयड का जिक्र आता है– ये दोनों व्यक्ति सिंधिया राज्य में अफसर थे और 6 मेई 1821 ई0 में सुबाथु से होकर शिमला पहुंचे थे। विलियम लॉयड ने अपने संस्मरणों में लिखा है– 'पर्वतीय वातास मेरी शिराओं में ईथर घोल देता है और मुझे लगता है कि मैं तंग और अत्यधिक गहरी वादियों में अपने आपको भूल गया हूं।'

इस स्थान पर अंग्रेजों ने अपना भवन बनाया था जो पाश्चात्य शैली का सर्वप्रथम घर था जिसे 'कनेडी हॉऊस' क़ी संज्ञा से अभिहित किया गया। इस भवन की प्रथम तस्वीर 1825 ई0 में वहां जाकर कैप्टेन जे0 ल्युयार्ड़ ने बनाई थी। पर इसे 1833 ई0 में लण्डन में प्रंकाशित किया गया। 'व्यूज़ ऑव इण्डिया फ्रॉम कलकत्ता टू हिमालयाज़' नामक कृति में यह तस्वीर छपी थी जिसे अर्ल ऑव अर्महर्स्ट को समर्पित किया गया है। इस भवन का निर्माण मेजर कनेडी ने लगभग 1820 ई0 में किया था। जे0 ल्यूयार्ड ने अपनी कृति में लिखा है–

'जो भी यहां आता है उसे मेजर कनेडी की मेहमानवाजी तथा नम्रता प्रभावित करती है।'

शिमला का परगना महाराजा पटियाला और कैंथल के राणा की सामूहिक जयदाद थी। 1824 ई0 के आसपास पाश्चात्य वासियों ने, जो मैदानों की गर्मी से त्रस्त थे, यहां इन राजाओं की अनुमति से घर बनाने शुरू किए। इन घरों के लिए जो जगह इन्हें दी गई वह बिना किसी मूल्य के इस शर्त पर दी गई थी कि वे गौ वध ा नहीं करेंगे और वृक्षों को नहीं काटेंगे। यह स्थान 1830 ई0 तक सेनीटेरियम के नाम से प्रसिद्ध हुआ। ब्रिटिश सरकार ने पटियाला और कैंथल राज्याधिकारियों से इस केन्द्र को और बढ़ाने के लिए जगह मांगी। अतः मेजर कनेडी, जो कि उन दिनों अंग्रेजों का पुलीटिकल एजेंट था, राणा कैंथल के पास जा पहुंचा ताकि उसके हिस्से के तेरह गावों को लिया जा सके। उस समय उन गावों से होने वाली आमदनी 987 रुपये सालाना थी। बदले में राणा कैंथल को राजीन का परगना प्रदान किया गया जिसकी आमदनी 1289 रुपये सालाना थी। इसी प्रकार महाराजा पटियाला से उसकी जयदाद का हिस्सा, जो शिमला पहाड़ी के पास था, सात छोटे गावों के ब़दले में

ले लिया गया। यह भरौली का इलाका था।

1831 ई0 में विक्टर जेक्येमॅट ने अपने संस्मरणों में लिखा है– 'यह अमीर, खाली बैठे और अस्वस्थ लोगों के आकर्षण का केन्द्र है। राज्य के इस हिस्से के कर्णधार, जिन्होंने लगभग 15 वर्ष पहले ही इसे अपनाया था, अब सोचते हैं कि मैदानों की भीषण गर्मी से निजात पाने के लिए देवदारों की छाया तले आश्रय पाने का उनका स्वप्न गत नौ वर्षो से जो साकार नहीं हो रहा था अब वह अवसर आ गया है। उनके पास जब कुछ मित्र वहां मिलने आये तो स्थितियां तथा वातावरण उनकी प्रशंसा का वायस था। सैकड़ों साहसी युवाओं को आमंत्रित किया गया जिन्होंने आसपास के वृक्ष काट गिराए थे और उन्हें छील–छाल कर इस लायक बना दिया गया कि मकानों को शीघ्र ही तैयार किया जा सके। जो भी मेहमान आता वह उस भवन को अद्वितीय वातास में पाकर अति प्रभावित होता अतः स्वयं भी अपने नए भवन के निर्माण में जुट जाता परिणामतः इस पर्वतीय क्षेत्र के शिखरों पर लगभग साठ ऐसे भवन तैयार हो गए जो वातास से चमत्कृत होकर बनाए गए थे। इस प्रकार एक नवनिर्मित बस्ती जन्म ले चुकी थी। कैप्टेन कनेडी उन दिनों सुबाथू में कमाण्डर नियुक्त था। वह हिल स्टेटों का प्रथम पोलिटिकल एजेंट था। यद्यपि कनेडी के सहायक ले0रॉस ने 1819 ई0 में केवल लकड़ी के शहतीरों और घास–फूस के छप्पर से बनी पहली झोपड़ीनुमा इमारत बनाई थी जिसे मात्र 'काटेज' का नाम दिया गया था। लेकिन निश्चय ही 'कनेडी हाऊस' शिमला में बनाई जाने वाली पहली इमारत थी। यही मात्र एक घर उन दिनों शिमला में था।' इसी घर में प्रथम गर्वनर जनरल लॉर्ड अमहर्स्ट आये थे जिन्होंने 1827 ई0 में यहां वास किया था।

कैप्टेन मुण्डी 1828 ई0 में लॉर्ड कर्म्बमेरे के कैम्प सहायक थे। उन्होंने 1832 ई0 में एक जर्नल प्रकाशित किया था जिसमें 25 अक्टूबर 1828 ई0 के दिन के ब्योरे लिखते हुए उन्होंने वर्णन किया था–'पर्यटकों के दो जत्थों ने कैप्टेन कनेडी के साथ रात्रि भोज किया था कैप्टेन कनेडी यद्यपि कूटनीतिक एजेंट था तथापि मेहमानवाजी में यकीन रखता था।'

लेकिन शिमला अंग्रेजों में तब तक लोकप्रिय नहीं हुआ जब तक कि लॉर्ड अमहर्स्ट अपने परिवार के साथ अनेक माह तक नहीं रहा और कलकत्ता, वर्तमान कोलकत्ता, अपने साथ लेडी सराह द्वारा बनाई गईं शिमला तथा उसके वातास की तस्वीरें नहीं ले आया। इन तस्वीरों को देखकर अन्य अंग्रेज अधिकारियों का भी मन करने लगा कि उन्हें गर्मियों में शिमला जाना चाहिए।

कैप्टेन मुंडी इस भवन के बारे में लिखता है–

'जो प्रकोष्ठ मुझे रहने के लिए दिया गया था वह गर्मियों और सर्दियों में एक जैसा ही रहता था– यह प्रकोष्ठ उस प्रकार का था जिसे इंग्लैण्ड में पनीर, सेव और प्याज रखने के लिए इस्तेमाल किया जाता था। वस्तुतः यह प्रकोष्ठ भवन की ढालुआं छत और भोजकक्ष की भीतरी छत के बीच खाली स्थान को घेर कर बनाया गया था। चूंकि यह प्रकोष्ठ ढालुंआ छत के धीरे धीरे तंग होने से कैप्टेन मुंडी केवल बीच में ही खड़ा हो सकता था अन्यथा उसे प्रकोष्ठ के किनारों की ओर झुक कर रहना होता था। यद्यपि शहतीरों और फट्टों से सज्जित यह प्रकोष्ठ चूने से पुती दीवारों से लैस था तथापि यह सारा ताम–जाम बरसातों में बौछार को रोक पाने में असमर्थ था।छत के ऊपर लगे टिन पर जब तुषारपात होता या ओले पड़ते तो ऐसा लगता मानों कोई पत्थर फैंक रहा हो और इस कानफाड़ शोर का असर लगभग एक सप्ताह तक रहता। इस कक्ष तक रास्ता मात्र एक लकड़ी की बनाई सीढ़ी से ही सम्भव था। इन सभी असुविधाओं के बावजूद, मैं अपने भाग्य को सराहता हूं कि बिना किसी निर्माण के मुझे यह बसेरा मिला है और मैं अपनी खिड़की से नैसर्गिक दृश्य देखने में समर्थ था।

और सबसे बड़ी बात यह है कि मैं अपनी निजी जिंदगी, अंतरंग जीवन को दिन में भली भान्ति जी सकता था लेकिन रात्रि के समय चूहे सनातन मेले की तैयारी में रहते थे.....मैं छत से अपना सर टकराते टकराते थक चुका था इन शिकारियों का पीछा करते करते अन्ततः उनकी आदतों के प्रति उदासीन हो आया और एक बिल्ली पाल ली थी।

एम0 विकटॅर जे क्युमंट जोकि प्राकृतिक इतिहास के पेरिस में अध्येयता थे ने– 1834 ई0 में अपने संस्मरण प्रकाशित किए। 21 जून 1830 के एक संस्मरण में वे लिखते हैं–

'मेजर कनेडी अपने समय के मायानाज़ तोपखाने के कैपटेन थे। उनकी सेना में अत्युतम सिपाही थे। वे अपने फैसले खुद करते थे– अपने नीचे काम करने वालों के और उन लोगों के बारे में जिन पर उनका शासन था, जहां तक कि पडोसी राजाओं, हिन्दुओं, तातारों, तिब्बितियों के बारे में भी जिन्हें वे कैद करते थे, जुर्माना करते थे या फांसी पर चढ़ाते थे।'

'........हम एक दो घण्टे प्रातः घुड़सवारी करते थे उन सड़कों पर जिन्हें उन्होंने बनवाया था।.......वापिसी पर हमें अति स्वादिष्ट और पौष्टिक नाश्ता मिलता था उसके बाद सारा दिन मेरा अपना होता था उस समय को छोड़कर जब वे मुझे बुलाते थे। सन्ध्या के समय ताज़े घोड़े हमारे द्वार पर होते और उन पर घुड़सवारी कर हम अनेक परिचितों के यहां जाते। वे वे लोग होते जो उनके स्तर के होते थे। लगभग साढ़े सात बजे हम रात्रि भोज के लिए बैठते थे और लगभग ग्यारह बजे यह भोज खत्म होता था।......मेरे दो माह तक वहां बसेरे में मुझे नहीं याद कि कभी मैंने अपनी जेब से कुछ खर्च किया हो।'

'......कनेडी साहब मेरा बड़ा ध्यान रखते थे और जिसे भी मैं साथ ले जाना चाहता अगर वह इन्कार करता तो सजा अवश्यम्भावी थी। स्थानीय लोग दूसरी ओर जाने से डरते थे जहां लामाओं का राज्य था। और बुशहर का राजा इस बात का ध्यान रखता था कि कभी कोई कसर मेरी सेवा में न रह जाए। उन्हें कनेडी साहब का भय सताता रहता।'

स्वतंत्रता के बाद सभी अंग्रेज अधिकारी यहां से चले गए और इन भवनों को भी छोड़ गए। बाद में पंजाब स्टेट की राजधानी बने शिमला में अनेक कार्यालय स्थापित हुए। कनेडी हॉऊस एक बहुत बड़ी इमारत थी। इसमें अनेक कार्यालयों के केन्द्र स्थापित हुए। कालान्तर में हिमाचल स्टेट वजूद में आने से ये कार्यालय आबंटित हो गए। और हिमाचल स्टेट के अनेक कार्यालयों के साथ हिमाचल इलेक्ट्रिक बोर्ड का भी कार्यालय यहां स्थापित हुआ। लेकिन कुछ लोगों की लापरवाही के कारण 1980–81 में, सर्दियों के दिनों में किसी अंगीठी के जले रहने से आग ने वह तांडव नृत्य रचा कि फायर–ब्रिगेड आदि के कर्मचारी ताकते रह गए–यह ऐतिहासिक इमारत धूं–धूं कर जल गई– चूंकि पाईपों में पानी जम चुका था और आग बुझाने के लिए पानी उपलब्ध नहीं था सभी मजबूरन देखते रहे और यह इमारत जलकर राख हो गई। इस तरह स्थापत्य का एक वरका इतिहास की किताब से अलग हो गया। आज वहां कुछ कार्यालय हैं जिनकी इमारतें फिर तैयार की गई हैं और विधान सभा के पास जहां मौलिक कनेडी हॉउस था, अभी भी उस स्थान को कनेडी हॉऊस से अभिहित किया जाता है।

■■■

अन्नाडेल का प्राकृतिक संसार

शिमला तथा इसके आसपास का शायद ही कोई ऐसा स्थान इतना चर्चित तथा समग्र रहा हो जितना अन्नाडेल।यद्यपि यह कोई इमारत नहीं है अथच सघन वन–प्रान्तर में कटोरी की तरह स्थित अति मनोरम घाटी है जहां ब्रिटिश इण्डिया के समय अक्सर पार्टियां हुआ करतीं थीं, नृत्यों का आयोजन होता था और शौकीन तथा प्रकृति के अनन्य पुजारी यहां पर पिकनिक मनाने आते तो प्रेम से विह्वल उत्तप्त प्रेमी, काम से पीड़ित अक्सर इस वन–प्रान्तर में अपना उत्स तलाशते कभी–कबार सर्वमान्य हो आते थे। अनेक अंग्रेज घुमक्कड़ों ने इसके मनोहारी तथा अति आकर्षित कर देने वाले बिम्ब–प्रतिबिम्ब को अपने शब्दों से मुखरित किया है।

अन्नाडेल मालरोड से लगभग दो किलोमीटर दूर अति सघन वनों से घिरा घसीला मैदान है जिसको प्रकृति ने अपने मन से संवारा है।कनेडी हॉउस से एक रास्ता, अब सड़क, नीचे जाती हुई वन–प्रान्तर के सघन पेड़ों में जाकर गुम हो जाती है और वर्तुलाकार नीचाई को नापती हुई अन्ततः एक झरने के पास जाकर चुक जाती है जो केवल बरसातों में ही नमूदार होता है। इसी झरने के पास स्थित है एक प्राचीन मंदिर–पिरामिडल शैली का यह मंदिर शिमला के इतिहास के साथ जुड़ा है।इसी मंदिर के परिसर से शुरू हो जाता है अन्नाडेल का घसीला मैदान जिसके एक हाशिए पर स्थित है गोल्फ क्लब का प्राचीन भवन। इसी के परिसर का विस्तार आगे जाकर गोल्फ कोर्स के साथ मिल जाता है। यही है अन्नाडेल का ऐतिहासिक मैदान जहां कहकहे गूंजते थे,कितने ही प्रेम प्रसंग परवान चढ़े, कितने ही परिवार बने ,कितने ही परिवार टूटे। वस्तुतः इस अति लघु घाटी ने बूंद बूंद टपकते सौंदर्य को अपने में आत्मसात किया है, अनेक आहों को दफन होते देखा है, कितनी संवेदनाओं को तिल तिल कर मरते हुए पाया है पर आज भी यह किसी मर्मज्ञ ऋषि की भांति चिर स्थिर हुआ चिन्तन में संलग्न है।

जुलाई 1834 ई0 में 'ईस्ट इण्डियन सर्विस जर्नल' में प्रकाशित एक लेख में विलियम दे फिलिपे ,जो बंगाल सेना का प्रथम एडवोकेट जनरल था, ने अन्नाडेल से प्रभावित होकर लिखा है–

' ग्लेन के पार्श्व में हरी घास से सुशोभित धरती का एक टुकड़ा, जो लगभग एक मील का घेरा रखता है, जिसके पास ख्यितू नामक एक छोटा सा गांव स्थित है जिसमें लगभग तीस घर हैं, अन्नाडेल कहलाता है। यहां सितम्बर 1833 ई0 में 'फैंसी फेयर' लगाया गया था, एक बहुत बड़ा मेला उस समय आयोजित किया गया था जब सुबाथु के स्थान पर स्थानीय महिलाओं के लिए एक स्कूल खोलने का निश्चय किया गया था। इस अवसर पर स्थानीय तथा विदेशी पर्यटक भी यहां आये थे। मेले में लगे 'स्टॉलों' से लगभग 900 रुपये की कमाई हुई थी। इस मेले के सम्पन्न होने पर एक छोटा खाना दिया गया था।'

अन्नाडेल वस्तुतः इंग्लैण्ड में डम्फ्रीशायर में एक छोटी सी घाटी का नाम है जहां से अनेक ब्रिटिश परिवार सम्बंधित रहे हैं जिन्होंने भारतीय परिवेश में 'ब्रिटिश इण्डिया' की अनेक उपाधियों को सुशोभित किया है। इसके बारे में अपनी कृति 'व्यूज ऑव इण्डिया चीफली अमंग द' हिमालयन मौंनटेन्स' जो 1838 में प्रकाशित हुई थी में कर्नल वाईट ने लिखा था–

'शिमला अक्सर अपने उरूज पर उभर आता है जब यहां कम्पनी के सिविल और सैनिक अहलकार यहां आते हैं।'

लेडी बर्न तथा लेडी ब्रायएन्ट के लघु प्रवास के दौरान रोमांटिक ग्लेन में एक विलासित मेले का आयोजन किया गया था। इसे अन्नाडेल में लगाया गया था। अन्नाडेल, एक महिला के नाम अनुरूप इसे संज्ञहित

किया गया था जिसने सर्वप्रथम इसका मौन तोड़ा था। महिलाओं और पुरुषों की कल्पनाओं को साकार करने वाली प्रतिभाओं को प्रयोग में लाया गया था ताकि वे विलासिता से भरपूर ऐसी चीजें बना सकें जो आगन्तुकों को आकर्षित कर सके। ताकि उन्हें ऊंचे दामों पर बेचा जा सके। ये चीजें दैनिक इस्तेमाल या सजावट के लिए होतीं थी। जो आमदन इस प्रकार होतीं उसे सुबाथु में स्थानीय स्कूल के लिए इस्तेमाल किया जाता।इस स्कूल को वे इस तरह स्थापित करना चाहते थे कि इसके माध्यम से पढ़ाई लिखाई, सीना–काटना, बुनना तथा दूसरे धंधों की सिखलाई हो सके। यह सिखलाई गोरखा लड़कियों को दी जाने वाली थी। वहां पर आगे ही लड़कों के लिए एक स्कूल स्थापित किया जा चुका था। इस प्रकार का चलित मेला लगाना एक परम्परा बन चुकी थी ताकि छोटे अहलकारों के बच्चों को लाभ हो सके। यहां स्टॉल खुले में टैन्ट लगाए जाते जो फरदार वृक्षों तले अति रोमांटिक समा बांध देते थे। इनके बीच वे सब चीजें सजा दी जाती थीं जो बेचने के लिए होतीं–मसलन तस्वीरें तथा खाके, दृश्यावलियों का अंकण आदि तथा दैनिक प्रयोग में आने वाली चीजें।

इनमें हिमालियाई फूलों से गुथे हुए हार उक्त स्कूल के बच्चे तैयार करके लाते थे। इन्हें ये हार बनाने के लिए उनके अध्यापक प्रशिक्षित करते थे। ये हार उन महिलाओं को भेंट स्वरूप दिए जाते जो दिल–जान से मेलों को सफल बनाने में जुटी रहतीं थीं। अक्सर इन मेलों में उन सभी चीजों के लिए बढ़चढ कर मूल्य दिया जाता जो वहां प्रदर्शित होतीं। इस प्रकार अक्सर हर मेले की आमदन लगभग 70–80 पाऊंड हो जाती थी।

यद्यपि अनेक लोगों का विचार था कि अन्नाडेल, अन्ना नामक किसी सुन्दरी के स्मरण हेतु संज्ञहित किया गया था तथापि अनेक लोग इसके विपरीत अलग अलग राय रखते थे। बंगाल की 64वीं इनफैंटरी के कैप्टेन पावेल ने 1846 में इसके बारे में न केवल लिखा था अथच इसकी तस्वीरें और खाके भी तैयार किए थे। 1881 ई0 में प्रकाशित एक पुस्तक 'कम्पलीट गाईड टू शिमला एण्ड इट्स नेबरहुड' में इस पर एक गद्यांश में लिखा गया है–

'कर्नल फैड्डी जो कि शिमला में मुद्दत से रह रहे थे, ने हमें बताया कि मेजर कनेडी, जो कि भारत में प्रथम राजनयिक थे ,पहले आदमी थे जिन्होंने शिमला को घूमकर देखा था। वे इस स्थान के प्राकृतिक सौन्दर्य और मनोहारी दृश्यावलियों से इतना प्रभावित हुए थे कि उन्होंने अपनी किशोरावस्था में हुए प्रथम प्रेम, जो कि अन्ना नामक सुन्दरी से उन्हें हुआ था, के नाम से इसे संज्ञहित करना ही मुनासिब समझा।'

सी0एस0फ्रेंच ने 1838–39 ई0 में अन्नाडेल के बारे में लिखा था–

'अन्नाडेल में एक विलासपूर्ण मेंला आयोजित किया गया था–बिल्कुल उसी प्रकार जिस प्रकार क्रिश्चियन इन मेलों का आयोजन करते थे। लेकिन इस स्थान के परिवेश के कारण एक विशेष आकर्षण इन मेलों में रहता था। कल्पना करें कि एक खुली घाटी को फरदार वृक्षों ने घेर रखा हो और जिसके चहुं ओर 'एम्फी थिएटर' की तरह पर्वतीय ढालानों ने सुशोभित किया हो तभी अन्नाडेल को समझा जा सकता है। यह स्थान कुछ सीमा तक सीधा मैदानी लगता है,ढालानों पर लगे सघन फरदार वृक्षों से घिरा। इस मनोरम स्थान पर आठ दस 'पैवलियन' खड़े किए जाते हैं और इन्हें इस तरह लगाया जाता है कि आयत के तीन दिशाओं को ये भर देते हैं चौथी दिशा आने–जाने के लिए खुली रखी जाती है। रास्ते के सामने एक लाईन में कुछेक टैंट लगाए जाते हैं जहां अनेक प्रकार के व्यंजनों से भरा स्वादिष्ट खाना परोसा जाता है।इन पैवलियनों में अनेक प्रकार की चीजें प्रदर्शित की जातीं हैं जिन्हें ऊंचे दामों में खरीदा जाता है ताकि ज्यादा से ज्यादा आमदन हो जिसे सामाजिक उत्थान के लिए इस्तेमाल किया जा सके। इनका ब्योरा देना कठिन है। रेशमी कपड़ों पर बनाए गए नमूने मोतियों और धागों से की गई मीनाकारी तथा सुन्दर से सुन्दर दूसरी वस्तुओं को इन पैवलियनों में सजाया

जाता है ताकि आगन्तुकों का ध्यान शीघ्र ही वे आकर्षित कर सकें और सन्ध्या तक सभी चीजें बिक जायें। हरेक 'स्टॉल' का एक नाम होता था।'

'इनमें से एक स्टॉल में एक स्थानीय छायाकार तथा चित्रकार अपनी बनाई हुई तस्वीरों की प्रदर्शनी करता था। वह एक शोकिया चित्रकार था और अपनी सर्वोत्तम तस्वीरों की प्रदर्शनी प्रदर्शित करता था। उसके पास शिमला तथा आसपास की तस्वीरों का एक अच्छा संग्रह था। यद्यपि यह भीतर का आकर्षण था जबकि बाहर बनजारों का भेष धारण किए कुछ लोग गाते बजाते अपनी कला का मूल्य मांगते देखे जा सकते थे, डाकिये पत्र बांटते तथा समाचार पत्र देते देखे जा सकते थे। इनके इलावा अनेक अन्य चरित्र अपना तमाशा दिखाते देखे जाते थे। बाद में ढोल ढमाकों के साथ ये मेले सम्पन्न होते थे। ताश, रिंग खेलना, तलवारबाजी तथा कुश्ती इन मेलों के दूसरे आकर्षण होते। अनेक बार गोरखा सिपाहियों को दर्शकों के सामने निशाना साधने के लिए बुलाया जाता। अक्सर उन्हें ऐसे कुम्भ को निशाना लगाने के लिए कहा जाता जो कि 12 या 13 इंच माप का होता। जो इस निशाने पर सफल होते उन्हें ईनाम दिया जाता। अक्सर दो नेपाली खुखरी द्वन्द्व में अपनी कला का प्रदर्शन करते। जीतने वाले को इनाम दिया जाता। इनाम चांदी का लोटा अथवा कोई बर्तन होता था। इनके इलावा चांदी की तलवार भी इनाम में दी जाती। कभी कभी ईनाम में पैसे भी दिए जाते। गोरखे इन ईनामों से अपने को गैरवान्वित महसूस करते क्योंकि ये ईनाम तत्कालीन गवर्नर जनरल द्वारा दिए जाते थे। वे उन्हें अपना ध्येय मानते थे। इनके इलावा दौड़ें भी आयोजित की जातीं। ये दौड़ें अक्सर डेढ़ किलोमीटर तक सीमित होतीं थीं। अन्नाडेंल में अक्सर पिकनिक पार्टियां भी आयोजित होतीं थीं। वहां पर एक हिन्दू मंदिर था जो पर्वतीय शैली में बना था। इसके फलकों पर अनेक नमूने काढ़े गए थे। यद्यपि यह श्रद्धास्थल स्थानीय लोगों के लिए अति महत्वपूर्ण था तथापि अंग्रेजों के लिए, जो क्रिश्चियन थे, ये अहलकार जानबूझकर इससे परे रहते थे ताकि वे अपने अफसरों की नजर में गिर ना जायें।'

अन्नाडेल के इन उत्सवों के बारे में सुश्री एडेन ने भी अपनी डायरी, 19 अप्रैल, 1939 में उल्लेख किया है–

'हमारे सुरक्षा अधिकारी ने अन्नाडेल के स्थान पर एक मेले का आयोजन किया है। इस पार्टी में छः महिलायें और छः पुरुष हैं। यह पार्टी प्रातः दस बजे शुरू हुई और साढ़े नो बजे रात्रि को सम्पन्न हुई। अन्नाडेल फर वृक्षों के घने झोंप से ढका है जिसे सूरज की रोशनी भी चीर नहीं सकती। उनके पास तीर और कमान थे। वे एक झूले पर सवार थे, उनके पास वायलिन थी तथा चीड़ी–छिक्का था। वे सारा दिन नृत्य करते रहे और खाते पीते रहे।'

'24 मेई सन् 1839 इंगलैण्ड की रानी के जन्म दिवस पर वाइसराय की ओर से एक नृत्य का आयोजन किया गया। एमिली एडेन ने 25 मेई को लिखा–'रानी के नाम से कल नृत्य का आयोजन किया गया जो अति सफलता पूर्व सम्पन्न हुआ। मैं स्वयं अन्नाडेल में गई। यह वीरवार की सन्ध्या थी। मैं स्वयं देखना चाहती थी कि यह कैसे होता है। यह अति दिलचस्प था। हमने वहां एक आरजी प्रकोष्ठ बनाया जो लगभग पचास लोगों को अपने में समा सकता था। मैं और दस और व्यक्ति दूसरे टैन्टों में खाने के लिए वहां गए जहां हमने साम्राज्ञी के नाम पर खाना पीना किया जो अति दिलचस्प रहा। इन दो टैन्टों के बीच एक मंच स्थापित किया गया था जिसे चहुं ओर से फूलों के हारों से सजाया गया था। ये फूल शिमला और आस–पास से हर प्रकार के पौधों, वृक्षों से उतार कर लाये गए थे.। मंच के चहुं ओर रस्सों से घेरा बांधा गया था बीच में कमानीदार फूलों से सजे द्वार ,रस्सों से ही बनाए गए थे। यह नृत्य करने के लिए मंच बनाया गया था। सारी घाटी में ,जहां भी जगह अथवा वृक्षों के बीच स्थान मिला वहां पर बड़े बड़े शब्दों 'विकटोरिया','गॉड सेव द' कूईन' लिख कर सजाया

गया था। हमने छः बजे खाना खाया था फिर आतिशबाजी की गई। काफी लेने के बाद नृत्य शुरु हुआ जो रात्रि बारह बजे तक चलता रहा। यह अति सुन्दर सन्ध्या थी। आतिशबाजी तथा रोशनियों की चमक के बाद चांद तथा पर्वतमाला अति मृदु तथा कोमल लगे।'

शिमला में अंग्रेजों और दूसरे युरोपीय वासियों का आगमन 1820 ई0 के बाद हुआ था। और उनके आगमन के साथ साथ ही गोथिक शैली तथा नियो विकटोरियन शैली के भवनों का निर्माण शुरू हुआ। कुछ लोगों ने पाश्चात्य शैली के साथ स्थानीय पर्वतीय शैली, काष्टकुणी ,को मिश्रित कर एक नया प्रारूप इन भवनों को दिया। आज भी ऐसे स्वरूप में ढले अनेक भवन शिमला तथा उसके आसपास स्थापित हैं, देखे जा सकते हैं। भवनों के निर्माण के साथ–साथ उन्होंने अपने मनोरंजन के साधन भी जुटाना शुरू कर दिए थे। सर्वप्रथम क्लब के तौर पर शिमला के ठीक बीच में एक मनोरंजक स्थल स्थापित किया गया था पर अन्नाडेल की खोज के बाद तो जैसे मनोरंजन को जीवन दान मिल गया था। इस ओर अपनी डायरी लेखन में एमिली एडेन ने ज़िक्र किया है:

'बीस वर्ष पहले कोई भी युरोपीय वासी यहां नहीं था और अब हम यहां है बैंड के साथ 'प्युरीटानी' तथा 'मसनिएल्लो' धुनों का आनन्द लेते हुए, स्कॉटलैंड से आई 'सालमॅन' और भूमध्यसागर से आई 'सारडाईन' तथा युरोपीय 'सूप' का स्वाद लेते हुए। यह सब कुछ उन पर्वतीय श्रृंखलाओं के सामने और भी सुखपूर्व हो जाता था–जिन्हें आज तक सर नहीं क़िया गया और हम, लगभग 105 युरोपीय वासी लगभग तीन हज़ार पर्वतारोहियों से घिरे हैं। वे अपने विशेष वस्त्रों से लैस, कम्बलों से युक्त हमारे आयोजनों को हैरत अंगेज नज़रों से देखते हैं और अपने आप को उस समय धरती तक झुका लेते हैं जब कोई युरोपीय वासी उनके करीब आता है।'

उस वर्ष की आमदनी 3400 रुपये हुई थी। एमिली एडेन की बीस तस्वीरों के ही 800 रुपये मिले जब कि उसके स्टॉल ने 1400/– रुपये कमाये। दूसरे मेले में, जो कि 25 सितम्बर 1839 ई0 में आयोजित किया गया था तीन लोगों ने बनजारों का रूप धारण किया था उन्होंने खलनायक के स्वरूप में लोकगीत प्रस्तुत किए और लोगों की किस्मत तथा भाग्य के बारे में भविष्यवाणियों कीं। इस मेले में लगभग 6500 रुपये की आमदन हुई। यह आमदन हस्पताल को चार वर्ष चलाने के लिए काफी थी।आगे चलकर कैप्टेन जी0पी0 थॉमस ने भी इस मेले के बारे में लिखा था–यद्यपि शिमला में सभी एक–दूसरे को जानते हैं पर उनके व्यवहार से लगता है कि कोई भी एक–दूसरे को नहीं जानता। शिमला का समाज उन दिनों खोखला लगता था। लेकिन मौसम के अंत तक सभी जैसे एक–दूसरे में घुल मिल गए थे। फिर इस बात की जरूरत समझी गई कि कैसे मनोरंजन के साधन उपलब्ध हों ,नृत्य तथा पार्टियों का आयोजन हो अतः अन्नाडेल का वजूद सामने आया जहां पार्टियों के साथ–साथ दौड़ों का आयोजन किया गया। मौसम अति दिलकश था और परिवेश उससे भी ज्यादा गरिमामय था। इसमें बटलरों तथा खिदमतगारों ने अपना सशक्त रोल अदा किया। दान के लिए आयोजन किए जाने लगे। लार्ड ऑकलैंड तथा उनकी खूबसूरत बहनों ने इसमें भौतिक विकास के लिए अपना योगदान दिया। नाटक और प्रहसनों का संसार विकसित हुआ, पेटीकोट पीछे छूट गए ,महिलायें भी ब्रिचिस में लैस हो आईं।'

समय के साथ ये मेले चुक गए पर देवदार और फर वृक्षों के नीचे पिकनिक का आयोजन पूर्ववत चलता रहा।

अक्तूबर, 1845 ई में प्रुशिया के शहजादा वाल्देमर अपने अनेक अहलकारों के साथ शिमला आया। उसके सम्मान में अनेक भोज, नृत्य कार्यक्रम और मेले आयोजित किए गए। उनके उत्तर में शहजादे ने एक शैंपेन पार्टी अन्नाडेल में दी। मैदान के ठीक बीच में तीन टैन्ट लगाए गए जिन्हें तरह तरह के सुन्दर पर्दों से सजाया गया और नृत्य ने समां बांध दिया। बीच के टैट में हल्का खाना दिया गया। रात्रि के आगमन पर इन्हें अनेक दीपों से सज्जित किया गया। यह मेला अति चर्चित हुआ।

1852 ई0 के बाद इस परिवेश को और समृद्ध करने के लिए, इसको और सज्जित करने के लिए इसकी रख–सम्भाल को 'एग्रीकलचरल सोसाईटी ऑव पंजाब' के अधीन कर दिया गया था। इस सन्दर्भ में तत्कालीन भारत सरकार के सचिव सर एडवर्ड बक्क के विशेष प्रयास का उल्लेख किया जा सकता है। सर एडवर्ड के वैयक्तिक प्रयास से लार्ड मेयो के काट्टॅन कमीशन के बागवान श्री ए0पारसन्स को शिमला लाकर नगर निगम के बागों और अन्नाडेल का इन्चार्ज बनाया गया।

1847 ई0 में अन्नाडेल में, क्रिकेट के शौकीन अंग्रेजों ने एक क्रिकेट ग्रांऊड बना डाली और 'रेस कोर्स' को सुधारा गया। 1877–78 ई0 में 23 वीं पॉयनियर कम्पनी ने अन्नाडेल की ओर जाती छोटी, तंग और बहुत ढालुआं सड़क को चौड़ा कर पक्का कर दिया था। मेई 1851 ई0 में यहां एक फूलों का मेला लगाया गया था। इसका उल्लेख स्टिग्गिन्स ने अपनी कृति 'देहली स्केच बुक' में किया है। स्टिग्गिन्स ने शिमला, होवेल के स्थान पर 21 मेई को एक कविता के माध्यम से अपने उद्‌गार प्रकट किए–

प्रातः गरिमा युक्त थी और सूरज खूब चमक रहा था
कम्पनी का सितारा आनन्द और प्रसन्नता से गमक रहा था
बाग–बगीचों की पंक्तियां सज्जित होकर झूम रहीं थीं
फूलों की तरह खिली महिलायें प्रफुल्लित होकर घूम रहीं थीं
बागवानों और खिदमतगारों को था कमेटी का इन्तजार
पर चतुर परामर्शी भूल गया था, मन पर था बहुत भार
नहीं रहा उसे उनके खान–पान का ध्यान
ओह ! अन्नाडेल, इससे ज्यादा क्या हो तुम्हारा व्यान।

और यह तुकबन्दी बढ़ती जाती है तथा बाद में एक नैतिक सन्देश देता इनका रचनाकार कह उठता है–

अतः कमेटी के सभी सदस्यों को देता हूं मशवरा
जब भी मेलों का प्रबन्ध करें इस पर भी हो तपसरा
विश्वास करें फूल ही आपको राह दिखायेंगे
आंखों की तरह पेट भी कुछ ठोस पाएंगें
सावधान, जब भी अंग्रेज लोग मिलते हैं
बिना कुछ खाये पिए नहीं खिलते हैं
इन अवसरों की निर्भर करती है सफलता इस बात पर
कि कितना अच्छा खाना–पीना चला मेले की रात भर

1869 ई0 में अन्नाडेल में एक 'फलॉवर शो' तथा 'डॉग शो' आयोजित किए गए। इसी वर्ष तीर अंदाजी में भी प्रतिस्पर्धा का अयोजन किया गया था जिसमें केवल महिलायें ही प्रतिभागीं थीं। इसी वर्ष काष्ठ गेदों का पोलो की तरह खेल 'कोके' भी यहां शुरू किया गया। यही वह खेल था जो बाद में गोल्फ का आधार बना और उत्तरी भारत में एक श्रेष्ठ गोल्फ कोर्स हमारे सामने आया। बाद में एक स्थाई क्लब यहां वजूद में आया जो निरंतरता लेकर मेलों, खेलों, दौड़ों तथा दूसरी प्रतिस्पर्धाओं का आयोजन करने लगा था। इसे 'जिमखाने' की

संज्ञा से अभिहित किया जाने लगा। इस ओर लेडी डफ़फरिन ने आठ मई 1886 ई0 में अपनी डायरी में लिखा था—

'आज जिमखाना बहुत मनोरंजन पूर्ण हो आया है। कमान्डर–इन–चीफ, सर फ्रेडेरिक राबर्ट, ने टैंट के किलेबन्धी में प्रथम पुरस्कार लिया। एक सीधी चढ़ाई की ओर जाती दौड़ भी आकर्षण का केन्द्र रही जिसमें घोड़े गलत दिशा की ओर कूदे और अनुशासन में नहीं रहे। इसके बाद तीन बाल्टियों को एक कतार में रखा गया और प्रति–स्पर्धियों को घोड़े दौड़ाते हुए इन बाल्टियों में आलू डालने थे पर वे सफल नहीं हुए। फिर एक दिलचस्प दौड़ शुरु हुई 'टैन्डेम रेस', जिसमें एक खच्चर पर बैठकर दूसरी खच्चर को अपने आगे भगाने के कार्य को सर अंजाम देना था। यह अति दिलचस्प रही।' इस प्रकार अन्नाडेल मनोरंजन तथा खेलों व समुदायिक गतिविधियों का केन्द्र बनकर उभर आया था। इनके इलावा 'शिमला वालन्टीयर कोर' ने 1861 ई0 से अपनी परेड यहां करनी शुरु कर दी। यहीं पर उनकी वार्षिक खेलों का भी प्रबन्ध रहता। 1872 ई0 में कर्नल पीटर्सन की देख रेख में एक अभ्यास शिविर लगाया गया। तब तक गोल्फ कोर्स के रूप में अन्नाडेल का मैदान चर्चित हो चुका था।

अन्नाडेल का यह क्षेत्र एक जेल तथा अनेक दूसरी कोठियों से घिरने लगा था। अन्नाडेल की चर्चा ने अनेक अंग्रेज अधिकारियों को इसके आसपास जमीन ग्रहण कर अपनी कोठियां बनाने के लिए प्रेरित किया। जेल को पार पर 'आर्थर विला' नामक एक भवन वजूद में आ चुका था तो रेस कोर्स के घेरे को बांधें बगीचे वजूद में आने लगे थे।

लार्ड डफ़फरिन के मिलीटरी संचिव ने इस रेस कोर्स के क्षेत्र को बढ़ाने के लिए इसका घेरा बनातीं पहाड़ियों को काटने की सलह दी परिणामतः 80000 रुपयों की कीमत पर इस योजना को पूरा किया गया। यह पैसा चंदे के तौर पर प्रतिभागियों से जमा किया गया। ज्यादा पैसा स्थानीय रजवाड़ों ने दिया था जो पोलो खेलने के शौकीन थे। क्षेत्र के बढ़ने से अब यहां फुटबाल मैच होने लगे थे। दुरांद प्रतिस्पर्धा हर वर्ष आयोजित की जाने लगी थी। क्रिकेट का खेल आगे ही जोर पकड़ चुका था। वस्तुतः इसमें सबसे पहले सर मोर्टीमर दुरांद ने दिलचस्पी ली थी और वार्षिक फुटबाल मैच आयोजित किए जाने शुरु किए थे अतः उन्हीं के नाम से ये मैच मशहूर हो गया। 1896 ई0 में क्लब के तत्कालीन सचिव सर आर0ई0 गिमस्टॅन की कोशिशों से 25000 रुपयों की सहायता से न केवल इस रेस कोर्स को और खुला किया गया अपितु अनेक दूसरे प्रबन्ध भी किए गए। इसमें पंजाब के अधिशासी अभियंता ए0 यंगहस्बैंड का तकनीकि योगदान बहुत सशक्त रहा था। 1904 ई0 में वायसराय के ए0डी0सी0 कैप्टेन सी0विगराम, जो कि सम्मानित सचिव थे ,ने अन्नाडेल में नए क्लब की स्थापना की। उस समय इस क्लब के पांच सौ सदस्य थे जिनमें से दो सौ तो केवल महिलायें हीं थीं। एक सर्वमान्य कमेटी बना दी गई थी जो विभिन्न क्लबों—मसलन क्रिकेट क्लब, पोलो क्लब, रेस कमेटी, बालंटीयर क्लब तथा न्यू क्लब से पैसे उगाहती थी ताकि इसका सुचारू रूप से प्रबन्ध किया जा सके। लेकिन ये सभी क्लब अपने आप में स्वायत्त थे अतः इनमें संघर्ष होने लग पड़ा था। एक नई योजना की रूपरेखा तैयार की गई—'अन्नाडेल जिमखाना' वजूद में आया जिसका संरक्षक वायसराय होने से सभी अनुशासित हो आए थे। सम्मानित सचिव अक्सर बहुत सशक्त 'एडमिनस्ट्रेटॅर' होता। उसकी सहायतार्थ सहायक और उप सचिव भी होते। 'क्लब हाउस' जो अभी तक मालियों के पास था कर्नल बेरिंग ने अपने हाथ में ले लिया और बागीचों का प्रबन्ध लगभग खत्म हो आया था। अब वहां पिकनिक होती, खाना पीना और पार्टियां होतीं। कर्नल बेरिंग ने 'क्लब हॉउस' में अनेक परिवर्तन लाये और एक किओस्क' यानिकि छतरीनुमा बनावट से छोटा सा निर्माण किया। अनेक दूसरी योजनायें हाथ में लीं गई। यद्यपि आमदन बहुत कम थी पर भविष्य की योजनायें अति विशद थीं परिणामतः अन्नाडेल

जिमखाना' उधार में फंस गया। 1910 ई0 तक यह रक्म साठ हज़ार तक पहुंच चुकी थी कि लार्ड मिंटों ने राजभवन में एक मीटिंग बुलाई जिसमें लेफटीनेंट गर्वनर कमांडर–इन–चीफ के साथ साथ अनेक आला अफसर उपस्थित थे–यह 11 जून का दिन था जब वहीं पर 12750 रूपये एकत्रित किए गए। इसमें सबसे ज्यादा योगदान महाराजा पटियाला का था। अब थोड़ी राहत मिली थी पर शिकायतें आ रहीं थीं कि पोलो क्लब ने अन्नाडेल पर लगभग कब्जा कर लिया है।

लार्ड मिंटों स्वयं अन्नाडेल के विकास के लिए चिंतित थे। चूंकि यह क्षेत्र शिमला नगर निगम के अधीन था अतः अपने विदाई भाषण 19 अक्तूबर, 1910 में मिंटों ने नगर निगम के अधिकारियों को इंगित कर कहा कि जितना पैसा चंदे से होना चाहिए नहीं आ रहा है।हमें किसी भी हालत में अन्नाडेल का विकास करना है। यह एक ऐसा केन्द्र हैं जहां लोग मिल सकते हैं, अपने पड़ोसियों, मित्रों तथा बाहर से आए लोगों से मिल–बैठ कर बतिया सकते हैं, मनोरंजन कर सकते हैं अतः इसकी सांभ–सम्भाल करना हमारा फर्ज है। मैं आशा करता हूं कि निगम के अधिकारी इस ओर ध्यान देंगे।

आने वाले पांच वर्षों अर्थात 1910 ई0 से 1915 ई0 तक अन्नाडेल में बड़े बड़े मेले आयोजित किए गए। 17 जून 1911 ई0 को राज्याभिषेक के परिप्रेक्ष्य में आयोजित एक बहुत बड़ा मेला था। इस मेले में ही 12550 रुपये इकत्रित हुए। खर्चा निकाल कर कुछ दान दे दिया गया बाकी अन्नाडेल के रख–रखाव के लिए रख लिए गए। 14 जून 1913 ई0 को दूसरा मेला लगाया गया जब सैनिक खेलें आयोजित की गईं, सैनिक बैंड समुदायों ने अपनी धुनों से सारे माहौल को संगीतमय कर दिया था। कुश्तियां लड़ीं गई। यद्यपि काफी पैसा जमा हुआ पर खर्चा ज्यादा था। यह मेला नुकसानदायक साबित हुआ। जून, 1917 ई0 में रेडक्रास द्वारा एक अन्य मेला आयोजित किया गया। इस मेले में तब तक का सबसे ज्यादा पैसा, लगभग 50000/– एकत्रित किया गया। तब जनरल सर चार्ल्स मोनरो कमेटी के प्रधान थे और कर्नल पी0 बर्लटॅन, मेजर डब्ल्यू0 एंडर्सन, आर0 वाटसॅन तथा एडवर्ड जे0बक्क सम्मानित सचिव थे। इस प्रकार अन्नाडेल का विकास भी होता रहा और आर्थिक कठिनाईयां भी उभरतीं रहीं। 1920 ई0 तक उधार हज़ारों की संख्या में चला गया था। पता चला कि इस उधार के लिए जो लोग उत्तरदायी थे वे सभी भारत छोड़ कर इण्गलैंड चले गेए थे। मात्र एक कर्नल वहां रह गया था जिसका वैयक्तिक उधार 35000/– तक जा पहुंचा था। लार्ड रॉलिनसॅन के वैयक्तिक हस्ताक्षेप से किसी तरह स्थिति को सम्भाल लिया गया। और साप्ताहिक दौड़ों का कार्यक्रम बनाया गया। लेडी लिट्टॅन ने वैयक्तिक सहयोग से क्लब की सदस्यता जो गिर रही थी उसमें न केवल सुधार आया अथच संख्या में बढ़ने लगी थी अतः आमदन में फर्क पड़ा। 1924 ई0 में क्लब के सचिव कैप्टेन एल0 एस0 मोस्तिन–ओवेन ने जिमखाना क्लब के सामने एक तजबीज रखी कि कैश ईनामों के स्थान पर विजेताओं को 'कप' दिए जायें जिससे पैसे का अभाव न हो और ये 'कप' लोग 'स्पांसर' करें पर अभी तक उनको कोई समर्थन प्राप्त नहीं हुआ था तो उन्होंने कैप्टेन एफ0एन0 मेसॅन मैकफरलेन, जो कि शिमला का नगर कवि माना गया था, कि सहायता ली तो उसने एक कविता के रूप में लोगों से प्रार्थना की। इसका परिणाम बहुत उत्साहवर्धक रहा। न केवल लोगों ने इस का समर्थन किया अथच कविता में ही इसका जवाब भी एक सदस्य ने दिया।

1924 ई0 में कमान्डर–इन–चीफ के वैयक्तिक स्टॅाफ ने 'मूनलिट जिमखाना' का आयोजन किया। इसमें लार्ड तथा लेडी रॉलिन्सॅन तथा दूसरे आला अफसरों को बुलाया गया था। सारा मैदान तथा पैवलियन जपानी लैम्पों से दीप्त थे और खाने का मीनू इस प्रकार थाः

रात्रि संगीतमय होगी और जिस सावधानी से दिन उतरता है

अरब घुमक्कड़ों की तरह अपना बोरिया बिस्तर बंद कर
धीरे से अदृश्य हो जाएगा।

शिकार का आयोजन किया गया था जिसमें सभी ने भाग लेना चाहा था परिणाम स्वरूप भोर होने तक भी कुर्सियां खालीं पड़ीं थीं ,लोग शिकार से वापिस नहीं लौटे थे।

उसी वर्ष भरतपुर के महाराजा ने जिमखाना को खूबसूरत ईनामों से नवाज़ा। प्रतिस्पर्धा इतनी प्रबल थी कि एक स्पर्धा के लिए तो लगभग 65 प्रत्याशी थे। कैप्टेन ओवेन मुख्य आयोजक थे और लेडी रींडिंग ने ईनाम बांटे थे। वायसराय ने इन ईनामों के लिए महाराजा को धन्यवाद दिया।

आजकल वहां एक हैलीपैड भी बना दिया गया है। ज्यादातर भाग गोल्फ के लिए इस्तेमाल होता है और सैनिक प्रशासन ही इसकी देखभाल कर रहा है।

■■■

सदी का सफर तय करता ग्लेन

सदियों की खामोशी को तोड़ती हुई आवाज पाषाण प्राचीरों से टकरा कर वापिस लौट आती है– इतिहास के झरोखों से झांकती दर्दभरी भीत्तियां दस्तक देती हैं–कभी किसी रईस ने उन्हें बहुत मन से तैयार किया होगा पर कालान्तर में काल के गर्त में समा गई जब तक कि उनकी खामोश दर्द भरी आवाज़ किसी युवा ह्रदय को भेद नही गई। जी हां देवदारों के सधन वन प्रान्तर मे, शिमला के दिल के पास धड़क रहा है एक और दिल, ग्लेन, 'ब्रिटिश विला' दशकों के अन्धेरों को चीर कर एक बार फिर जीवंत हो आया है ।

कनेडी हाऊस से लगभग एक किलोमीटर दूर अन्नाडेल मार्ग पर सुरम्य वन प्रान्तर के बीच स्थित है ग्लेन जिसे उर्कुहर्ट न किसी अंग्रेज ने निर्मित किया था अतः इसका नाम ही बाद में ग्लेन उर्कुहर्ट पड़ गया था वस्तुतः वन प्रान्तर के बीच स्थित आवशार के झरने के परिवेश और प्राकृतिक नैसर्गिक वातास को ही ग्लेन की संज्ञा दी गई थी। चूंकि यह भवन इस सुरम्य वातास में स्थित है अतः इसे ग्लेन की संज्ञा से अभिहित किया गया । लगभग एक सदी पहले बना यह बंगला अपने खुले प्रकाष्ठों, गलियारों और ब्रिटिश शैली की सज्जा के कारण लोंगों के आकर्षण का केन्द्र रहा था । बीच में, अंग्रेजों के चले जाने पर इसे एक भारतीय परिवा ने खरीद लिया पर अक्सर यह परिवार बाहर रहता, मात्र गर्मियों को छोड़कर पर धीरे धीरे गर्मियों में भी यहां आना बंद हो गया तो यह भुतह बंगला बनकर रह गया।न साम्भ– सम्भाल न कोई देख–रेख करने वाला परिणामतः धीरे धीरे यह बिसरा दिया गया इसके नैसर्गिक सौन्दर्य तथा इसके परिवेश से प्रभावित युवा ह्रदय,प्राचीन सम्पदा के प्रति आतुर, अजय गोयल ने इसकी आवाज़ को सुना और जीर्ण–शीर्ण अवस्था में इसे खरीदकर इसको अतीत का गौरव और पहचान देने के लिए तत्पर हो आया। इसके गलियारों,खुले प्रकोष्टों को साज–संभाल कर चमका दिया गया और इसी के अंदाज़ से ब्रिटिशपरम्परा से अप्लावित 'फर्नीचर' सजावट का सामान, तस्वीरें, प्यानों तथा दूसरी वस्तुओं को सहेज कर रखा गया ।

इस भवन में प्रवेश करते ही हमें वर्तुलाकार कलात्मक सीढ़ियां ऊपर, दूसरे माले में ले जाली है जहां चमकते हुए काष्ठ फर्श से सज्जित हैं तीन बडे प्रकोष्ठ,बैठक कभी प्यानों की सुर लहरियों से गुंजायमान रहती होगी– इसके संकेत ,भीतर ढुकते ही मिलने लगते हैं। सामने और बांये पार्श्व में एक एक कर दो प्यानों सज्जित है। ये प्यानों लंदन की एक कम्पनी जे.ई. बवन द्वारा निर्मित किए गए थे–इस आशय की पट्टी इन प्यानों पर लगी है। इस खुले प्रकोष्ठ की दीवारें यूरोपीय सिद्धहस्त कलाकारों की कृतियों से अलंकृत हैं। इसके कोनो को व्यस्त करते दीखते 'कोर्निश स्टैंड' हैं जिनके फलकों को अनेक सजावटी पर प्राचीन, मध्ययुगीन वस्तुऐं सज्जित कर रही हैं । एक पाषाण व्रहद् कुम्भ तीसरे कोने को व्यस्त रखे है ।

मुख्य प्रकोष्ठ के पार्श्व में स्थित है दो सोने वाले कमरे। एक छोटे कमरे में परम्परागत खाट पड़ी है–लगता है यह मेहमान के लिए सादा कमरा है। पर दूसरा खुला प्रकोष्ठ अति सुरूचिपूर्ण ढंग से सजाया गया है। एक और महागनी तथा टीकबुड के बने फ्रेम से युक्त पलंग पड़ा है जिसे उपर से हलके रंग के वस्त्र–फलक से ढका गया है और उपर से मानों झरते हुए पर्दे नीचे गतिमान होते दीखते हैं। एक ओर आरामदायक दो कुर्सियां पड़ी है जिनकी सीटों को केन से बुना गया हैं । ये परम्परा से जुडी कुर्सियां हमारी मानसिदता को अतीत के साथ जोड देती है । एक सुन्दर काष्ठ का बना मेज़ जिसे रोल करते हुए लकड़ी के ढकन द्वारा खोला और बंद किया जा सकता है। मेज का ढकन उठाते ही नीचे अनेक फलक दिखाई दे जाते हैं जो पेन, दवात, डायरी तथा दूसरी आवश्यक वस्तुयें रखने के लिए इस्तेमाल किए जाते रहें हैं । दूसरे कोने को सुशोभित कर रहा है ।

इस सोने वाले कमरे से बाहर निकलते हुए, प्रवेशद्वार के ठीक ऊपर एक छोटा प्रकोष्ठ है जिसकी शीशों से सज्जित खिड़कियां बाहर प्रांगण में खुल कर भीतर बैठे हुए व्यक्ति को अनायास ही प्रकृति का अंश बना देती है। भीतर एक छोटा सा मेज़ लगा है जो दुगुना खुल जाता है बीच में लगे कब्जों के माध्यम से। टेबल टॉप के नीचे बने खाने मे ताश की गड्डियां पडी हैं। मेज के चहुं ओर चार कुर्सियां व्यवस्थित हैं। निश्चय ही यह 'कार्ड रूम' रहा होगा । यहां बैठ कर अकेले में भी बाहर की वीथियों में झांकता व्यक्ति स्वतः ही प्रकृतिक वातास में गुम हो जाता हैं । भवन मे सामने फैले प्रांगन का दृश्य, जिसके एक कोने में एक मचान बना है जहां लम्बी सैर के बाद व्यक्ति बैठ कर सुस्ता सकता है। सुरम्य परिवेश में ढले इस मचान पर बैठ कर नीचे छोटे ताल मे पल्लवित लिली के फूलों और फैले पत्तों पर बिखरे ओस के कणों को महसूस किया जा सकता है जो अनायास ही अंतर में ठण्डक घोल देते हैं।इन्हें मुंह मारती रंगीन मछलियों का संसार अपने में ही खोया रहता है ।

बीयर के मग को लिए गुनगुनी धूप में, मचान से नीचे, इस भवन के दूसरी ओर बने काष्ठ फलकों के पुल पर बैठ कर वन प्रान्तर के साथ आत्मसात होने में अपना ही मज़ा है। जहां दूर देवदारों के धने झोंप में जगमग करते प्रदीप्त जुगनुओं का अपना अकेला संसार है जिस की चुप्पी को पक्षियों की काकुली तोड़ती नही अपितु और सघन कर देती है ।

भवन के निचले माले में एक बढ़ा प्रकोष्ठ खाने के कमरे यानिकि 'डायनिंग रूम' के तौर पर सजया गया हैं । ठीक बीच में एक बडा गोल मेज सजाया गया है जिसपर चांदी की कटलरी करीने से रखी गई हैं इस कटलरी को ग्रेट ब्रिटेन में बनाया गया था । इसके साथ लगे प्रकोष्ठ में खुली अलमारियां टिकी है जिन्हें लकड.ी के फलक नही ढकते अपितु एक मोटा कपडा पर्दे की तरह इस अलमारियों कों ढके है। भीतर एक रॉड पर पीतल के हैंगर लटक रहे हैं । निश्चय ही यह कभी ड्रेसिंग रूम रहा होगा । इन प्राचीन पीतल के हैंगरों पर ओवरकोट और दूसरे वस्त्र लटकते रहते होंगे। ड्रैसिंग रूम एक छोटे गलियारे के माध्यम से एक अन्य छोटे प्रकोष्ठ में खुलता है जिसकी उत्तर दिशा की दीवार के साथ बडे बडे दिशानुमा कॉलम बने है । हमें बताया गया कि यह कक्ष रसोई के रूप में इस्तेमाल होता था और ये कॉलम जोकि दो ओर से खुले थे, हवा की आवा.जाई के लिए थे ताकि इनमें रखी खाद्य वस्तुएं ताज़ा रहें।

बाहर निकलते हुए एक बार फिर ड्रैसिंग रूम से जुड़े एक छोटे प्रकोष्ठ में पहुंचा जा सकता है जिसमें दो तीन आराम कुर्सियां सजी है। इस प्रकोष्ठ की एक खिड.की दूसरी ओर के लॉन भी ओर खुलती है।प्रातः के समय कॉफी या चाय की चुस्कियां लेते हुए आराम कुर्सी पर बैठे, खिड़की में से लॉन की हरितिमा को देखना मन को शांति प्रदान करता है और आंखों को नमी।

पुरानी रसोई के साथ एक ग्लास किचन अभी हाल में ही निर्मित किया गया है। रसोइयें पकवानों के साथ खिलवाड़ करते हुए बाहर के वातावरण के साथ आत्मसात हो सकते हैं।बाहर बरामदे में टी शॉप बना दी गई है जहां बीसियों तरह की चाय का आर्डर दिया जा सकता है । आर्डर देने के लिए आपको वहां जाना नही पड़ेगा और न ही बेयरा आर्डर लेने ही आएगा अथच बरामदे में लटकती धष्टियों को बजाना होगा–एक बार बजाने से सादी चाय, दो बार बजाने से मसाले की, तीन बार बजाने से नमकीन चाय, चार बार बजाने से बादाम वाली चाय, पांच बार बजाने से मिंट टी आदि के संकेत दिए जा सकते हैं ये संकेत बदले भी जा सकते है पर इनका मीनू में तुरंत जिक्र किया जाता है। बाहर प्रांगन में एक ओर 'वाईन कैसॅक' पडा है। ढोलनुमा लकड़ी के उस बर्तन में वाईन डाल कर बार बार हिलाया जाता था और पार्टी में सामूहिक तौर पर सर्व किया जाता था ।

इस भवन के इतिहास के बारे में अनेक तरह की अटकलें लगाई जाती हैं। शैली के आधार पर इसे लेट उन्नीसवीं शताब्दी या बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में रखा जा सकता है। 'पोस्ट विकटोरिया' शैली में विला का प्रारूप लिए ऐसे हटनुमा भवन अक्सर बस्तियों के बाहर खुले, एकांत स्थानों में बनाए जाते थे। इस भवन का वन प्रान्तर में बनाए जाने का औचित्य समझ में आता है । इसमें विचरना मानों एक सदी का सफर करवा जाता है ।

सेंट निनियंन्ज़ पा रहा है अतीत का गौरव

बहुत कम लोग जानते हैं कि 19सवीं और बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में गोथिक शैली के भवन निर्माण में एक बार फिर प्रयास किया गया था। वस्तुतः गोथिक शैली के भवनों का निर्माण मध्ययुगीन युरोपीय देशों में तेहरवीं–चौहदवीं शताब्दी में हुआ था। सर्वप्रथम फ्रांस में,जनसंख्या से परे ऐसे गिरजाघर बनाए गए जो खूब खुले और उंचे हालनुमा प्रकोष्ठ रखते हों और जिन की पिरामिडल, 'डोम शेप्ड' छतें दूर से ही देखीं जा सकतीं थीं। अक्सर इनकी खिड़कियां मेहरावदार होतीं और इनकी छतों का भार भी लम्बी मेहरावों पर ही टिका होता। पत्थरों को तराशकर दीवारें चुनी जातीं, पर ये दीवारें ऊंची और सशक्त अवश्य होतीं थीं पर छतों का भार इनमें बनी खिड़कियों की मेहरावों पर ही होता। ये मेहरावें उपर से तीखी 'डोम शेप्ड' होतीं। अनेक बार दीवारों को बीच में काट कर मेहरावों पर बरामदे की छत बाहर की ओर बढ़ाकर भीतर के हाल कमरे के साथ गलियारों का भी निर्माण किया जाता था ताकि इन गिर्जाघरों में पूजा और प्रवचन के समय यदि भीतर का स्थान कम हो जाए तो बाहर भी लोग खड़े हो सकते थे या बैठ सकते थे। अक्सर इन गलियारों को भीतर के हॉल कमरे के साथ बड़े–बड़े प्रवेश द्वारों या काष्ठ फलकों से जोड़ा या अलग किया जा सकता था। जहां पादरी आदि धर्म क्रिया, प्रवचन आदि में संलग्न होते, उस दिशा की खिड़कियों के रंगीन शीशे बाईबल तथा उससे सम्बंधित कहानियों के नायिकों और नायिकाओं के चित्रों से संलग्न होते इन्हें 'मोज़ैक वर्क' कहा जाता।

वास्तविकता यह है कि इस शैली में पहले गिरजाघर ही बनाए जाते थे पर बाद में इसके शिल्प को नदी किनारों पर निर्मित किये जाने वाले 'कॉस्लनुमा' भवनों में भी प्रयोग में किया जाने लगा। इसका उदाहरण फ्रांस में शीन नदी के किनारे बना 'कॉस्लनुमा' महल है जिसे 'चैट्यू' की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। बाद में ग्रेट ब्रिटेन में, 'कन्ट्री साईड' अर्थात ग्राम प्रान्तर में ऐसी अनेक इमारतें बनाई गईं कि इस शिल्प को विक्टोरियन कालीन बने भवनों में भी प्रयोग किया जाने लगा था। हां यहां कहीं तो इन मेहरावों का सहारा लिया जाता तो कहीं मात्र दीवारों पर ही ढलुआं छतें टिकी होतीं। इन कॉस्लनुमा भवनों और गिरजाघरों की इतनी चर्चा हुई कि इनके शिल्प को रईस लोगों ने अपने भवनों को उतारना शुरु कर दिया था पर विशुद्ध गोथिक शिल्प तथा स्थापत्य गिरजाघरों तक ही सीमित रहा। बाद में 19सवीं शताब्दी के अंत में एक बार फिर इस शैली ने जोर पकड़ा। अब यह अपना परिष्कृत रूप लेकर सामने आई–इसे 'नियो गोथिक'शिल्प अर्थात नई गोथिक शैली कहा गया। इस शिल्प में ढले अनेक गिरजाघर हिमाचल में भी वजूद में आये जिनमें से रिज, शिमला में स्थित काईस्टचर्च, कैंटोनमेंट में स्थित कैथोलिक चर्च तथा उसके पास ही स्थित दूसरा चर्च भी इसी शैली में बनाया गया है। पर इसका सर्वोत्तम उदाहरण अपर धर्मशाला, फोरसिथगंज में स्थित गिरजाघर को लिया जा सकता है। कसौली का गिरजाघर भी इसी प्रकोष्ठ में रखा जा सकता है शिमला या इसके आस–पास ब्रिटिश शैली के अनेक भवन 19 सवीं शताब्दी के मध्य और अंत में निर्मित किए गए लेकिन कहीं पर भी इस शिल्प का अनुसरण नहीं किया गया। मात्र एक भवन को छोड़ कर– और यह भवन है 'सेंटनिनियंज' जो अभी हाल में ही तीन भवनों पर आधारित 'ब्रिटिश शिमला रिजॉर्ट' का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बना है। बाकी के दो भवन है–विला स्वरूप लिए ग्लेन तथा माटी और पत्थरों से बनी विशुद्ध ग्रामीण परिवेश में जीवंत, धरती से जुड़ी दुमंजिला इमारत, जिसे 'शॉपिंग ऑरकेड' की संज्ञा दी गई है।

'सेंट निनियंज' की संज्ञा अन्तर में श्रद्धा भर देती है। अक्सर गिरजाघरों को किसी मत विशेष या किसी संत विशेष के नाम से चर्चित किया जाता था या वे चर्चित हो जाते थे। फोरसिथगंज का 'सेंट थॉमस चर्च इन

बाइल्डरनेस', शिमला का क्राईस्ट चर्च और कैथेलिक चर्च आदि इस के उदाहरण हैं। हो सकता है कि सेंट निनियंज़ भी कोई बहुत बड़ा व्यक्तित्व हो पर शिमला का इतिहास इसके बारे में चुप है। यह भी संभव है कि शुरू शुरू में इसे चर्च के रूप में निर्मित किये जाने की बात हो क्योंकि शिमला के इस पार्श्व में कोई गिरजाघर नहीं। बाद में इरादा बदल गया हो, बाहिरी कलेवर तो वही रहा पर भीतर रिहायशी फलकों को बांट कर अलग अलग प्रकोष्ठ बना दिए गए।

ग्लेन की विला के पार्श्व से एक लॉन के सुरम्य वातास को लांघ कर प्राकृतिक छटा से नहाया हुआ, परन्तु धरती से जुड़ा, कच्ची माटी से निर्मित दुमंजिला भवन समूह जिसे 'शॉपिंग ऑरकेड; की संज्ञा से अभिहित किया जाता है अचानक ही नमूदार हो आता है। इसकी काष्ट सीढ़ियों को चढ़कर दूसरी मंजिल पर स्थित चार प्रकोष्ठों में पहुंचा जा सकता है। पहले प्रकोष्ठ में अनेक रंगी, बहु आकार लिए कालीन सज्जित हैं। इन्हें बुनने के लिए एक खड्डी का लघु मॉडल भी वहां एक कार्निश में सजा पड़ा है। तो दूसरे प्रकोष्ठ में प्रतिष्ठित युरोपीय कलाकारों द्वारा निर्मित तस्वीरें इसकी भीत्तियों को अलंकृत कर रही हैं। अनेक अनुपलब्ध तस्वीरें भी इस प्रकोष्ठ की शोभा बढ़ा रही हैं। तीसरे प्रकोष्ठ में श्रृंगार तथा सजावट के लिए उपयोग किए जाने पुरातन अलंकरणों के साथ चांदी के बर्तन, कटलरी, चाकू, छुरियां, फूलदान, 'कैंडल स्टैंड' आदि विभिन्न अलमारियों की शोभा बढ़ा रही हैं। तो चौथा प्रकोष्ठ अभी सज्जा की अपेक्षा में खामोश पड़ा है। उसे स्टोर की तरह इस्तेमाल किया जा रहा है। नीचे की मंजिल के प्रकोष्ठ अभी स्टोर हॉऊस के तौर पर इस्तेमाल किए जा रहे हैं। इस 'शापिंग ऑरकेड' की बाह्य भीत्ति पर लीपापोती कर कुल्हाड़ियां, फावड़े और बेलचे आदि सजा दिए गए हैं जो इसे और पुरातन तो बनाते ही हैं अथच इसे ग्रामप्रान्तर के साथ जोड़ देते हैं। सीढ़ियां उतरते हुए रेंलिंग के साथ लगी हुई घंटी अवश्य बजाइये ताकि सेंट निनियंज में सोया परिवेश जाग उठे। जी हां वहां सब कुछ खामोश है, इसको घेरे वन प्रान्तर, आकाश को छूते चुप से देवदार, झिंगुरों की खामोश आवाज और लॉन में पुष्पित फूलों पर मंडराती चुप सी तितलियां–मानों हम किसी तिलस्मी संसार में पहुंच गए हों।

'शॉपिंग ऑरकेड' से नीचे सीढ़ियां उतरते ही खामोशी का अहसास अन्तर्मन में समा जाता है। इन सीढ़ियों पर बिख़रे सूखे पत्ते चरमरा कर अपने अस्तित्व को मिटते, मिट्टी में मिलते खामोश फिज़ाओं के अंश बन जाते हैं और अंशों को टटोलता व्यक्ति भी उनके साथ आत्मसात करता हुआ एकाकी हो जाता है। गिरजानुमा इस भवप की पाषाण दीवारें बुलाती और अन्तर में कही दस्तक दे जाती हैं। और हम इतिहास का हिस्सा हो जाते हैं–वर्तमान से कहीं दूर कटे हुए अतीत के आलम में तिर जाते हैं।

भीतर ढुकते ही तीन प्रकोष्ठ उजागर होते हैं। बायें पार्श्व में जिसे 'लेदर लाईब्रेरी बार' से नवाज़ा गया है अंग्रेजी के 'एल' की आकृति का प्रकोष्ठ है जिसका लम्बा बाजू बैठक के तौर पर उपयोग किया जाता रहा है इसकी खिड़किओं को ढकते लेदर पर्दे तथा कुर्सियों को सजाते लेदर कुशियन और कार्निश के साथ लगे रेक में सजी पुस्तकें तथा ठीक बीच में आरामदायक सोफा सेट जो 'फॉयर प्लेस' के बिल्कुल सामने स्थित है इसे स्वतः ही लेदर लाईब्रेरी' बना देता है। 'फायर प्लेस' की कार्निश पर टिकी बैल के साथ लड़ाई करते हुए लेदर की उभरी ,एम्बॉस्ड तस्वीर,'लेदर चैम्बर को और दिलचस्प बना देती है। एक अदभुत काष्ठ मेज खिड़कियों की दिशा में पड़ा है जिसे चार कुर्सियों ने घेर रखा है। इस मेज को बीच में से खींच कर इतना लम्बा किया जा सकता है कि यह दस बारह आदमियों के खाने रख कर इसे पाट दिया जाता है। 'एल' आकार के इस प्रकोष्ठ के दूसरे बाजू में घुसने से पहले ही अखरोट की लकड़ी से बनाई गई एक कलाकृति अनायास ही कश्मीर की याद ताज़ा कर जाती है। हमें बताया गया कि कभी इस भवन में नेहरू परिवार से सम्बंधित कौल साहब रहा करते थे। शायद यह उन्हीं का शोक था। मुख्य प्रकोष्ठ के साथ लगते दूसरे प्रकोष्ठ में बाईं ओर रेक पर अनेक

प्रकार की स्मोकिंग पाईपें रखीं हैं। इनमें से एक चांदी की लम्बी पाईप आकर्षण का केन्द्र कही जा सकती है। इस प्रकोष्ठ की भीत्तियों को बेशकीमती तस्वीरों से अलंकृत किया गया है। एक तस्वीर काष्ठ तीलियों से बनी जापानी कलाकृति है जो किसी मध्ययुगीन भवन का रूप प्रस्तुत करती दीखती है। उत्तर दिशा की भीत्ति से लगा एक बड़ा रेक कुछ रेयर पुस्तकों को लिए है। साहित्य, कला, संस्कृति और स्थापत्य पर अनेक पुस्तकें यहां सज्जित हैं। दाईं ओर ढोल के आकार का ऊपर और साईड से खुलने वाला एक 'मोबाईल' बार है जिसमे शैम्पेन की बोतलें तो हैं ही अथच एक पुरानी सोडा मेकर बॉटल पड़ी है! कभी इसी सोडा मेकर से गुजर कर लिया जाता था।

इस मुख्य प्रकोष्ठ के साथ लगते दो प्रकोष्ठ शयन कक्ष के तौर पर इस्तेमाल किए जाते हैं। ऊपर की मंजिल में तीन शयनकक्ष, एक डायनिंग रूम, एक रसोई आदि करीने से बनाए गए हैं। स्नानागार ग्रेटब्रिटेन से लाये गए चायना क्ले के टब, कमोड और टोटियों से सज्जित है। मात्र कल को दायें–बायें करने से पाईपों से जल की धारा फूटने लगती है। कोने के शयन कक्ष की अन्दर की कलात्मक काष्ठ छत को पकड़कर एक कीली की सहायता से नीचे खींचा जा सकता है जिसके पीछे से काष्ठ सीढ़ी 'खुल जा सिम सिम' की तरह अनायास खुलकर नीचे चली जाती है जिसके माध्यम से उपर 'एट्टिक' में पहुंचा जा सकता है। एट्टिक अन्दरुन्नी 'फाल्स सीलिंग' और बाहिरी छत के बीच में एक खुला तिकोना प्रकोष्ठ है जिसे हॉल की तरह इस्तेमाल किया जा सकता है। इस हालनुमा गुप्त प्रकोष्ठ को भी सजाने का प्रयास किया जा रहा है। सामने सफेद संगमरमर की किसी पाश्चात्य महिला की 'बस्ट' एक स्टूल पर रखी है तो उसके साथ पड़ी सफेद रस्सियों से बुनी गई आरामदायक कुर्सी पड़ी है तो एक ओर एक मंच जैसे मेज पर कुम्भ रखा गया है। फर्श को रगड़–रगड़ कर चमका दिया गया है। लगता है अभी यह सजावट की दहलीज पर है। नीचे उतर कर ज्यों ही हमने सीढ़ी को हल्का सा धकेला तो वह ऊपर खिसक कर छत में कहां खो गई कोई निशां तक भी बाकी न रहा। शयन कक्ष बड़े सुरुचिपूर्ण ढंग से सजाए गए हैं। सारा माहोल ही तिलस्मी लगता है, पर इस माहोल में रचने बसने के लिए लाजमी शर्त है कि व्यक्ति प्राकृति प्रेमी हो ताकि वह इस परिवेश में अपने को निःसार सके और एकान्तिक वातास में तादात्म्य बैठा सके।

इस सुरम्य, प्राकृतिक परिवेश में मात्र एक सप्ताह जीवन के द्वन्द्वों से निःस्सारता देता है विशेषकर इन दिनों भोर के समय सुरुचिपूर्ण सज्जित लॉन में टहलते हुए पक्षियों की काकुली को सुनना और उनके साथ एकाकी हो जाना और कुछ नहीं–बस हम हों और प्रकृति का यह आगोश। कभी कभी वन–प्रान्तर में बने, चीरते हुए मार्ग से प्रभातफेरी जो झरने के पास से गुजरते हुए एक प्राचीन नागस्थान की ओर ले जाती है जो अतीत का सम्प्रट था जहां एक अंग्रेज संत, चार्ली चीते की खाल से ढका योगियों द्वारा दीक्षित किया गया। उसे उसकी मस्त मौला जिंदगी और रहन–सहन के कारण, बाबा मस्तराम से पुकारा जाता था। वह हर समय संतुष्ठ रहता और कभी किसी प्रकार की मांग नहीं करता था। वह कभी भी आने वाले समय के लिए चिंतित नहीं रहता था। उसका इनिहास इन्हीं वादियों में गुम हो गया है। इस मंदिर के नीचे मस्ती में घूमते हुए हम अन्नाडेल के गोल्फ मैदान की ओर बढ़ते हैं। यह कभी फूलों तथा घास के फैले हुए मैदान की घाटी थी जिसे 'ब्रिटिश पोलिटिकल एजेन्ट' ने खोजा था। वह इसके प्रति इतना प्रभावित हुआ कि उसने अपनी प्रेयसी, अन्नाडेल के नाम से इसे अभिभूत किया। वह यहां अनेक दिनों तक कैम्प लगा कर ठहरा था। यह एक ऐसी सुरम्य घाटी थी जिसे बाद में अनेक अंग्रेजों ने इसे पिकनिक 'स्पॉट' के तौर पर चर्चित किया। अनेक पार्टियां एवम् नृत्य यहां होने लगे थे। कभी कोई ब्रिटिश अहलकार बदली में कहीं जाता तो उसकी विदाई पार्टी यहीं पर आयोजित की जाती। बाद में यहां एक जिमखाना बनाया गया और गोल्फ के खेल रचित किए जाने लगे। आज भी जिमखाना का भवन

हमें आकर्षित करता है। यहीं पर बाद में एक हैलीपैड बनाया गया ताकि शीर्षस्थ अधिकारी यहां से हैलीकॉप्टर पर कहीं ओर समय को बचाते हुए जा सकें।

रिजॉर्ट में वापिस जाकर सन्ध्याकालीन खाना, मोमबत्तियों की रौशनी में एक अद्भुत मंजर प्रस्तुत करता है जब प्राचीन समय में ढोलनुमा 'कैसक' से 'वाईन सर्व' कर तिलस्मी संसार को और आलोकित कर वर्तमान से दूर अतीत में ले जाकर पर्यटकों को एक अद्भुत परिवेश में छोड़ देता है।

इस प्रकार वर्तमान में विचरते पर्यटक अतीत और भविष्य को एकाकार कर जाते है।यह एक अद्भुत अनुभव है समय और शून्य को चीरता हुआ।

■■■

बेंटिक कॉस्ल

अर्ल ऑव अमहर्स्ट पहला गर्वनर जनरल था जिसने शिमला की यात्रा की या यह कहा जाए कि साहस किया क्योंकि उन दिनों 1823 ई0 से 1828 ई0 तक शिमला का ज्यादातर इलाका जंगल वियावान था और सुविधाओं के नाम पर केवल नौकर चाकर थे और गर्मियों में मौसम अति अनुकूल था। शिमला कभी ब्रिटिश इण्डिया की गर्मियों की राजधानी भी बनेगा ऐसी सम्भावना बिल्कुल नहीं थी। यद्यपि इस ओर लेडी अमहर्स्ट के संस्मरणों में शिमला के प्रति एक आग्रह की झलक हमें मिलती है। लेडी द्वारा लिखे गये जर्नल में हमें इसके उद्धरण मिलते हैं– 'यह कहना ठीक नहीं कि शिमला की खोज अमहर्स्ट ने की थी। इसका श्रेय उत्तर–पश्चिम में कार्यरत अफसरों को जाता है जिन्होने इसकी महत्ता को जरूर समझ लिया था अतः उन्होंने इसकी चर्चा सत्ता के गलियारों में पहुंचाई लेकिन निश्चय ही वह पहला गवर्नर जनरल था जिसने मैदानों की असुविधा से निजात पाकर यहां ठहरना ठीक समझा । उसने एक परम्परा स्थापित की थी। लेकिन यह लॉर्ड विलियम बेन्टिक था जिसके राज्यकाल, जुलाई 1828 ई0 से मार्च 1835 ई0, में शिमला को ब्रिटिश सरकार ने अपना लिया था। यह विलियम बेंन्टिक ही था जिसने पूर्वोत्तर भारत में सिक्किम के राजा से जगह लेकर दार्जलिंग बसाया था। शिमला में आगमन पर वह अर्ल ऑव अमहर्स्ट की तरह कनेडी हॉउस में ठहरा था पर अपने स्टॉफ के लिए पर्याप्त जगह तथा सुविधाओं को न पाकर वह उस वर्ष की गर्मियों में उटकमंडू चला गया। पर वहां पर भी उसे चैन नहीं मिला तो वापिस शिमला आकर उसने कनेडी हॉउस से थोड़ी दूर पर वन–प्रान्तर से घिरे पठार पर स्थित डाक बंगलें को अति उपयुक्त माना पर वह गर्वनर जनरल तथा उसके स्टॉफ के लिए नाकाफी था। उसे तुड़वाकर और आसपास की वनप्रान्तर की जगह साफ करवा कर, कुछ बड़े पेड़ों को छोड़कर एक वृहद् बंगले की नींव रखी गई। यह 1829 ई0 का वर्ष था जब इसका निर्माण कैप्टेन मैक कॉजलैंण्ड, जोकि जनरल तप्प का सहायक था,ने शुरु किया। इसके पूरे निर्माण के बाद तो इसमें महत्वपूर्ण अधिकारियों ने प्रवेश किया।तब यह सर हेनरी लॉरेंस की जयदाद घोषित की गई। बाद में यह भवन शिमला बैंक को स्थानांतरण कर दिया गया था। लगभग 37 वर्ष यह शिमला बैंक के भवन के रूप में 1850 ई0 से 1887 ई0 तक चर्चित रहा लेकिन 1887 ई0 में 35000 रुपये में इसे खरीदकर एक बार फिर इसे सुधारकर अपनी आवश्यकता के अनुसार बनाने की योजना न्यू क्लब के अधिकारियों के मन में पनपने लगीं। अभी इसे कार्यान्वित किया ही गया था कि एक भयंकर आग ने इसे लील लिया पर भाग्य से इसका बीमा हुआ था अतः बीमे के पैसे से एक बार फिर इस इमारत का निर्माण बहुत द्रुत गति से हुआ। नये क्लब ने अपने खुले प्रकोष्ठों, सुन्दंर डाईनिंग हॉल और बढ़िया डांसिंग फलोर के कारण पुराने क्लब–'द' युनाईटिड सर्विस' को पीछे पछाड़ दिया था। न्यू क्लब इतना चर्चित हुआ कि इसके कार्यक्रमों में ब्रिटिश कमान्डर–इन–चीफ, पंजाब के ले0 गर्वनर और वॉयसराय की कौंसिल के सदस्य अक्सर भाग लेते थे। लॉर्ड विलियम बेर्यसफोर्ड ने विशेषकर इस क्लब की गतिविधियों में खूब दिलचस्पी दर्शाई। कर्नल ए0आर0डी मेंकेन्ज़ी जिसने 1902 ई0 में देहली दरबार में विद्रोहियों की अगुआई की थी– इस क्लब का प्रधान था और अनेक गण्यमाण्य अधिकारी इसके सदस्य थे। ऐसा लगता था कि नया क्लब पूरी तरह से छा जाएगा कि अचानक 'द'युनाईटिड क्लब' सक्रिय हो उठा। सर विलियम टेलर जो कि सर्जन जनरल था ने इसमें जान फूंकी और इसके सदस्यों को न केवल सक्रिय किया अपितु इसके भवन में भी अनेक परिवर्तन किए तथा अनेक प्राईवेट सदस्यों के साथ–साथ सरकारी हलकों में भी हलचल पैदा की परिणामतः नये क्लब के सदस्य शिथिल पड़ गए और लगभग नया क्लब खत्म हो आया अतः इसका भवन बेच देना पड़ा जो पहले एम0 बोनसर्ड के हाथों पड़ा,

जो कि लार्ड लिट्टन का रसोइया था बाद में सिगनोर शेवलियर पेलिटी जो बाद में 'वॉयसराय कनेफेक्शनर' के तौर पर जाना गया ने यह भवन खरीद लिआ। एम0 बोनसर्ड जो बाद में कलकत्ता के प्रसिद्ध होटल बोनसर्ड का मालिक बना, ने यह जयदाद दो लाख रुपये में 1892 में बेच दी। शेवलियर पेलिटी द्वारा बाद में वॉयसराय की अनेक इमारते निर्मित की गई। उसने बर्फ के कारखाने भी निर्मित किए। इस होटल को अनेक वर्षो तक उसके बेटे चलाते रहे। स्वयं शेवलियर पेलिटी तुरीन के पास क्रेगनैनों की जयदाद का मालिक बनकर रिटायर्ड जीवन बिताने लगा जहां उसने सब्जियों और फलों को सुरक्षित रखने और उन्हें डिब्बों में बंद करने के कारखाने स्थापित किए। ये सब्जियां और फल उसके फार्म में उगाए जाते थे। वह इन सब्जियों और फलों को शिमला और कलकत्ता में वितरित करता था। बाद में शिमला में उसने इस हौटल का नाम ग्रैंड होटल के तौर पर चर्चित किया। दुर्भाग्य से 1922 ई0 में इस होटल के सैंन्ट्रेल ब्लाक को भीषण आग ने लील लिया। इसे बचाने की हर कोशिश के बावजूद ग्रैंड होटल की मुख्य इमारत इस आग में जल कर राख हो गई। इस होटल की इमारत को पूरी तरह से बीमा से सुरक्षित नहीं किया जा सका। उन दिनों विश्व युद्ध के कारण आर्थिक संकट आन पड़ा था परिणामतः यह इमारत अनेक दिनों तक फिर बनाई नहीं जा सकी। चूंकि इसकी देखभाल अब नहीं की जा सकती थी अतः अनेक लूट–खसूट की वारदातों ने इसे और नुक्सान पहुंचाया।

अन्ततः वर्षो बाद ,1930 ई0 में इसे फिर से बनाकर सरकार ने अपने हाथों में ले लिया पर सरकारी किताबों में इसका पंजीकरण 1942 ई0 में ही हुआ। इसका सुधार कर इसे प्रवासी अधिकारियों का विश्रामालय बनाया गया पर इसका नाम वही रहने दिया गया। अब यह होटल नगरीय विकास मंत्रालय के अधीन कर दिया गया था।

यद्यपि केन्द्रिय कर्मचारियों के प्रवास के दौरान यह होटल अति सुविधाजनक था– दो कारणों से ,एक तो यह माल के एक दम करीब है और दूसरे टैरिफ के रेट बहुत संतोषजनक थे, लेकिन साठ के दशक में पानी वितरण की भीष्ण समस्या के कारण अक्सर अधिकारी लोग इससे दूर भागते थे और दूसरी सबसे बड़ी समस्या थी चूहों की धींगामुश्ती। अनेक वर्षों से सफाई और सुधार न होने के कारण यह होटल चूहों की प्रतिस्पर्धाओं का केन्द्र बन कर रह गया था। इस बात की चर्चा अनेक स्तरों पर हुई चुनाचे इस परिसर में ही जल के स्रोत तलाशने में अधिकारीगण सफल हो गये परिणामतः एक मरहले पर सफलता पाकर सफाई और सुधार का अभियान शुरू हुआ जो वर्ष 2000 को जाकर सम्पन्न हुआ।

इसका वर्तमान स्वरूप इतना विशाल है कि एक समय में एक सौ से ज्यादा परिवार इसमें रह सकते हैं। कुल 33 फेमिली सुइट हैं जिनमें चार बेड तथा बैठने के अलग कमरे की सुविधा है। डवल बेड कमरों की संख्या 57 है और डारमेंटरी में 28 बिस्तर लगे हैं। और एक एक बिस्तर वाला कमरा है। इनके इलावा एक डायनिंग हाल है और एक कान्फ्रेस हाल है जिसे अब लाउंज में बदल दिया गया है। इस सारे होटल की देखभाल एक सहायक एस्टेट अधिकारी करता है। होटल यद्यपि केन्द्रिय कर्मचारियों की जरूरतों को पूरा करता है तथापि कमरे खाली होने पर कुछ ज्यादा टैरिफ पर दूसरे पर्यटकों को भी दिये जाते हैं।

■■■

बेनटॅनी भवन

माल के ऊंचे पठार पर, ग्रैंड होटल के बगल में और तार विभाग की प्रमुख इमारत के पीछे स्थित है दो पुरानी, पर्वतीय शैली में बनी इमारतें। एक अति ज़रज़र स्थिति को पहुंच चुकी है जिसमें स्थानीय एम्पलॉयमैंट का कार्यालय है और इसी इमारत के दायें पार्श्व में स्थित है अति सुन्दर और व्यवस्थित दीखने वाली एक इमारत। यद्यपि यह एक छोटा सा भवन है तथापि अपने स्थापत्य, खुले गलियारों युक्त दुमंजिला इमारत बहुत करीने से बनाई गई है। भीतर ढुकते ही बांई ओर एक दूसरे के साथ सटे दो हालनुमा कमरे हैं जिनके बाहिरी परिसर में गैलरीनुमा छतरियां सी बाहिर की ओर निकलीं हैं। पहले हालनुमा कमरे के साथ लगते दो छोटे प्रकोष्ठ हैं। प्रकोष्ठों के बाहर,छत के नीचे से ही एक घुमावदार सीढ़ी ऊपर को दूसरी मंजिल की ओर जाती है। इस सीढ़ी के दूसरी ओर सामने एक प्रकोष्ठ है और उससे सटे दुबारा हालनुमा कमरे हैं। सीढ़ियां चढ़कर ऊपर भी लगभग वैसा ही स्वरूप हमें मिलता है। यह बेनटॅनी भवन है जो अपने स्वरूप और स्थापत्य के लिए दूर से ही पहचाना जाता है।

बेनटॅनी भवन उन कुछेक इमारतों में से एक है जो सर्वप्रथम शिमला में निर्मित हुईं थीं। 1829 ई0 में तत्कालीन वायसराय, लॉर्ड विलियम बेन्टिक ने जब शिमला में अपने आवास के लिए प्रयास शुरु किया तो कनेडी हाऊस से थोड़ा ऊपर एक पठार को अति उपयुक्त मानकर बेन्टिक कॉस्ल का निर्माण किया जो बाद में ग्रेंड होटल के नाम से जानी गई। बेन्टिक कॉस्ल के साथ एक टीला सा था जो घने देवदारों से घिरा था। 1830 ई0 के आस–पास जनरल जॉर्ज अर्ल ऑव डलहोजी की सरपरस्ती में कैप्टेन बेनटॅनी, एक महत्वांकांक्षी अफसर था। उसने यह स्थान ओने पोने में खरीदकर अपने लिए एक छोटी कॉटेज बनवाई। यह कॉटेज अति सुन्दर सुरमयी वातावरण से आच्छादित थी जो देवदार वृक्षों से घिरी थीं। इस कॉटेज में वह कुछ दिन रहा। बाद में उसका स्थानांतरण कलकत्ता हो गया तो उसने अनचाहे में इसे स्थानीय किसी व्यवसाई के हाथ बेच दिया। यद्यपि इसे लेने के लिए ब्रिटिश सेना के अनेक अफसर तैयार थे क्योंकि यह भवन सैनिक मुख्यालय के सर्वाधि क करीब था।पर हो सकता है यह सौदा सिरे न चढ़ा हो। एक कथन यह भी है कि सिरमौर के राजा ने अपने आदमियों के मार्फत यह काटेज खूब पैसे देकर खरीदी थी जिसकी टेक अंग्रेज अफसर नहीं लगा सकते थे। क्योंकि यह स्थान अति उपयुक्त था और शिमला में उस समय तक बने भवनों में सर्वोपरि था अतः सिरमौर का राजा यह चाहता था कि किसी भी हालत में यह अंग्रेजों के हाथ न पड़े। राजा फतेह प्रकाश एक दूरदर्शी राजा था जो सिरमौर रियास्त के सिंहासन पर 1815 ई0 में बैठा था। उसने सिंहासन पर बैठते ही इसके प्रशासन को चुस्त–दुरुस्त कर दिया था।वह भवन निर्माण का भी शौकीन था। उसने शीश महल और मोती महल नामक भवनों का निर्माण किया और अपनी युवा रानी, जो कहलूर की राजकुमारी थी, के लिए इन भवनों को रहने योग्य सज्जित किया। उसने इन महलों के आवास परिसर में एक मंदिर का भी निर्माण किया था। उसने जौनासर बावर तक के इलाकों को अपने राज्य में मिलाकर एक वृहद् राज्य की स्थापना की थी। पर वह ब्रिटिश हकूमत के साथ अपना तारतम्य बनाए रखना चाहता था बावजूद इसके कि वह नहीं चाहता था कि उनका वर्चस्व यहां रहे पर शक्तिशाली के साथ वैर लेना भी उचित नहीं था। उसने अनेक शादियां कीं थीं ताकि वह राज्य को इन रिशतों से पुख्ता कर सके। उसकी रानियों में कैंथल, बिलासपुर, बघाट, कुठार तथा कुमाहरसेन की राजकुमारियां शामिल थीं। राजा फतेह परकाश ने लगभग तीस वर्ष तक राज्य किया और 1850 ई0 में वह स्वर्ग सिधार गया।

राजा फतेह परकाश ने बेनटॅनी कॉटेज को सुधारकर कर एक अति सुन्दर अनुक्रम में ढले हुए

भवन का निर्माण किया जिस पर अंग्रेज भी रस्क करते थे।इस भवन का बाहिरी ढांचा वर्तमान में भी उसी स्थिति में है यद्यपि कालान्तर में भीतर का स्वरूप खत्म प्रायः हो चुका है। राजा फतेह परकाश ने इस भवन को ब्रिटिश अधिकारियों के निवेदन पर, लड़ाई के समय उन्हें सौंप दिया जहां ब्रिटिश सेना का मुख्यालय बना दिया गया। लेकिन लड़ाई समाप्त हो जाने पर एक बार फिर यह भवन राजा ने अपने हाथ में ले लिया और इसका विस्तार कर अपना ग्रीष्म महल बनाया जहां अपनी प्रिय रानी, कैंथल की राजकुमारी के साथ गर्मियों में थोड़े दिनों के लिए वह वास करता था। वह अपने असर रसूख से ब्रिटिश अधिकारियों को खुश रखता था और जब वह शिमला में नहीं होता था तो यह भवन ब्रिटिश अधिकारियों के पास रहता था।बाद में यह भवन नाभा रियास्त की जयदाद भी रहा लेकिन सैनिक कार्यालय यहां से स्थानांतरण नहीं किया गया फलतः इसे फिर किसी को बेच दिया गया।

स्वतंत्रता के बाद इस भवन को पुलिस मुख्यालय बना दिया गया।इसके एक भाग में रेडियो का एक मोनीटरिंग सेल भी स्थापित किया गया था। बाद में इस सेल को चौड़ा मैदान की ओर स्थानांतरण कर दिया गया और पुलिस मुख्यालय अपनी निगम विहार में नवनिर्मित इमारत में स्थानातंरण कर दिया गया पर अभी भी इस में डी0आई0जी0 का कार्य्रलय स्थित है।

सत्तर के दशक में इसे एक व्यवसाई ने खरीद लिया पर इसमें स्वतंत्रता के बाद भी पुलिस मुख्यालय बना रहा। नए मालिक का नाम लहरूमल या लहनूमल था जो स्वयं एक व्यवसाई था।

आजकल यहां पर पुलिस के डी0आई0 जी का कार्यालय है। जैसा कि अक्सर सरकारी इमारतों के साथ होता है– कोई बाली–वारिस नहीं कोई देखभाल करने वाला नहीं अतः यह भवन भीतर से दिन पर दिन खोखला होता जा रहा हैं यदि शीघ्र ही इसे सम्भाला नहीं गया तो यह धरोहर कब खत्म हो जाएगी कोई नहीं जानता।

■■■

रेलवे बोर्ड भवन

रेलवे बोर्ड भवन, जो कि मालरोड पर, चौड़ा मैदान जाते हुए, बाईं ओर एक अति भव्य और स्थापत्य का अद्‌भुत नमूना कहा जा सकता है। कभी दो भव्य भवनों को ढहाकर बनाया गया था। ज्यों–ज्यों ब्रिटिश सरकार के कार्यालयों को बनाने की जरूरत बढ़ती गई त्यों–त्यों नए भवन और प्राईवेट इमारतें या तो किराए पर लीं जाने लगीं या खरीदी जाने लगीं।

उदाहरण स्वरूप सैनिक कार्यालयों के लिए कोई केन्द्रीय स्थान दरकार था तो 1884 तक इनका मुख्यालय माल रोड के आस–पास स्थित कमशः बेनटॅनी, पोर्टमोर लौविले तथा डैलज़ेल काटेज में बदलता रहा और 1884 ई0 को अन्ततः रेस वियू में स्थानान्तरण कर दिया गया। लेकिन पक्के, एक स्थान की तलाश में अधि ाकारी लगे हुए थे। माल के पास निचले स्तर पर लिट्‌टल होप, लिट्‌टलवूड, ग्रीव्स काटेज, देहलिया लॉज आदि भवनों को, जो कि एक ही स्थान पर साथ–साथ स्थापित थे। खरीद कर क्वार्टर मास्टर जनरल, सैनिक लेखा विभाग और सैनिक स्वास्थ्य विभाग के कार्यालय स्थापित किए गए।

इसी प्रकार सचिवालय के कार्यालय जो कि इम्पीरियल कार्यालयों के पास माल रोड के ठीक मध्य में स्थित थे उनका निर्माण 1890 ई0 के पास हो चुका था। इन्हें बाद में रेलवे बोर्ड और वाणिज्य के विभागों के कार्यालयों को सौंप दिया गया। इनका निर्माण वस्तुतः दो मुख्य भवनों–'हरबर्ट हाउस' और 'ल'विल्ले' के स्थान पर किया गया था। वस्तुतः इन दो प्राईवेट भवनों को सरकार ने किराये पर लिया था बाद में इन्हें खरीद लिया गया। इन्हें खरीद कर गिराकर सारी धरती समतल कर उस स्थान पर पक्की ईटों, बड़े–बड़े शहतीरों आदि को इस्तेमाल कर एक अति भव्य अनेक मंजिला इमारत का निर्माण किया गया–लेकिन पांच छः वर्ष बाद 1896 की रात्रि में लगी आग से इस इमारत को भस्म कर डाला। कुछ भी नहीं बचा सबकुछ जलकर राख हो चुका था। लाखों की इमारत तथा इसमें कीमती सामान तथा आवश्यक फाइलें आदि सब–कुछ घण्टों में ही खत्म हो चुका था। बहुत पूछताछ की गई पर यह रहस्यमयी आग कैसे लगी थी कोई बता नहीं सका। एक बार फिर सुरक्षित इमारत बनाने की कवायद शुरु हुई। अनुभवी तकनीकियों को, इंजिनीयरों को आमंत्रित किया गया जो भूकम्प औरं आग से सुरक्षित ऐसी इमारत बना सकें जो सदियों तक इन प्राकृतिक आपदाओं से सुरक्षित रह सके। चुनाचे फायर प्रूफ इस इमारत का निर्माण अप्रैल 1896 ई0 में शुरू हुआ और अगले वर्ष अर्थात 1897 ई0 में अगस्त माह में बन कर तैयार हो गई। इस इमारत पर उन दिनों चार लाख से थोड़ा ज्यादा खर्च आया था।

इस भवन के अनेक मंजिला निर्माण के लिए बहुत सोच समझकर नमूना तैयार किया गया। भूकम्प से यह सुरक्षित रहे इसके लिए इसकी नींव को ठोस आधार प्रदान करने के लिए ठोस लोहे, पत्थरों और मसाले का भरपूर इस्तेमाल किया गया। एक धारणा के अनुसार इसकी नींव विकटॅरी टन्नेल की नींव के बराबर है जहां से इसे उठाया गया है। दीवारों के जोड़ों में भी ठोस लोहे के कण्डे इस्तेमाल किए गए जिन्हें लोहे के कड़ों से परस्पर जोड़ा गया था। ऊपरी मंजिल के शिखर पर कमानीदार लोहे के घूमने वाले शहतीर इस प्रकार लगाए गए थे कि वे अपनी धूरी पर आगे पीछे घुमाए जा सकते थे ताकि प्राकृतिक आपदा के समय वे लचकीला रुख अख्तियार कर इमारत को नुक्सान से बचा सकें।

इसे 'फायरप्रूफ' बनाने के लिए अनेक प्रबन्ध किए गए, कम से कम लकड़ी का इस्तेमाल किया गया और ज्यादा से ज्यादा लोहे को ही प्रार्थमिकता दी गई। जहां तक कि सीढ़ियां भी इस्पात से बनाई गई। और इस इस्पात को 'कास्ट आयरन' में ढाल कर इसका स्तर ब्रिटिश स्टैंडर्ड तक ले जाकर बाद में इसे इस्तेमाल किया

गया। एक धारणा के अनुसार सारा इस्पात ब्रिटेन से ढोया गया था–पर यह बात हजम नहीं होती। तब तक भारत में अनेक स्थानों पर इस्पात के कारखाने चलने लग पड़े थे। जहां तक कि नाहन में भी एक फांउडरी राजा शमशेर सिंह के अहद में 1875 ई0 से कार्य करना शुरु कर चुकी थी। यह हो सकता है कि इन कारखानों में ब्रिटिश इंजिनीयरों ने अपने स्तर का इस्पात बनवाया हो। आज भी अनेक जीनों पर बी0एस0आई0 बना देखा जा सकता है जिसका अर्थ ही–ब्रिटिश स्टैंडर्ड इण्डिया' बनता है 222 अर्थात भारत में बना ब्रिटिश स्टैंडर्ड का इस्पात। यह इस्पात इतने ऊंचे ताप पर ढाला गया था कि इन से बनीं वस्तुओं को ऊंचे से ऊंचा ताप भी पिघला नहीं सकता था। फिर भी अग्नि–शमण का एक कार्यालय इस इमारत के एक ओर हर समय सतर्क रहता था। भवन के बाहर और भीतर आग लग जाने पर संकेत देने के लिए घण्टे लगे थे। बाहर इनके बजने का संकेत अग्नि शमण के कार्य–कर्त्ताओं को तुरंत पहुंच जाता था और वे बिना कोई समय गंवाएं अपने ताम–झाम के साथ तुरंत पहुंच जाते थे। भीतर घण्टी बजने पर कार्यालयों में कार्यरत कर्मचारियों और दूसरे अहलकारों को यह दिशा निर्देशन था कि तुरंत, बिना समय गवाएं, सब कुछ वहीं छोड़कर, बाहर निकल जाएं। यह भी एक ध ारणा है कि एमरजैंसी, जमीन दोज़ एक रास्ता वायसरीगल लॉज तक जाता था जो अंग्रेजों के भारत छोड़ने के बाद भी अनेक वर्षो तक सजीव था और इसके रास्ते को हवा देने के लिए रोशनदान थे जो बाद में बंद कर दिए गए।

यही कारण है कि एक सदी तक यह भवन प्राकृतिक आपदाओं से सुरक्षित रहा। लेकिन वर्ष 2000 की एक सर्द रात्रि में इसकी सब से ऊपर वाली मंजिल आग की भेंट चढ़ गई

अग्नि–शमण की चौकसी के कारण बाकी की मंजिलों को बचा लिया गया। इसकी मुरम्मत कर फ़िर उसी सांचें में इसे ढाल दिया गया।

आज इस भवन में अनेक कार्यालय कार्यरत हैं और इस भवन की सम्भाल तथा देख–रेख केन्द्रीय लोक निर्माण विभाग करता है। सदी पूरी हो जाने पर इसे एक बार फिर से सजाया–संवारा गया है।

■■■

गॉर्टन कॉस्ल

स्कैंडल पुआंयट से चौड़ा मैदान की ओर चलते लगभग बीच में दो महत्वपूर्ण इमारतें मार्ग के बाईं ओर दिख जातीं हैं–रेलवे बोर्ड की बिल्डिंग और आगे मार्ग से थोड़ा हटकर ऊपर की ओर ए0जी0 कार्यालय की इमारत जो कभी 'गार्टन कॉस्ल' कहलाती थी। आज भी बुजुर्ग इसे गार्टन कॉस्ल के तौर पर ही जानते हैं। जैसा कि नाम से ही लगता है यह भवन किसी गॉर्टन साहब की जयदाद थी जो सिविल सर्विस की परीक्षा पास कर किसी बड़े पद पर तैनात थे। यह भवन 1840 ई0 से पहले वजूद में आया। गॉर्टन साहब 'चर्च ऑव इग्लैंण्ड मिशन सोसाईटी' के सक्रिय सदस्यों में से एक थे। उनकी मृत्यु सन् 1844 ई0 में हुई थी। मरने से पहले उन्होंने तीस हज़ार रुपये मिशन के लिए दान दिए थे जिसे 'गॉर्टन फंड' की संज्ञा से जाना जाता है। इसी दान की रकम से कोटगढ़ में इस मिशन का कार्यालय खोला गया था।

'गॉर्टन कॉस्ल' में बाद में, सरकारी दफतर स्थानान्तरण कर दिए गए। सरकार ने यह भवन खरीदा था या 'गॉर्टन' साहब का कोई वंशज नहीं था अतः स्वतः यह सरकारी जयदाद हो गई थी–इसके बारे में कोई निश्चित नहीं कहा जा सकता पर आगे चलकर सन् 1863 ई0 में कर्नल टी0डी0 कोलियर ने इस बड़ी इमारत को सरकार से मात्र पांच हज़ार रुपयों में खरीद लिया था। कर्नल की मृत्यु पर एक वसीयत के अनुसार यह भवन कर्नल की भारतीय बीवी के हिस्से में आया जिसकी मृत्यु पर यह इमारत उसके गोद लिए बेटे डेविड कोलियर के हिस्से में आई। बाद में उसकी बेटी, कुमारी कोलियर को यह भवन जयदाद के तौर पर विरसे में मिला। बाद में अनेक दिक्कतें इस जयदाद को लेकर उठीं। एक बार फिर यह इमारत सरकारी हलकों में जा पहुंची। यह सरकार ने खरीदी थी या कोई और कारण था कुछ कहा नहीं जा सकता पर एक धारणा के अनुसार इस पर चढ़े कर्जे को उतारने के लिए तत्कालीन इडमिनिस्ट्रेटर जनरल ने इसे 26000 रुपये में 1879 ई0 में टुथर नामक व्यक्ति को बेच दिया था। टुथर ने इसे एक वर्ष से कुछ दिन ज्यादा अपने पास रखा और बाद में इसे 45000 रुपये में रोमण कैथोलिक समुदाय के प्रतिनिधि माननीय फादर पॉलीकार्प को बेच दिया। फादर पॉलीकार्प चाहते थे कि शिमला के कैथोलिक समुदाय के लिए यहां एक गिरजाघर बनायें लेकिन इस भवन और परिवेश को चर्च के उपयुक्त न मानकर तत्कालीन वायसराय लार्ड लिट्टन की कौंसिल के एक सक्रिय सदस्य सर थिओडोर होप ने इसे हस्तगत कर इसके स्थान पर 'द ग्रोव' नामक जयदाद जो वर्तमान वेस्टर्न कमाण्ड के मुख्यालय के पास थी, कैथोलिक चर्च बनाने के लिए कैथोलिक समुदाय के हवाले कर दी जहां बाद में चर्च का निर्माण हुआ जो आज भी अपना उन्नत ललाट लिए खड़ा है। बाद में 'गॉर्टन कॉस्ल' को वायसराय कौंसिल के एक अन्य सदस्य सर फिलिप हुचिन्स ने अपना निवास स्थान बना लिया। फिलिप साहब ने इस इमारत में एक 'डांसिंग फलोर' तैयार करवाया जहां सन्ध्या के समय, विशेषकर गर्मियों में लाट साहबों के परिवारों के सदस्य, उनकी मेमें और साहबजादियां खूब बन ठन कर नृत्य करने यहां पहुंचती थीं। उनका दीदार करने और उनका संसर्ग पाने लाट साहब तथा उनके, किशोरावस्था की दहलीज को पार कर रहे, साहबजादे भी दुम हिलाते उनके पीछे–पीछे वहां पहुंच जाते थे चुनाचे खूब रौनक रहती। शिमला के बंजारों में सुनी जाने वाली खबरों/अफवाहों का बाज़ार यहीं पर से गर्माता था। इस डांसिंग फलोर के बनाने के पीछे भी एक दिलचस्प घटना सुनाई जाती है। उन दिनों बी0रिब्बनत्रॉप वन विभाग के विभागाध्यक्ष थे। वे चाहते थे कि अंडेमान द्वीप समूह से ढोई गई लकड़ी मण्डियों में विस्तार तथा बेचने के लिए ले जाई जाए पर फिलिप हुचिन्स इस पर सहमत नहीं थे। उनके अनुसार यह लकड़ी बढ़िया नहीं है अतः कम्पनी की साख गिरेगी। रिब्बनत्रॉप को

विश्वस्त सूत्रों से फिलिप की मेम साहिबा के मन की बात पता चली कि वह एक 'डांसिंग फलोर' चाहती है। बस उसने इसे भुनाने के लिए तुरंत अण्डेमान से ढोई गई लकड़ी का उपयोग उक्त 'डांसिग फलोर' बनाने में किया और टिम्बर मार्किट' में यकदम अंडेमान की लकड़ी की मांग बढ़ गई। चूंकि स्वयं उसके भवन में उक्त लकड़ी प्रयोग की गई थी अतः फिलिप को अपनी सहमती देनी पड़ी।

1886 ई0 में थिओडोर होप ने इस इमारत को कर्नल, सर विलियम बिस्सेट को चालीस हज़ार रुपये में बेच दिया जिसे चार वर्ष बाद, 1890 ई0 में सर जेम्स वॉल्कर ने दुगुणी कीमत देकर इसे खरीद लिया। इसकी कीमत अस्सी हज़ार रुपये अदा की गई। जब जेम्स वॉल्कर अवकाश प्राप्त कर इंगलैंड जाने की तैयारी करने लगे तो उन्होंने इस भवन को युरोपीय समुदाय के लिए अस्पताल बनाने के लिए दान कर दिया। यह एक बहुत बड़ा योगदान था। शिमला में उपस्थित युरोपीय्र समुदाय की अनेक संस्थाओं ने जेम्स वॉल्कर की इस फिराख–दिली की जमकर प्रशंसा की। लेकिन एक तबका ऐसा भी था जिसे यह 'सेन्ट्र्ली प्लेसड' भवन अस्पताल के उपयुक्त नहीं लगा। यह धारणा बलवती होती गई चुनाचे तत्काल ब्रिटिश सरकार ने इसे एक लाख बीस हजार में खरीदकर भवन तथा इसके साथ लगती खाली जगह में सिविल सैकिटेरिएट के कार्यालयों को तैयार करने के लिए हरी झण्डी दिखा दी। कालान्तर में यहां गृह, शिक्षा, स्वास्थ्य, कानून, वाणिज्य आदि मन्त्रालयों के कार्यालय स्थापित किए गए। इनके निर्माण का बीड़ा मेजर एच0एफ0चेस्नी ने उठाया। इसका डिज़ायन सर स्विटॅन जेकॅब ने तैयार किया था पर कालान्तर में इसमें अनेक परिवर्तन किए गए। इस इमारत पर ग्यारह लाख रुपये की लागत आई थी लगभग एक सदी से तीन चार वर्ष पहले। इसे सन् 1900 ई0 में ब्रिटिश सरकार ने दुबारा फरोख्त किया था और कुछेक वर्षों में नये दफतर तैयार हो गए थे।

■■■

डेलजेल्ल हॉऊस

शिमला में निर्मित कुछेक पुराने भवनों में डेलजेल्ल का अपना महत्व है। माल रोड के लगभग मध्य में स्थित इस भवन ने ब्रिटिश इण्डियां के अनेक उतार चढ़ाव देखे हैं। इस भवन का सर्वप्रथम सन्दर्भ हमें कैप्टेन जी0डी0 थामस द्वारा 1847 ई0 में लिखे गए संस्मरणों से मिलता हैः–

'मेरा इस घर के प्रति आकर्षण है। इसी के साथ उस पठार के प्रति मैं आग्राही हूं जिस पर यह स्थित है। यद्यपि इस भवन से नैसर्गिक दृश्य इतने खूबसूरत नहीं दिखाई देते जितने खूबसूरत उस पठार पर चढ़ कर देखे जा सकते हैं। लेकिन इस भवन के प्रति मेरे आकर्षण का मुख्य कारण यह है कि एक बार मैं शिमला में भयंकर तौर पर बीमार हो आया था लेकिन बहुत थोड़े समय में ही इस घर में रहते हुए ठीक हो आया था। शिमला में प्रातः नींद त्याग कर उठने की प्रक्रिया इतनी लुभावनी है कि इसे व्यान नहीं किया जा सकता।

प्रातः उठते ही नीचे जामूनी और भूरे रंग में रंगे पर्वतीय घुमाव को देखना, अपने चारों ओर सघन वनों को महसूस करना और सदूर स्थित बिना किसी चिन्ह के हिमालय को निहारना, अपने रास्ते के दोनों ओर लगे ओक व पाईन वृक्षों से लिपटी बल्लरियों और फफूंद का अहसास पाना और सर्वोपरि अपने पावों के नीचे शबनम से नहाए वन–फूलों और फर्न के पौधों को सहलाते हुए निकल जाना सचमुच सब–कुछ सवार्गिक है। मन को अति सुख देने वाला घर होने का अहसास, विशेषकर एक रोगी के मन में स्थिर हो जाता है– वह उसे अपने मन की आंखों से निरखता रहता है– स्वप्न की तरह, संस्मरण की तरह नहीं जब उसने पहले दिन बिताए थे अथच सारी जिंदगी भर उसके खूबसूरत रंगों का वह अहसास पाले रहता है।'

'डेलजेल्ल हाऊस' केप्टेन एच0बी0 डेलज़ेल्ल द्वारा निर्मित भवन 18वीं शताब्दी के चालीस के दशक में वजूद में आया। लगभग साठ वर्ष तक इस भवन में अनेक वैभवशाली अंग्रेज अधिकारी किरायेदार के तौर पर रहे हैं। इनमें से सर आर0 ए0 मंट, जनरल शमशेर सिंह थापा नेपाल के राणा बहादुर, सर लूई करशॉ आदि किसी न किसी रूप में ब्रिटिश सरकारी व्यवस्था के साथ जुड़े थे। बाद में यह भवन अनेक व्यवसाईयों का भी आवास स्थान रहा है। इनमें से ए0पी0मड्डीमन ,ए0एच0ले,ई0 बरडॅन, जी0सी0गूडिंग, कर्नल जे0 के0एस0फलेमिंग आदि प्रमुख थे।

मेई 1907 ई0 में यह भवन बैंक ऑव बंगाल ने एक लाख तीस हजार में खरीद लिया और इसे ढहा कर फिर से इसे तामीर करवाया गया। बाद में इसे इम्पीरियल बैंक ऑव इण्डिया ने खरीद लिया और 1927 ई0 तक यह भवन बैंक ऑव इण्डिया की जयदाद रहा।

स्वतंत्रता के साथ–साथ अनेक बैंक स्टेट बैंक ऑव इण्डिया के साथ मिल गए और इम्पिरियल बैंक ने भारत के प्रमुख बैंक, स्टेट बैंक, का रुतबा इख्तियार कर लिया और स्वतः ही यह भवन 'स्टेट बैंक ऑव इण्डिया' की शिमला शाखा का मुख्यालय बन गया था। आज हमारी धरोहर के अंतर्गत इस भवन को भी लिया गया है।

दुमंजिला यह भवन अपने अनुक्रम के अनुसार अति भव्य भवन कहा जा सकता है। नीचे की मंजिल में एक बहुत बड़ा हाल है जिसके चहुं ओर प्रकोष्ठ बने हैं और ये प्रकोष्ठ ऐसे बनाए गए हैं जो एक बैंक के रूप में अच्छी प्रकार स्थापित हो सकें। इन प्रकोष्ठों में अभी तक महोगनी का ही फरनीचर लगा है। सामने कैशियर के कांउटर के फलक पर आज भी कलात्मक तरीके से आई0बी0आई0उकेरा गया है ज़ो इस ओर संकेत करता है कि ये फलक भी उतने ही पुराने है। जो आज भी इम्पीरियल बैंक की याद ताज़ा करां जाते हैं।

बैंक मैनेजर के प्रकोष्ठ में आज भी डेल्लज़ेल हॉऊस की पुरानी तस्वीर इस ओर संकेत करती है कि आज

,लगभग सवा सौ साल बाद भी, यह भवन सजीव है।

ऊपरी मंजिल में इम्पीरियल बैंक के मुख्य प्रबंधक का वास रहा है। अक्सर ये अंग्रेज़ ही हुआ करते थे। और जो भारतीय प्रबंधक आये भी तो उन्हें यह शानो शौकत और रख रखाव विरासत में मिला अवश्य लेकिन वे इसे कायम नहीं रख सके। बहुत सी एंटिक वैल्यू की वस्तुयें गायब हो गई। जैसे चांदी की कॉकरी के स्थान पर चायना की काकरी रख दी गई, महोगनी और टीक वुड का फरनीचर गायब हो गया और टूटा हुआ दिखा दिया गया। आफरीन तो देखिये ऐंटिक वैल्यू का इतना बड़ा विलियर्ड टेबल भी गायब हो गया। कीमती कालीन और दूसरी अमूल्य वस्तुओं का क्या हुआ पूछने पर कर्मचारी अपना सर खुजलाने लगतें हैं और संकेत से किसी अवकाश प्राप्त महाप्रबंधक की ओर संकेत करते दीखते हैं।

ऐयाशी की प्रतीक जंग खाई हुई तोड़ादार बंदूकें मात्र आज ऊपरी मंजिल की शोभा बढ़ा रही हैं। ये बंदूकें क्यों नहीं उठीं कारण स्पष्ट है कि एक तो इनके लिए लाईसेंस की आवश्यकता रहती है और दूसरे जंग खाई हुई तोड़ादार बंदूकें अब किसी के काम की नहीं रह गई। लेकिन एक बात जिसकी ओर हम संकेत करना चाहेंगे वह यह है कि अभी भी इस भवन का रख रखाव बहुत ही सुचारु ढंग से चल रहा है बावजूद इसके कि खूब आमदो.रफ्त रहती है।

■■■

डेलज़ेल एस्टेट एवम् कॉटेज

जैसे कि पहले कहा जा चुका है कि एच0बी0डेलज़ेल जोकि कैप्टेन के ओहदे पर तैनात था जानता था कि शिमला आने वाले समय में उत्तरी भारत का एक महत्वपूर्ण नगर होगा और उसके दिल को चीरती मालरोड इस नगर की धड़कन होगी इसीलिए उसने माल रोड के ठीक मध्य में अनेक एकड़ जमीन पर कब्जा कर लिया था जो वर्तमान स्टेट बैंक के मुख्यालय से लेकर नीचे गॉरटॅन भवन तक चली गई थी। इस एस्टेट में उसने अपना आवास ऊपर की ओर बनाया था जो कालान्तर में बैंक ऑव बंगाल और बाद में इम्पीरियल बैंक ने ले लिया था। यही इम्पीरियल बैंक कालान्तर में स्टेट बैंक का भवन बना। आज भी उक्त बैंक में इम्पीरियल बैंक के सैल तथा काष्ठ फलकों पर 'आई0बी0आई' खुदा है यानिकि इम्पीरियल बैंक ऑव इण्डिया।
बाकी की जयदाद में डेलज़ेल ने एक आवास–गृह बनाया था जो कि अनेक ब्रिटिश अहलकारों को किराये पर दिया जाता था। इस आवास गृह में अनेक महत्वपूर्ण ब्रिटिश अहलकार रहे थे। इनमें सर्वोमुखी एक कैप्टेन जी. डी.थॉमस थे जिन्होंने अपने संस्मरणों में इस जयदाद का जिक्र किया है।

इम्पीरियल बैंक के साथ लगती जयदाद 'डेलज़ेल हाऊस' के पास ही नीचे की ओर 'डेलज़ेल कॉटेज' नाम से एक अन्य भवन 'नार्थ बैंक' का कार्यालय था। इसे बाद में बड़ा कर 'कांउटेस ऑव डफरिन फंड' का कार्यालय बना दिया गया। इसी भवन में कुछ वर्षों तक 'अवर डे' नामक एक समाचार पत्र भी छाया होता रहा है।

1886 ई0 के अंत में इस 'कॉटेज' में एक भयंकर दुर्घटना होते होते बची। उन दिनों शिमला में खूब वर्षा हुई कि अनेक इमारतें ढह गईं। उन दिनों यह 'नार्थ बैंक' के कार्यालय के साथ–साथ सी0ए0 बेलै का निवास स्थान भी था। बाद में बेलै पूर्वी बंगाल के ले0 जनरल के पद पर आसीन होकर सर सी.बेलै कहलाए। उक्त दुघर्टना का जिक्र लेडी डफरिन ने इस प्रकार किया है:–

'बैलै तथा उनकी पत्नी श्रीमती बेलै के यहां खाने पर मेहमानों को आमंत्रित किया गया था जिन्होंने खाना खाकर एक बजे वापिस जाना था। उन्हें विदा कर वे दोनों अपने कमरे में बैठकर उस दिन हुई घटनाओं और मनोरंजन को ड्राईग रूम में स्मरण ही कर रहे थे कि उन्होंने बड़ा शोर सुना। वे शोर की दिशा में भागे तो देखते हैं कि उनके डायनिंगरूम की दीवार जवाब दे गई है और सारा मलबा रूम के बीच जमा हो आया था जिसने ऊपर जाते जीने के मार्ग को अवरुद्ध कर दिया था। किसी प्रकार बेलै एक छोटे, तंग ज़ीने से उपर पहुंचे जहां उनके दो बच्चे सो रहे थे। उन्हें किसी प्रकार कपड़ों से लपेट कर वे नीचे आए और मलबे पर बैठे सोचते रहे कि अब क्या हो। उनके साथ बच्चों की आया और श्रीमती बेलै की बहन भी थी जो बरसती बरसात में उसी हालत में बाहर निकले क्योंकि वहां रहना अब खतरे से खाली नहीं था। वे अपने पड़ोसी के यहां पहुंचे और किसी तरह रात बिताईं रात्रि के समय एक बहुत बड़ा वृक्ष उखड़कर उनके मकान पर गिरा था और उनके घर छोड़ने के बाद डायनिंग रूम का फर्नीचर तथा वहां पड़ी काकरी आदि सभी तबाह हो गए थे।'

बाद में इस भवन को फिर से तैयार कर एक भारतीय को बेच दिया गया पर उसकी कहीं चर्चा नहीं मिलती। उक्त भारतीय ने इसे सर एडवर्ड बक्क को बेच दिया। बंदरों की सेना रोज़ाना उनके लॉन तथा टेनिस कोर्ट में जमा हो जाती और अनेक प्रकार की रासलीला रचने लगती। बंदरों के बच्चे विशेषकर खूब हुड़दंग मचाते। उनमें से एक इतना करीब आ गया था कि वह एडवर्ड बक्क के कमरे की खिड़की तक चला आता जहां उसे एडवर्ड की ओर से कुछ न कुछ खाने को मिल जाता परिणामतःवह दो कौओं की ईर्ष्या का पात्र बन गया।

जब ही वह ऊपर खिड़की की ओर जाता ये कौये 'कांय–कांय' कर उस पर टूट पड़ते और उससे खाने की वस्तु छीनने का प्रयास करते। यह देखकर बंदरों का नेता अपने साथियों के साथ उस ओर भागता और उन्हें खदेड़ देता। पर इस रोज–रोज़ के पचड़े से तंग आकर बंदरों के नेता ने ताक लगा कर उन दो कौओं में से एक को पकड़ लिया और उसका एक–एक पंख उखाड़कर बाद में उसे मार डाला। सर एडवर्ड बक्क के रूदयार्ड किपलिंग उन दिनों मेहमान थे। वहां से जाने के बाद किपलिंग ने एडवर्ड को पत्र लिखकर उन बन्दरों का हाल–चाल पूछा था– 'आपके पत्र पर दिए गए नाम से मेरी यादें ताज़ा हो आईं हैं। क्या अभी भी बंदर 'नार्थ बैंक' के ऊपरी शयन कक्ष में तुम्हारा 'हेयर ब्रश' लेने आते हैं।'

यद्यपि बाद में यह भवन बैंक न रहकर मात्र अनेक वरिष्ठ ब्रिटिश अहलकारों का आवास स्थान बना तथापि इस भवन का नाम 'नॉर्थ बैंक' ही चर्चित रहा इस भवन में रहने वालों की एक लम्बी सूची एडवर्ड0 जे0 बक्क ने अपने लेखन में दी है। इनमें से कुछेक क्रमशः इस तरह थे–सर आर0ए0मंत, नेपाल के जनरल सर शमशेर राणा बहादुर, सर लूई केरशॉ, ए0एच0ले, ई0 बर्डन, जी0सी0गूडिंग, कर्नल जे0 के0 एस0 फलेमिंग आदि।

बाद में इस सारे काम्पलेक्स को जिसमें इस कॉटेज के साथ एक लॉज भी थी, डेलजेल हॉऊस को छोड़कर जो इम्पीरियल बैंक की ही इमारत रही, को राणा ने खरीद लिया और अनेक वर्षों तक यहां वे अपने लाओ--लशकर के साथ आते रहे, विशेषकर गर्मियों के दिनों में। कालान्तर में यह जयदाद हॉट्ज़ होटल प्राईवेट लिमिटिड ने खरीद ली और इसे तीन चार हिस्सों में बांट दिया। कैप्टेन डुरांड इस प्राईवेट कम्पनी के सर्वे सर्वा थे। वस्तुतः यह जयदाद एलिजाबेथे नामक एक महिला को अपने माता–पिता से विरासत में मिली थी और एलिजाबेथे के साथ शादी रचाकर कैप्टेन डुरांड इस सारी जयदाद का मालिक हो आया था। बाद में डुरांड दम्पत्ति आस्ट्रेलिया चली गई और यह जयदाद तीन हिस्सों में बांट कर बेच दी गई। मुख्य भवन के ऊपरी माले में उन दिनों 'लेडी इरविन गर्ल स्कूल' चलता था और नीचे आवास स्थान था। इसे 'वीरेन्द्र होटल्स तथा एलाईड इण्डस्ट्रीज प्राईवेट लिमिटिड' ने 1972 ई0 में तीन लाख में खरीदा और इसे होटल में बदल दिया। कालान्तर में स्कूल 'दयानन्द पब्लिक स्कूल' में बदल कर कमांड एरिया में स्थानान्तरण हो गया और ये पूरा भवन होटल में बदल दिया गया।

इस जयदाद का हिस्सा एक अन्य सूद परिवार ने खरीदा और इसे डेलज़ेल्ल कार्नर हॉऊस की संज्ञा से अभिहित किया और तीसरे भाग में एक अन्य होटल स्थापित हुआ। 'डेलज़ेल कॉटेज' के क्रेता ने इसका ऐतिहासिक नाम और स्वरूप बनाए रखा है और वे सुचारु तौर पर इसकी देखभाल कर रहे हैं। इसके कर्त्ता–ध र्त्ता श्री सतीश चन्द्र सूद जी से मिलकर, जो कि अभियंता के पद से अवकाश प्राप्त कर अब होटल चला रहे हैं, अनेक सूचनायें प्राप्त हुईं और साथ ही 1972 ई0 में की गई सेल डीड की प्रति भी देखने को मिली जो कि एक महत्वपूर्ण दस्तावेज है।

■■■

मुख्य डाकघर, शिमला

रिज़ पर स्कैंडल पुआइंट के पास से एक रास्ता ऊपर की ओर जाकर ग्रेंड होटल के पास निकलता है। लगभग डेढ़ सौ मीटर आगे जाने पर गोथिक शैली में बना एक भव्य भवन दाईं ओर स्थित है जो अपनी कमानीदार खिड़कियों व चारों ओर खुलते शीशे के फलकों और नमूनेदार भीत्तियों के कारण दूर से ही नमूदार होता है। यह शिमला का मुख्य डाकघर है। मुख्य डाकपाल के अनुसार मुख्य डाकघर का यह भवन 120 वर्ष पूरे कर चुका है लेकिन इसके इतिहास के बारे में उनके पास दिखाने के लिए कोई दस्तावेज नहीं न ही महकमा माल द्वारा प्रेषित कोई रिकार्ड ही हैं मात्र वे इतना जानते हैं कि यह कभी पीटर्सन नामक व्यक्ति, जो कि एनलबर्ट तथा कम्पनी का मालिक था, का भवन था जो कोन्नी लॉज नाम से चर्चित था। एनलबर्ट कम्पनी पाश्चात्य अहलकारों विशेषकर युरोपीय समुदाय के लोगों के लिए वस्त्र तैयार करने की एक मात्र कम्पनी थी जिसमें अनेक पाश्चात्य तथा देशीय दर्जी काम करते थे। बाद में इसी स्थान पर अनेक दूसरी कम्पनियों, कौट्टस तथा कम्पनी, रैन्कन तथा कम्पनी आदि ने अपने व्यवसाय स्थापित किए थे।

श्री पीटर्सन ने यहीं पर शिमला बैंक आरम्भ किया था जिसके मैनेजर बन कर वे तब तक कार्यरत रहे जब तक कि कोन्नी लॉज को बेचा नहीं गया। वस्तुतः 1883 ई0 में पीटर्सन ने स्वयं इसे बेच दिया था। हो सकता है कि अनेक कम्पनियां और दर्जी की दूकाने खुलने से उसका व्यवसाय ठण्डा पड़ गया हो तो उसने इस व्यवसाय को बंद कर शिमला बैंक की नींव रखी। शायद बाद में उसे भी बंद करना पड़ा होगा। अन्ततः इसे तत्कालीन सरकार ने खरीदकर यहां शिमला का प्रथम डाकघर शुरू किया। यह 1884 ई0 का वर्ष था। बाद में इसे मुख्य डाकघर का दर्जा दिया गया और श्री एफ डॉल्टॅन इसके मुख्य डाकपाल नियुक्त हुए। और देश के आज़ाद होने तक बीसियों डाकपाल रहे। अंतिम अंग्रेज मुख्य डाकपाल श्री एल.जी. पिगोट्ट थे जो दिसम्बर 1946 ई0 तक मुख्य डाकपाल रहे। 1947 ई0 के आरम्भ में श्री ए.के0हज़ारी प्रथम भारतीय मुख्य डाकपाल नियुक्त हुए जो श्री पिगोट्ट के साथ सहायक डाकपाल के तौर पर कार्य कर चुके थे पर पिगोट्ट से वरिष्ठ होते हुए भी भारतीय होने के कारण उनके सहायक मात्र बन सके थे। पर स्वतंत्रता के बाद उन्हें मुख्य पद दे दिया गया थां

इस डाकघर के वजूद में आने से पहले अम्बाला से एक विशेष डाक गाड़ी डाक लेकर कालका के पर्वतीय इलाकों तक पहुंचाई जाती थी जहां से इसे हरकारों तथा दूसरे डाक कर्मियों द्वारा खच्चरों, घोड़ों आदि के पीठ पर लादकर सुबाथु के रास्ते शिमला पहुंचायां जाता था। इनकी सुरक्षा का यथोचित प्रबन्ध किया जाता था। शिमला से डाक हरकारों द्वारा दूसरे स्थानों पर ले जाई जाती थी। ये हरकारे तथा डाकिए अद्भुत प्राणियों की श्रेणी में लिए जाते थे। एक डच बासी डॉक्टर ने इनके बारे में एक संस्मरण में लिखा है--

'घंटी की आवाज़ सुनाई देने लगती है जो खच्चरों के गले में बन्धी घंटियों से मंद आवाज़ है। दूर मार्ग के मोड़ पर से एक व्यक्ति लम्बे लम्बे डग भरता नमूदार होता है मानो हमारा पीछा कर रहा हो। उसने खुरदरे, घर के बने, भूरे वस्त्र पहन रखे थे मानों 'ज्यूट' के टुकड़ों को लपेटा हो। ऊपर एक चोगा सा पहन रखा था और नीचे पतली टांगों से चिपटा एक पाजामा। वह सर और पांव से नंगा था और लम्बे काले बाल उसके कन्ध ों से होकर नीचे लटक रहे थे। उसके बांयें बाजू पर एक पीतल की प्लेट बन्धी थी जिसपर लिखा था 'पोस्ट कैरियर' अर्थात हरकारा। और उसके दायें हाथ में एक नोकदार नेजेनुमा डण्डा था जिसपर एक घण्टी बन्धी हुई थी। वस्तुतः इन हरकारों को रात रात भर वन प्रान्तर में रो होकर गुजरना पड़ता था अतः यह घण्टी रास्ते में

पड़ते जंगली जानवरों को भगाने में सहयोग देती थी। उस व्यक्ति ने, जो स्वयं भी आधा जंगली लगता था, हम तक पहुंच कर एक बड़ा 'सलाम' ठोका और अपनी पीठ पर लदे गनी बैग को उतार कर खोलने लगा। उसने अलग अलग बन्धी चिट्ठियों के पुलिंदों में से दो निकालीं जिनपर परिचित हेग के डाकखाने की टिकटें और मुहरें लगीं थीं। मुझे आश्चर्य था कि उसने हमें कैसे पहचाना विशेषकर उसे कैसे पता लगा कि ये चिट्ठियां मेरी ही थीं तो उसने बड़ी मासूमियत से जवाब दिया कि डॉ0 साहब जब लिखते हैं तो किसी से पढ़ा नहीं जाता। इन पत्रों पर भी जो लिखा था किसी से पढ़ा नहीं गया अतः यही फैसला किया गया कि ये पत्र आपके ही होंगे।'

बाद में जब, 1853 ई0 के लगभग कालका से सड़क मार्ग शिमला पहुंचा तो डाकगाड़ी सीधे शिमला तक आने लगी थी। साठ के दशक में शिमला में अस्थाई डाकेघर स्थापित किया गया था जहां से दूसरे स्थानों पर डाक हरकारों द्वारा खच्चरों और घोड़ों की पीठ पर लादकर भेजी जाती थी। 1903 ई0 में कालका से शिमला तक रेल लिंक स्थापित होने के साथ–साथ डाक रेल द्वारा भेजी जाने लगी। वर्तमान में प्रातः छः बजे एक विशेष रेल गाड़ी डाक लेकर शिमला पहुंचती है।

एक सदी में बहुत कुछ बदल गया है। यद्यपि पुराने डाक भवन का ग्राऊंड फलोर वैसे ही खड़ा है जैसे पहले था पर ऊपर के मालों में 21 सितम्बर 1972 ई0 के रोज आग लगने से बहुत नुक्सान हो आया था जिसे बाद में दुबारा बनाया गया। इस बीच डाक कर्मियों के लिए कन्टीन तथा मनोरंजन की सुविधायें मुहैया करवाई गई। 16 फरवरी, 1961 ई0 को वरिष्ठ लोकपाल का कार्यालय खोला गया।

31 जुलाई 1983 ई0 में सदी पूरी करने पर विशेष कार्यक्रमों का आयोजन किया गया और इसे शिमला हेड पोस्ट ऑफिस का रुतबा दिया गया। दो वर्ष बाद यहां स्पीड पोस्ट केन्द्र खोला गया। 1992 में इसे 'हेरीटेज भवन' के रूप में घोषित किया गया। वर्ष 2000 में इसे पूर्णतया कम्प्यूटेराईज़ड बना दिया गया।

इस भवन में ग्राऊंड फलोर पर एक वृहद् हाल कमरा हैं जिसे दो हिस्सों में बांट दिया गया है। बाहिरी भाग में कांऊटर बना दिए गए हैं जहां से डाक टिकटें, मनी आर्डर रिजीस्ट्री राशी जमा करने की सुविधाओं के साथ–साथ नई टिकटों का भी कांऊटर है। एक ओर मुख्य लोकपाल का प्रकोष्ठ है तो कांऊटर के पीछे लगते हिस्से में कम्प्यूटर पर कर्मी कार्यरत हैं तो इनके बाद एक अन्य भाग में डाक से आईं चिट्ठियों को छांटने की व्यवस्था है। ऊपर के माले में पुराना रिकार्ड और दूसरे कार्यालय हैं। पर इस भवन अथवा दो अन्य डाक भवनों–चौड़ा मैदान और समरहिल के भवनों के बारे में दस्तावेज नदारद हैं। कुछ भी उपलब्ध नहीं। मात्र मौखिक सूचनायें ही उपलब्ध हैं।

■■■

नगर निगम भवन, शिमला

नगर निगम का शासन षिमला में 1851 दिसम्बर में लागू किया गया। यह प्रशासन उत्तरी भारत में सबसे पुरातन और गैर सरकारी था। अलबत्ता नगर निगम बोर्ड पंजाब द्वारा 1876 में लागू हुआ। जिसमें 19 सदस्य थे। इनमें से सात सरकारी सदस्य होते थे और 12 गैर सरकारी। 12 गैर सरकारी सदस्यों में तीन नामांकित होते थे। इनका चयन शिमला के निवासियों द्वारा किया जाता था।

1882 ई0 में ले0गर्वनर ने एक कमेटी बनाई जो नगर निगम के भविष्य संविधान के बारे में कुछ निश्चित कर सके। अतः जो सिफारिश सामने आईं उनके मुताबिक निगम के 12 सदस्य और एक प्रधान की अनुशंसा की गई थी। और यह कि सभी चयनित होंगे। ये सदस्य स्वयं प्रधान और उपप्रधान को चयनित करेंगे। इनमें से कम से कम तीन सदस्य स्थाई होंगें।चौथा बाज़ार से सम्बन्धित होगा। और बाकी बचे हुए जन–साधारण से होंगे। प्रधान और उप–प्रधान के कार्य की अवधि तीन वर्ष होगी। लेकिन एक तिहाई लोगों को अपना पद हर वर्ष छोड़ना होगा। और हर वर्ष इन पदों को भरने के लिए चुनाव करना होगा।

1890 में ले0 गर्वनर को एक ज्ञापन दिया गया जिसके तहत नगर निगम को खत्म किया जाना था और एक नगर निगम का कमीशनर नियुक्त करना था। पंजाब सरकार के साथ सम्पर्क कर नगर निगम का संविधान परिवर्तित किया गया जिसके तहत सदस्यों की संख्या 13 से कम कर 10 तक कर दी गई जिनमें से छः चयनित थे और चार नामित थे। चार नामित सदस्य भारत सरकार के भरोसे के थे। एक सीट सिवल सर्जन के लिए सुरक्षित की गई, दूसरी अभियन्ता के लिए थी और दो सीटें भारत सरकार द्वारा नामित की जातीं थीं जिनमें से एक के पास मैजिस्ट्रेट के अधिकार थे।

1904 ई0 से 'स्टेशन वार्ड' की सीट, जो पहले चयन से भरी जाती थी अब पंजाब सरकार के आदेशानुसार नामित की जाने लगी।

1908 ई0 में निगम का संविधान एक बार फिर परिवर्तित किया गया कि अब भविष्य में सात सदस्य नामित होंगे और चार तनख्वाह पर होंगे। 1917 ई0 में सदस्यों की संख्या सात से आठ कर दी गई जो सभी सरकार द्वारा नियुक्त किए जाते थे। 1920 ई0 में शिमला मालिक मकानों की संस्था ने सरकार को ज्ञापन दिया कि इन सीटों को चयन के लिए खुला छोड़ दिया जाए तथा सरकार ने 1922 में सदस्यों की संख्या दस कर दी। इनमें से तीन सरकारी अफसर आयुक्त, हैल्थ आफीसर तथा कार्य अभियंता थे। चार में से दो को सरकार नामित करेगी और दो का खुला चयन होगा जबकि बाकी के तीन सदस्य पंजाब सरकार द्वारा नामित होंगे। नगर निगम का यह संविधान काफी रोज तक लागू रहा।

नगर की बढ़ती आबादी के तहत इनकी जिम्मेदारियां भी बढ़तीं गई– 1844 ई0 तक शिमला म्युनिसपेलिटी में कुल सौ घर आते थे जो 1904 में 1400 हो गए और 1925 में 1800 हो गए और अब तो शायद इनकी संख्या नगर निगम के पास भी नहीं कि कितने हज़ार हो आए हैं और जनसंख्या हज़ार गुणा से ज्यादा बढ़ आई है। बढ़ती हुई आबादी और स्थान सिकुड़ने के कारण पंजाब सरकार की गर्मियों की राजधानी शिमला से डलहोजी ले जाने का निश्चय किया गया। इसमें लार्ड कर्जन और उनकी सरकार इसके हक में थी कि पंजाब की राजधानी गर्मियों में डलहौजी ले जाई जाए। लेकिन बाद में जब सारे मामले पर गौर किया गया तो पाया गया कि यदि पंजाब की राजधानी डलहौजी शिफ्ट कर दी गई तो निगम की जरूरत ही क्या रह जाएगी– वहां शाही सरकार की छावनी बन जाएगी।

बढती आबादी के साथ निगम की चिंतायें भी बढ़ने लगीं 1878 ई0 में शिमला की जनसंख्या 17440 थी जो 1890 ई0 तक पहुंचते 30000 तक पहुंच गई। 1920 ई0 तक पहुंचते यह जनसंख्या 50000 तक जा पहुंची जिनमें से पांच हजार पाश्चात्य वासी थे। सर्दियों में इसकी संख्या कुल 17000–20000 तक रह जाती थी। निगम की वार्षिक आय लगभग 12 लाख सालाना थी और हरेक व्यक्ति पर लगभग 17 रुपये टैक्स पड़ता था।

निगम के अध्यक्ष के तौर पर अनेक चर्चित व्यक्तित्व वाले व्यक्ति रहे हैं। इनमें से कर्नल पेरी निस्बेत अति प्रभावशील व्यक्तित्व रखते थे। सचिवों में से होरस बी0बी0गोड तो हर अपराधी के लिए खतरे का घण्टी थे–उनके नाम से ही सब सीधे हो जाते थे। उनकी नियुक्ति 1877 ई0 में सर लेपेल ग्रिफिन की अध्यक्षता में बैठी कमेटी ने की थी और होरस 17 वर्ष तक इस पद को सुशोभित करते रहे।

जल वितरण में अनेक कठिनाईयां आतीं रहीं और शिमला के आस–पास सभी जलस्रोतों को दोहा गया। चेरट नाले से पानी भी पम्प किया गया और बिजली भी पैदा की गई। नॉटी नदी से, मशोबरा से लगभग 4000 फुट नीचे से पानी ऊपर चढ़ाया गया। गुमा में इसकी सफाई की जाती और गुमा से पानी क्रिगनैनों तक स्टील की पाईपों से पहुंचाया गया जहां से 1८ इंच की पाईप द्वारा मशोबरा में एक बड़े टैंक में जमा किया जाता जहां से यह शिमला में वितरित किया जाता।

15 जुलाई 1913 ई0 के दिन बिजली का पहला बल्ब शिमला में जला। शुरू शुरू में यह वितरन बहुत सीमित था पर फिर धीरे धीरे इसके उत्पादन के साथ वितरण भी बढ़ा। 1923 ई0 में बिजली छः आने प्रति युनिट वितरित की जाती थी।

निगम की वर्तमान इमारत गोथिक शैली में बनी है जो लगभग 1886 ई0 से पहले निर्मित की गई थी। हो सकता है इसका निर्माण उस समय ही किया गया हो जब निगम बोर्ड स्थापित किया गया था। इसके निर्माण की सटीक तिथि नहीं मिलती। निगम से मिले पुराने रिकार्ड में ए0पी0मैकडोनेल,जो कि तत्कालीन भारत सरकार के गृह मंत्रालय में कार्यकारी सचिव थे,ने 27 दिसम्बर,1886 को पंजाब सरकार के सचिव को लिखे एक पत्र द्वारा स्मरण करवाया था कि पंजाब सरकार ने भारत सरकार द्वारा लिखे गए पत्र के उत्तर में पूरे ब्योरे नहीं दिये।उक्त पत्र द्वारा भारत सरकार ने पंजाब सरकार से यह पूछा था कि जब नगर निगम भवन के निर्माण के लिए कुल खर्चा 166999/–रु0 की अनुमति दी गई थी तो 336672/–रु0 का खर्चा कैसे किया गया ! इसका अर्थ यह हुआ कि यह इमारत 336672/–रु0 की लागत से बनाई गई थी और जिस पत्र का हवाला दिया गया है वह निश्चय ही अगस्त के आसपास लिखा गया होगा क्यों कि उक्त पत्र का उत्तर पंजाब सरकार ने अक्तूबर 4,1886 के दिन 528 एस क्रमांक के अंर्तगत दिया था। इसका मतलब यह हुआ कि नगर निगम का यह भवन निश्चय ही 1886 ई0 से पहले या 1886 ई0 के आरम्भ में बनकर पूरा हुआ होगा। इस प्रकार इस भवन ने लगभग एक सौ बीस वर्ष के आसपास का सफर तय कर लिया है। आज भी यह इमारत अपना सर उठाए, अपने में लगभग 120 वर्ष का इतिहास छुपाए है। यह वह इमारत है जहां से शिमला नगर पर सवा सौ वर्ष से प्रशासन होता रहा है।

वर्तमान महापौर श्री सोहन लाल जी हैं जबकि कमीशनर श्री चौहान जी हैं। और संयुक्त कमीशनर श्री देव सिंह नेगी जी हैं। आज नगर निगम के कुल सत्ताईस सदस्य हैं। जिन में से अधिकांश चयनित है।

■■■

शिमला ड्रेमेटिक क्लब और गेयटी थिएटर

शिमला ड्रेमेटिक क्लब का इतिहास बहुत पुराना है और इतना ही दिलचस्प भी। इसे ए0डी0सी0 की चर्चित संज्ञा से अभिहित किया जाता रहा है। शुरू–शुरू में यह क्लब अपने स्रोतों पर निर्भर था। वैसे भी मनोरंजन में माहिर कम्पनियां उन दिनों कोई विशेष प्रोत्साहन नहीं पातीं थीं – कुछ इने–गिने आश्रयदाता राजे–रजवाड़ों के रूप में इन्हें आंशिक तौर पर आर्थिक लाभ अवश्य पहुंचाते थे पर जन–साधारण अभी भी रामलीला, कृष्णलीला तथा लोक नाट्यों के प्रति आवद्ध था। उनके लिए शास्त्रीय नाटक उतना ही महत्व रखते थे जितना वे रामलीला अथवा कृष्णा लीला के मंचन समय विषयेत्तर धार्मिक अन्य उपाख्यानों को महत्व देते थे। महिलायें विशेषकर धर्म तथा आस्थाओं पर आधारित इन लघु नाटकों और उपाख्यानों के प्रति ज्यादा झुकाव रखतीं थीं।

अंग्रेजों के सान्निध्य में या ऐसा कहना चाहिए कि उन्हें खुश रखने के लिए एक ऐसा भी तबका धीरे धीरे समाज के इस परिदृश्य में सेंध लगा रहा था जो न चाहते हुए भी अंग्रेजी और शास्खेय ग्रीक नाटकों के मंचन में सहयोग तो देता ही अपितु बाहर से नाटक कम्पनियों को भी बुलाने में सदा तत्पर रहता था। यद्यपि इन नाटक कम्पनियों का प्रभाव कलकत्ता व बंबई, वर्तमान कोलकत्ता तथा मुंबई तक ही सीमित था तथापि ब्रिटिश इण्डिया की ग्रीष्माकालीन राजधानी शिमला हो जाने से इन कम्पनियों का ध्यान शिमला की ओर भी जाने लगा था। अतः अनेक नाटक कम्पनियों ने इस ओर अपनी दिलचस्पी दर्शाई थी। इनमें से हॉविट फिलिप्स कम्पनी तथा एच0बी0वेंरिग्स् कम्पनी विशेष तौर पर इंगित की जा सकतीं हैं। पर इनके द्वारा मंचित नाटकों प्रहसनों आदि से इनका खर्चा भी पूरा नहीं हो पाता था चुनाचे आगे इन्होंने शिमले आने में दिलचस्पी नहीं दिखाई। लेकिन इनके आगमन से एक लाभ यह हुआ कि कुछ युवक, जो कला और अभिनय के क्षेत्र में रुचि रखते थे सामने आए। वस्तुतः इन स्थानीय युवा प्रतिभाओं को भी कम्पनी के कर्णधारों ने अपने मंचन में स्थान दिया था। इस तरह स्थानीय प्रतिभाओं के माध्यम से ए0डी0सी0 अर्थात एमोच्योर ड्रैमेटिक क्लब वजूद में आया। इसके वजूद में आते ही एक जोश सारे युवा वर्ग में बलवती होने लगा।

नाटकों और प्रहसनों के मंचन का इतिहास शिमला में काफी पुराना है– इस ओर मिस एडन ने अपने संस्मरणों में अनेक स्थानों पर इसका ज़िक्र किया है। सबसे पहला सन्दर्भ 9 जून 1838 ई0 का है.

'हम गत रात्रि एक नाटक देखने गए। शिमला में थिएटर की तरह एक संस्था है, छोटी किन्तु ऊर्जित और कुछ कुछ अव्यवस्थित........। यह रॉयल लोरीस होटल था। कैप्टेन एन ने खड़े होकर छः नाटकों की रूप रेखा रखी– ये नाटक आगरा में भुखमरी से बेहाल लोगों के आर्थिक योगदान के लिए खेले जाने वाले थे।...'

उसी वर्ष 18 अगस्त को मिस एडन ने लिखा–:'हमने गत रात्रि एक अन्य नाटक देखा। भाग्यवश दो ही प्रहसन उन्होंने मंचित किए अतः हम रात्रि दस बजे घर पहुंच चुके थे। लेकिन इनसे भद्दी कोई और नाटिका मैंने मंचित होते नहीं देखी.........'

20 अक्तूबर को एडन ने एक बार फिर इन नाटकों के मंचन के बारे में टिप्पणी की है–:'हमने एक बहुत अच्छा नाटक गत रात्रि देखा.......नाटकों को देखकर अब मौलिकता दृष्टिगोचर होती है।'

1850 के आसपास मंचन उक्त होटल से एक वर्गाकार इमारत, जो लोअर बाज़ार में स्थित थी, स्थानान्तर हो आया था। इस भवन को शिमला का समाज समागमों के लिए इस्तेमाल करता था इसी भवन का एक हिस्सा मंचन के लिए समर्पित कर दिया गया। इस भवन में 1852 ई0 को एक बहुत बड़ा हादसा होते होते

रह गया। हादसे वाले दिन से कुछ रोज पहले एक फ्रेंच कलाकार ने अपनी प्रतिभा का मंचन करते हुए पाया कि उसके नृत्य के दृश्यांकण में स्थान काफी नहीं था अतः उसने फर्श और छत के बीच कड़ी के तौर पर प्रयोग किए गए दो लम्बाकार शहतीरों को हटा दिया ताकि स्थान बनाया जा सके। बाद में खूब वर्षा पड़ी और पानी छत से फूहरों की तरह टपकने लगा अंततः छत आधार न पाकर नीचे आ गिरी। भाग्यवश थोड़ी देर पहले संगीत कलाकार अपना मंचन कर जा चुके थे पर उनके वाद्य यंत्र छत के मलबे के नीचे दबकर रह गए थे।

अब मंच 'अब्बेविले' नामक भवन में स्थापित किया गया। इसे एक फ्रेंच प्रवासी ने बनाया था जिसे कुछ अफसरों ने लॉर्ड एल्लेनबोरोह् के समय खरीदकर थोड़ा फेर–बदल कर इसे समागम स्थान घोषित कर दिया था। 1863 ई0 में इसे एक अन्य सज्जन ने खरीद कर एक सुन्दरं मंच स्थापित किया जिस पर अर्ल और काऊंटेस मेयों को समर्पित जयपुर के महाराजा ने एक नृत्य का आयोजन 1869 ई0 में करवाया था। असेम्बली रूम तथा साथ लगता रैक्केट–मैदान कैप्टेन टिटलर ने उन दिनों 24000 रुपयों का बनवाया था जिसे एक कम्पनी में बदल दिया गया जिसमें 280 शेयर थे और कुल जमा पूंजी सत्तर हज़ार थी। अब वह भवन नहीं है। बाद में यहीं पर शिमला की मीट मार्किट बना दी गई थी।

इस भवन में, विलियम टेलर के अनुसार, 1864 ई0 तक 'स्टिल वाटर्स रन डीप', 'बेटसीबेकर' तथा 'शी स्टूप्स टू कंकर' आदि नाटक मंचित किए गए। मेजर इन्ने, कर्नल मैस्सी तथा विलियम टेलर इस थिएटर के मैनेजर थे।

1865 ई0 में विलियम टेलर ने सर जॉह्न लारेंस की प्रार्थना पर उनके यहां टालीसमैन तथा 'इवानोह' नामक नाटक मंचित किए।बाद में 'द राईवल्स', 'बॉक्स एण्ड काक्स' तथा ' द' डे आफटर द' वेडिंग' आदि नाटक भी मंचित किए गए।लॉर्ड मेयो इन नाटकों तथा मंचन के शौकीन थे। उन्होंने पीटरऑफ में कलकत्ता मंच के डेव कार्सन द्वारा आयकर पर एक प्रहसन मंचित किया जिसे देखकर वायसरॉय और तथा सर रिचर्ड टेम्पल, जो आर्थिक मामलों के प्रभारी थे– अपनी हंसी रोक नहीं सके।इसी प्रकार कुछ नाटक कमाण्डर–इन–चीफ के यहां भी मंचित किए गए। वाईसरीगल लॉज में भी विशेष मंच स्थापित कर लॉर्ड लैन्सडाऊन ने बंबई से आए लार्ड तथा लेडी हैरिस का विशेष मनोरंजन किया।

लॉर्ड लिट्टन के समय मुख्य बाज़ार के पास एक अन्य भवन में थिएटर का मंच स्थापित किया गया। इसमें दो बड़े प्रकोष्ठ थे जिसमें से बड़े वाला आडीटोरियम के रूप में इस्तेमाल किया जाता था जिसका फर्श खूब खुला था और सामूहिक नृत्य के लिए अति उपयुक्त था। यहीं पर ए0डी0सी0 का वास्तविक रूप हमारे सामने आता है। यहीं पर 1878 ई0 में लार्ड लिट्टन द्वारा 'वालपोल' नामक नाटक मंचित किया गया। 'स्कूल ऑव स्कैंडल' दूसरा नाटक था जिसे वॉयसराय ने मंचित करवाया था।

युद्ध छिड़ जाने के कारण अनेक ए.डी0सी0 प्रतिनिधि विदेशों में चले गए परिणामतः क्लब को आर्थिक तौर पर अपने मंचन पर निर्भर रहना पड़ा पर पैसा इतना नहीं मिलता था कि थिएटर का किराया भी चुकाया जा सके। लॉर्ड बिल बेर्यसफोर्ड, जो कि वॉयसराय का मिलीटरी सचिव था, ने आगे आकर सहायता की और पीटरहॉफ के स्रोतों में से कुछ पैसा थिएटर के लिए अनुदान में दिया। युद्ध की समाप्ति पर एक बार फिर क्लब अपने पूरे जोश से सामने आया। अनेक नाटक मंचित किए गए। यद्यपि क्लब अनौपचारिक तौर पर अनेक वर्षों से कार्यरत था तथापि 1888 ई0 में इस क्लब का विधिवत प्रकाशन किया गया– यह प्रातः नाश्ते का समय था जो कर्नन हेन्डरसॅन के घर, 'वेलन्टाईन' में रखा गया था जब औपचारिक तौर पर यह क्लब वजूद में आया। इस बैठक में थिएटर से जुड़े अठारह व्यक्ति उपस्थित थे। इस संस्था को लॉर्ड विलियम वेयर्स–फोर्ड ने विधि ावत थिएटर को हस्तांरित किया और इस क्लब की प्रथम अधिकारिक बैठक 21 मेई 1888 ई0 में सम्पन्न हुई

जिसमें कर्नल डीने, कर्नल मॉर्टन, मेजर रोवन हैमिल्टन तथा श्री डी0मैक्क्रेकन उपस्थित थे। इसी वर्ष इस क्लब का पंजीकरन कर एक्ट 21,...1860 के अनुसार स्टॉक कम्पनी घोषित कर दिया गया। शुरू में इसके बीस सदस्य थे जो 1904 ई0 तक बढ़कर 350 हो चुके थे। क्लब की आमदन भी कई गुणा बढ़ आई थी जिसे थिएटर के भवन के सुधार में लाया जाने लगा।

1896 ई0 तक मंच सामान्यतः तेल के दीपकों की माला से आलोकित किया जाता था जो अनेक हादसों का वायस बना। 1896 ई0 के अंत में रुपये 15000 खर्च कर मंच और हाल को बिजली की लाईन से जोड़कर आलोकित किया गया पर बीच बीच में 'ब्रेक डॉउन' हो जाने पर असुविधा रहती थी। थिएटर को अनेक बार सुधारा गया। अंततः मंच को खुला कर इसकी दो कोनों में ड्रैसिंग प्रकोष्ठ और सामने थिएटर के हाल के चहुं ओर गैलरी बनाई गई।

इस थिएटर, गेयटी थिएटर का उद्घाटन 30 मेई 1887 ई0 में किया गया था जिसमें श्रीमती जॉय डीने ने ऐतिहासिक संवाद कवितामय अंदाज में किया था।

'टाईम विल टेल' प्रथम नाटक था जो इस नई थिएटर में खेला गया और इसमें कर्नल स्टीवर्ट, कर्नल हेन्डर्सन, कैप्टेन रोवन हैमील्टन, कैप्टेन रुण्डाल कैप्टेन डेवीस, मिस कार्टर और श्रीमती फलेचर ने भाग लिया था।

कुछेक नाटक जो गेयटी थिएटर में खेले गए वे आज तक अपना इतिहास बनाए हैं– 'द' मिकाडो', 'अलीबाबा' 1893 ई0 में खेला गया जो दस दिन तक भीड़ खींचता रहा 1894 ई0 में खेला गया 'द' रेड लैम्प' भी अति चर्चित रहा। 'द' मनी स्पीन्नर', 'डिप्लोमेसी', 'द' मेरी मर्चेन्ट ऑव वीनस','द' गेयशा','द' एडवेंचर्स ऑव लेडी उर्सुला' आदि अनेक चर्चित नाटक उन्नीसवीं सदी के सम्पन्न होने तक खेले गए।

बींसवीं सदी के आरम्भ में खेले जाने वाले नाटकों में 'द'राईवल्स' 1905 ई0 में, 'द' लिटल मनीस्टर' 1906 में 'द' बेल्ले ऑव न्यूयार्क', 'लेडी वाईन्ड मेयर्स फैन','टुप्पी'तथा 'लिबर्टी हाल' 1907 ई0 में चर्चित नाटक थे। 1924 ई0 में खेला जाने वाला 'लॉर्ड एण्ड लेडी एलगी','द' एडमाइरेबल क्रिकटॅन' भी चर्चित हुए।

1924 में ही 'डीयर ब्रूटस','द' डोवर रोड' और 1925 ई0 में 'द'स्किन गेम'आदि नाटक खेले गये। 1925 ई0 में लॉर्ड लिट्टन की उपस्थिति में लेडी लिट्टन ने भी वाईसरीगल लॉज में खेलीं गई दो नाटिकाओं में भाग लिया था।अनेक नाटकों में बच्चों ने भी खूब भाग लिया।

इस क्लब के साथ ब्रिटिश अम्पायर के श्रेष्टतम अधिकारी जुड़े हुए थे। लॉर्ड लिट्टन तो प्रत्यक्ष तौर पर इन नाटकों तथा इनके मंचन के साथ जुड़े रहे थे।

स्वतंत्रता के बाद भी गेयटी थिएटर नाटकों के मंचन का केंद्र रहा है।यदि हम यह कहें कि शिमला के नाटककारों और अभिनेताओं की प्रेरणा का स्रोत यह रहा है तो गलत न होगा।अनेक नामीगरामी अभिनेताओं की यह कर्मस्थली रहा है।अति चर्चित गायक के0एल0 सहगल ने यद्यपि अपनी कला का आग़ाज़ जम्मू के दीवान मंदिर में स्थित सनातन धर्म नाटक मंच से किया था जहां वह रामलीला में बतौर सीता का रोल किया करता था जबकि वह किशोरावस्था में था पर गायन और अभिनय में जो परिपक्वता बाद में सहगल ने हासिल की उसका श्रेय गेयटी थिएटर को जाता है। इसी प्रकार आज के श्रेष्ठ अभिनेता अनुपम खेर भी इसी मंच से उभरा था। दूरदर्शन का चर्चित अभिनेता मनोहर जोशी भी इसी मंच की देन है। आजकल इसका जीर्णोद्धार गत दो वर्षों से हो रहा है।

■■■

क्राईस्ट चर्च का भवन

1836 ई0 से पहले अंग्रेज 'सर्विस' तथा 'प्रेयर' एक ऐसी इमारत में अदा करते थे जो मिट्टी की छत लिए थी और लगभग एक सौ लोग उसमें भाग ले सकते थे पर इसके लिए कोई विशेष पादरी नहीं था। 1842 ई0 में माननीय रेवरेंड जे0 वॉघन शिमला में नियमित चैपलेन बनकर आये। लेकिन अभी भी सर्विस नियमित नहीं हो पाई। यह सिलसिला अप्रैल 1845 तक यूं ही चलता रहा।

वर्तमान क्राईस्ट चर्च की नींव सितम्बर 1844 ई0 में कर्नल गौफ की बैलीहेक एस्टेट में रखी गई। इसे एक हज़ार रुपये में खरीदा गया था। दिलचस्प बात यह है कि यह उबड़–खाबड़ जगह थी, जंगली पौधों और झाड़ियों से भरी हुई। कैदियों को इस ओर लगाया गया कि इसे हमवार किया जा सके। इस अवसर पर डेनियल विलसन जो कि कलकत्ता के बिशप थे, सेना के कमान्डर–इन चीफ, सर हयूज गौफ,उत्तर पश्चिम सरहद के उप कमीशनर माननीय ज़े0 केडवलादर अर्सकीन तथा दूसरे अनेक मान्यताप्राप्त तथा गण्यमाण्य अतिथि उपस्थित थे।

दिल्ली गज़ेट के अनुसार इस चर्च को जनसाधारण के लिए चार अक्तूबर 1846 को खोला गया था जब कि गवर्नर जनरल और कमाण्डर–इन–चीफ वहां उपस्थित थे। उस समय रेवरेंड वाईटिंग ने एक बहुत अच्छा भाषण दिया था परिणामस्वरूप उसी समय बिल्डिंग फंड के तौर पर 4037 रूपये जमा हो गए थे। लेकिन सर्दी इतनी थी कि कुछ समय के लिए प्रेयर और सर्विस हेमील्टन की अनुमति से गार्टन कॉस्ल में करनी पड़ीं जहां तक कि चर्च की छत अगली जुलाई तक भी पूरी तरह से तैयार नहीं हुई थी। कुछ दिनों तक प्रार्थना सभायें डाकखाने के पास स्थित एक भवन में होतीं रहीं थीं। बाद में वर्तमान डाकखाने के पास पुरानी चर्च की इस इमारत को नबी बक्श नामक एक दर्जी को बेच दिया गया। यह अच्छी खासी चर्चा का विषय बन गया था कि क्या एक पवित्र स्थान को बेचना ठीक था ! शायद हो सकता है कि नए चर्च के निर्माण में खूब पैसा दरकार रहा हो।

यद्यपि नया चर्च काफी पहले बनकर तैयार हो आया था परन्तु विधिवत इसमें प्रेयर 10 जनवरी 1857 ई0 में की गई। यह अनुष्ठान को रेवरेंड टॉमस डीलटरी, जो कि मद्रास के बिशॅप थे, ने अनुष्ठानित किया था। 1849 ई0 में लार्ड हार्डिंग ने एक धातु का खरल दिया था जो कि होशियारपुर में उसे मिला था। ऐसी मान्यता है कि इस की धातु को ढाल कर चर्च के घण्टे का निर्माण किया गया। कुछेक का यह मानना है कि इसे तोड़कर बेच दिया गया था और उससे मिलने वाला धन चर्च के भवन हेतु इस्तेमाल किया गया था। उत्तर–पश्चिम प्राविंस के लेफ्टीनेंट गर्वनर ने एक पवित्र होदी और उपदेश मंच प्रदान किया जिसे बाद में बिशॅप मिलमैन की याद में बदलकर प्रस्तर मंच में बदल दिया गया। कर्नल बॉल्यु ने पढ़ने के लिए एक डेस्क दिया जो बाद में बॉल्युगंज के आल सेंट्स चर्च में ले जाया गया। 1855 ई0 में पहला मुख पात्र निर्मित किया गया जिसकी लागत–पौंड 250/– का अधिकतर हिस्सा लेडी गोम्म, जो कि कमाण्डर–इन चीफ की पत्नी थी, ने वहन किया।

इस चर्च को 1856 ई0 में सरकार ने सरकारी जयदाद एक्ट के अन्तर्गत अपने अधीन ले लिया और बाद में साठ के दशक में अनेक परिवर्तन किए गए, 'क्लॉक टावर' बनाया गया, पार्श्व वीथि को बढ़ाया गया,नई छत डाली गई और पोर्च 1873 ई0 में निर्मित किया गया। घड़ी को टॉवर में 1860 ई0 में कर्नल डमबलेटॅन ने लगाया।

यह एक दिलचस्प बात थी कि सर्विस और प्रेयर में भाग लेने के लिए महिलायें खूब बन ठन कर आती

थीं और अनेक बार वे एक–दूसरे के वस्त्रों और फैशन की ओर ही देखतीं रहतीं थीं कि चैपलैन को एक घोषणा करनी पड़ी कि रोजमर्रा के और सादे वस्त्रों में चर्च में आयें–यह खुदा का घर है कोई फैशन परेड का मंच नहीं–उससे महिलायें इतनी प्रभावित हुई कि उन्होंनें बिल्कुल सादा वस्त्रों जहां तक कि घुड़ सवारी करते समय जो चुस्त वस्त्र पहने होते उनके साथ ही सर्विस अटेंड करतीं थीं।

सन् 1875 ई0 में लेडी गोम्म द्वारा भेंट में दिया गया ऑरगेन नए इन्स्ट्रुमैंट से तबदील कर दिया गया। पुराने ऑरगेन को रावलपिण्डी चर्च को बेच दिया गया। नए आरगेन को मेसर्जमोर्गन एण्ड स्मिथ ऑव ब्रिग्टॅन ने बनाया था। इसमें लगभग 2300 रुपये खर्च करने पड़े। इसे 29 सितम्बर 1899 में स्थापित किया गया। इसमें योगदान देने वालों में सर मैकवर्थ यन्ग तथा सर जेम्स वाल्कर के इलावा लेडी एल्गिन भी थीं जिन्होंने इस चर्च में अपनी बेटी एल्जाबेथ ब्रूस की शादी के अवसर पर आर्थिक सहयोग दिया।

1900 ई0 की सर्दियों में दो हज़ार रुपयों में घंण्टियों की कतार खरीदी गई। वस्तुतः शुद्ध चर्च की ही कीमत 89000 रुपये थी।

1901 ई0 में ऑरगन के चर्म कार्य का नवीनीकर्ण किया गया। और 1923–24 ई0 में 16000 रुपये इसके आगे और सुधार में खर्च किए गए। 1909 ई0 में लॉर्ड मिंटो एवम् लेडी मिंटो की ओर से एक सुन्दर लेक्टर्न बाईबल चर्च को भेंट में दिया गया।

यद्यपि समय समय पर इस चर्च में अनेक अनुष्ठान अनुष्ठानित किए गए पर सबसे बड़ा समागम 26 जून 1902 ई0 में आयोजित किया गया जो ब्रिटेन की साम्रागी के सिंहासनारूढ़ होने की तिथि थी। इसमें 825 सीटों की जरूरत थी। इसके बाद मार्च 31, 1925 में एक अन्य अनुष्ठान, वृहद् स्तर पर लॉर्ड रावलिंसॅन की मेमोरियल सर्विस के समय आयोजित किया गया।

इस चर्च के सर्वप्रथम चैपलेन, जैसा कि पहले लिखा जा चुका है रेवरेंड टी0 वॉघन थे– 1843 ई0 में बाद में आने वालों में 1977–1886 ई0 तक रेवरेंड एच0जे0 मेथ्यू रहे, 1886 ई0 से 1892 ई0 तक रेवरेंड आर्कडिएकॅन डब्ल्यू.एच0ट्राईब, 1894 ई0 से 1898 ई0 तक रेवरेंड टामकिन्स तथा 1898–1902 ई0 तक रेवरेंड एम0सी0सांडर्स चैपलेन के पद पर आसीन रहे।बाद में 1902–1904 ई0 तक ई0जे0 बारलौ,1906 ई0 तक श्री फॉस्टर, 1907 ई0 तक श्री वारलौ,1908 ई0 तक एच0ए0हर्बट,1910 ई0 तक श्री निकोल्लस्, 1911 ई0 तक श्री व्हीलर, 1912 ई0 तक ओ कोनोर, 1913 ई0 तक श्री साईम, 1916 ई0 तक श्री वारलौ, 1917 ई0 तक व्हीलर, 1920 ई0 तक बक्कतेल, 1923 ई0 तक हेम्मिंग आदि चैंपलेन अपनी सेवायें देते रहे हैं। 1948 ई0 तक यह सिलसिला चलता रहा अंततः आज़ादी के बाद कुछ–समय तक निरंतरता टूट गई।

इस चर्च में चांसेल की खिड़की जहां कॉयर आदि का प्रबन्ध रहता था, बिशॅप मैथ्यू की पत्नी के संस्मरण में बनाई गई। उसका देहांत उस समय इंग्लैंड में हुआ था जब वह शिमला में चैपलेन था। इसे घेरते भीत्ति चित्रों का निर्माण लॉकवुड किपलिंग ने किया था जिन्हें वस्तुतः उसके शिष्यों ने तैयार किया था जो मेयो आर्ट कालेज लाहौर के छात्र थे। दक्षिण दिशा में एक खिड़की बहुत सुंदर ढंग से चित्रित है जिस पर प्रेयर करते, सहयोग देते, प्रशंसा करते,प्यार तथा धैर्य के प्रतीकात्मक चित्र बनाए गए। ये चित्र एडमंड रोच एल्ले की पत्नी क्लेरे एल्ले की याद में बनाए गए। इसी प्रकार अनेक म्यूरल अनेक बड़े लोगों की याद में बनाए गए हैं। वस्तुतः यहां अंग्रेज अफसरों का इतिहास समोया पड़ा है जो शिमला में आए थे और यहीं पर उन्होंने अपनी इहलीला समाप्त कर दी थी। इनमें से सर टी0डी0बेकर,ले0जनरल सर विलियम के0 एल्ले, कर्नल ए0सी0करियिकशंक, ले0जनरल जुलियस जॉर्ज मेडले, ले0 कर्नल रोजर जॉह्न मेडोक और यह सूची बढ़ती जाती है।

वर्तमान में यद्यपि शिमला में अनेक चर्च है, माल के ऊपर रिज पर स्थित मुख्य चर्च, वेस्टर्न कमाण्ड के पास चर्च, लोअर बाजार का चर्च, बाल्यूगंज का चर्च आदि पर क्राईस्ट–चर्च रिज सम्भवतया अनेक ऐतिहासिक तथ्य अपने में छुपाए हैं वस्तुतः यही हाई जेंटरी का चर्च था जो आज भी अपना वर्चस्व कायम किए है।

■■■

कैथोलिक चर्च

रेवरेंड फादर पॉलीकार्प ने रोमन कैथोलिक समुदाय की ओर से 1879 ई0 में 'गॉर्टन कॉस्ल', वर्तमान ए0जी0ऑफिस भवन, 45000 रूपये में टुथर नामक एक सज्जन से इस आशय से खरीदा था कि यहां एक गिरजाघर बनाया जा सके। लेकिन बाद में वॉयसराय के कहने पर कौंसिल के एक सदस्य श्री थिओडर होप ने यह भवन और इसके आस–पास का इलाका अपनी जयदाद 'ग्रूव्स' के एवज में ले लिया और फादर पॉलीकार्प को 'ग्रूव्स' के स्थान पर गिरजाघर बनाने की सलाह दी।

वस्तुतः कैथोलिक समुदाय ने लोअर बाज़ार के पश्चिमी कोने पर एक डिस्पेंसरी को गिराकर एक छोटा सा गिरजाघर बनाया था। पर एक तो यह नाकाफी था दूसरे इसमें यहां पर स्थापित डिस्पेंसरी का मलबा तथा पत्थर इस्तेमाल किए गए थे जो अनेक सदस्यों को अच्छा नहीं लगा अतः 'गॉर्टन कैसल' के स्थान को अति उपयुक्त मानकर उसे खरीदकर यहां कैथोलिक चर्च निर्माण की योजना कार्यान्वित होना ही चाहती थी कि तत्कालीन वॉयसराय लॉर्ड रिप्पॅन, जो स्वयं भी कैथोलिक मत का अनुयाई था, की सलाह पर इसे स्थानान्तर कर 'ग्रूव्स' नामक स्थान पर, जो कि सैनिक मुख्यालय के पास स्थित था और जिसे बाद में 'रिप्पन प्लेस' की संज्ञा से भी नवाज़ा गया था ,नया चर्च बनाया गया। वस्तुतः लार्ड रिप्पन 'गोर्टन' के भवन समूह को सरकारी कार्यालयों के तौर पर इस्तेमाल करना चाहता था।

अतः 1885 ई0 में रिप्पन प्लेस पर 80000 रुपये की लागत से इस चर्च का निर्माण किया गया। यह पैसा दान के रूप में अनेक दानियों से इकट्ठा किया गया था। इस एकत्रित धन में सर्वोपरि योगदान स्वयं लार्ड रिप्पन का ही था। बाद में ले0गर्वनर पंजाब, सर डेन्निस फिट्ज–पैट्रिक तथा उनकी दो बेटियों ने इसके निर्माण में विशेष भूमिका निभाई। इसका निर्माण हो जाने पर इसके समर्पण की रस्म आगरा के मुख्य बिशॅप ने अदा की। यह भवन यद्यपि पहले ही सम्पन्न हो चुका था परन्तु 1900 ई0 में इसका शिखर मिनार के रूप में निर्मित किया गया और साथ ही मुख्य घण्टे को भी स्थापित किया गया।

रे0फादर सेलिस्टस लगभग बीस वर्ष तक इसके मुख्य धर्माधिकारी रहे। राईट रेवरेंड मोंसिगनॅर डब्ल्यू टिल्ली0 जो कि महामान्य पोप के गृह धर्माध्यक्ष थे, के शिमला आगमन पर कैथोलिक चर्च में महासंगम आयोजित किया गया जिसमें दूर–दराज से कैथोलिक समुदाय के भारतीय और विदेशी मतावलम्बी शुमार हुए।

यह भवन गोथिक स्थापत्य शैली में निर्मित है–कास के प्रतीक रूप से मिलता जुलता। इस भवन की मध्य और मुख्य वीथि खूब खुली है और दो पार्श्व वीथियां इसे और प्रसार का प्रभाव देतीं हैं। वेदिका के ऊपर रंगीन पारदर्शी शीशे से जड़ित खिड़की है जिसके ठीक बीच में कास पर चढ़ी अनेक आकृतियां सज्जित हैं। ठीक मध्य में ईसा मसीह की कास पर चढ़ी प्रतिमा है जिसके बाईं ओर मदर मैरी और दांई ओर किसी संत की प्रतिमा दर्शाई गई है तो ठीक नीचे मारिया मैगडेलिन की आकृतियां अंकित हैं। और बाईं ओर अस्सीसी के संत फ्रांसिस हैं जिनके हाथ क्षताकंन से लगते हैं तो दाई ओर संत जोसेफ की आकृति अंकित है। इनके इलावा छोटी आकृतियों में संत पैट्रिक और संत ॲथोनी की आकृतियां अंकित हैं। ऊंचाई पर फ्रांसिसकन मत तथा लियो तेरह के हाथ उठे हैं। लियो तेरह उन दिनों पोप के पद पर आसीन थे। रंगीन शीशे की यह खिड़की 1998 ई0 में टूट गई थी जिसे 2001 ई0 में फिर से तैयार करवाया गया और इसे बिल्कुल वैसा ही बनाने में डेढ़ लाख रुपये खर्च हुए और इसे यह रूप दिया दिल्ली के ग्रीन पार्क के कलाकार विजय कौशिक ने।

चर्च के अंतिम छोर के गलियारे में शिडो रेनी के चर्चित चित्र संत माईकल द्वारा साटन को विजित करने

की अनुकृति प्रदर्शित है। मौलिक चित्र रोम के कांसेज़िओन चर्च में प्रदर्शित है। इस चित्र की प्रतिलिपि रोम के चर्चित कलाकार बीटरीस वेन्नुतेल्ली ने तैयार की थी। जब इस भवन को तैयार किया गया था तो इसे यह मानकर चला गया था कि यह छोटा सा चर्च है, ऐसा 1890 ई0 में छपने वाली थाकरे की गाईड में लिखा गया था, इसी कृति में आगे लिखा गया है कि 'मुख्य घण्टाघर को अनेक छोटी घंण्टियों की कतार या घंटावली सज्जित किए थी जो पर्वतीय क्षेत्रों की अद्‌भुत देन कही जा सकती है। जब ये बजाई जातीं हैं या हवा के चलने से स्वयं ही खनखनाने लगतीं हैं तो इसकी स्वरलहरियां अति कर्णप्रिय, होतीं हैं।

इस चर्च के बारे में रेवरेंड ई0 हुल्ल, एस0 जे0 ने कैथोलिक एनसाईक्लोपिडिया में लिखा है– 'शिमला का बिशॅप क्षेत्र पोप पायस दशम द्वारा 13 सितम्बर 1910 ई0 में दिए गए संदेश के बाद स्थापित किया गया था जिसे विशॅप क्षेत्र आगरा और लाहौर से अंशों में जोड़ दिया गया था'।

पहले मुख्य धर्मीधिकरी जो तैनात किये गये वह थे रेवरेंड अंसेल्म, ई0जे0कनीली जिसने फादर अंसेलम के रूप में इंग्लैण्ड में तर्क तथा आध्यात्म विषयों पर अबूर हासिल कर लिया था। बाद में इसी मत में अंसेल्म को अन्यतम ओहदे पर बैठा दिया गया था। रोम में उन्हें एक जनवरी 1911 में इस पद पर बैठाया गया था और उसी वर्ष 18 अप्रैल को वह भारत की ओर निकल पड़े और आठ मेई को शिमला आगमन पर उनका भव्य स्वागत किया गया। इस चर्च के प्रथम प्रशासक फादर बेनीडिक्ट काल्डर बैंक थे जिन्होंने इस चर्च में नए क्षितिज का आग़ाज़ किया। उनके बाद फादर पॉस्कल डीले आये जिन्होंने काष्ठ निर्मित उपदेश मंच को संगमरमर से जड़ दिया। 1925 ई0 में फादर सिलवेस्टर वाल्श आये जोकि इस मत के सर्वश्रेष्ठ पादरी थे उन्हों ने इस चर्च के भवन को एक बार फिर से संवारा क्योंकि तत्कालीन भवन के पत्थर भुरमरा रहे थे।

■■■

युनियन चर्च

शिमला का तीसरा गिरजाघर भी माल के ऊपरी भाग में, डाक बंगले के पीछे युनियन चर्च के नाम से स्थापित किया गया था। इस गिरजाघर की इमारत डब्ल्यु0 एच0 केरी ने 1869 ई0 में तैयार करवाई थी। तीस वर्ष तक अर्थात सन् 1900 तक यह उन लोगों और श्रद्धालुओं के लिए वरदान था जो सादा अनुष्ठान करना चाहते थे जिनमें कोई विशेष ताम–जाम नहीं होती थी और विभिन्न स्तर के पादरियों ने यहां पर अपना वर्चस्व स्थापित किया था लेकिन 1897 ई0 में कुछ कठिनाईयां उभरने लगीं थीं अतः इस चर्च के ट्रस्टियों ने स्काटलैंड के चर्च से किसी पादरी को किसी खास अवधि के लिए भेजने की प्रार्थना की। परिणामतः स्काटलैंड चर्च ने तीन माह के लिए माननीय मैक्केलवी नाम के पादरी को भेजा। इस अवधि के दौरान वह अम्बाला के कैदियों को भी शपथ दिलाता था।

जब वह अपनी अवधि पूरी कर चला गया तो चर्च के ट्रस्टियों ने एक बार फिर स्कॉटलैंड के चर्च से दूसरा पादरी सदा के लिए भेजने की प्रार्थना की तो स्कॉटलैंड के चर्च के पदाधिकारियों ने जवाब भेजा कि यदि इस चर्च की जयदाद तथा भवन व जमीन स्कॉटलैंड चर्च के नाम पर स्थानान्तर कर दिए जाएं तो वे युनाईटिड फ्री चर्च के साथ बात कर मुस्तकिल पादरी भेज देंगे। इस शर्त को मान लिया गया परिणामतः सन् 1905 में शिमला के किरक अधिवेशन में इसे पंजीकृत कर लिया गया। इस प्रकार युनियन चर्च स्कॉटलैंड चर्च का एक अंश बन गया। पर पुरानी परम्परा कि एक वर्ष क़े लिए पादरी को भेजे जाने को कायम रखा गया। लेकिन सन् 1910 ई0 में बा़लफ़ॉन के पादरी मान्यवर जेम्स ब्लैक ने स्कॉटलैंड से इस्तिफा दे दिया और सदा के लिए स्कॉट्स किरक शिमला में रह गए। इनकी देख–रेख में एक बार फिर युनियन चर्च का पुर्नउद्धार हुआ। तत्कालीन वायसराय लार्ड हार्डिंग के हाथों इसका आधार 30 अगस्त, सन् 1914 में रखा गया। जिसका आलेख आज भी मुख्य प्रवेश द्वार के दाईं ओर खुदा है। आलेख इस तरह है–

This kirk was
Biggit Be Godlie
Men in The year
Of ~ur Lord 1914

आठ मेई, 1915 ई0 को नया किरक बंगाल के चैपलेन, मान्यवर डी0एन0गिल्लन जिनकी सहायता मान्यवर जेम्स ब्लैक कर रहे थे,द्वारा श्रद्धालुओं को समर्पित कर दिया गया। इस भवन के स्थापत्य कलाकार जाह्न बेग्ग थे। इस चर्च का आन्तरिक भाग सुन्दर गोथिक शैली में बनाया गया था जिसे सुन्दर चांसेल खिड़की से सजाया गया था। इसे मान्यवर जेम्स ने अपनी दिवंगत पत्नी की याद में बनवाया था। इस भवन के निर्माण में कुल खर्च 70000 रुपये आया था जिसे लोगों द्वारा दिए गए दान से बनाया गया था। जबकि ब्रिटिश इण्डिया सरकार ने 7500/रुपये का योगदान दिया था। अधिकतर लोगों ने ही योगदान दिया था और कुछ सहायता स्कॉटलैंड चर्च ने भी दी थी। इसका एक हिस्सा नॉरमन तथा बीर्यड, लंदन ने तैयार किया था।

इसके अर्ध मण्डप में सफेद संगमरमर के फलक पर समर्पण दिया गया है–''भविष्य की श्रद्धालुओं की संतति के लिए इसे निर्मित किया गया है जो आभारी हैं मान्यवर जेम्स ब्लैक के जिनके प्रयास के बिना यह सम्भव नहीं था कि वे स्कॉटलैंड चर्च के इस भवन में पूजा कर सकें। इसमें जाह्न बेग्ग के सहयोग की भी सराहना की गई है।

शिमला का युनियन चर्च कान्सटेन्शिया की जयदाद के एक हिस्से में निर्मित किया गया था जिसे ट्रस्टियों ने सन् 1869 ई0 में 19000 रुपये में खरीदा गया था। लेकिन इस पर तब तक इसे नहीं बनाया गया जब तक कि कॅम्बमेयर पुल के पास की जगह को खरीद नहीं लिया गया। यह तब प्रसिद्ध प्रचारक डॉ0 मुर्रे मिचेल के पौत्र का आवास था। डॉ0 मुर्रे और जाह्न फारडायस दोने पहले पादरी थे जो इस गिरजाघर के साथ जुड़े हुए थे। डॉ0 मिचेल बाद में स्कॉटलैंड के फ्री चर्च के मॉडरेर बने और जाह्न फारडायस 1902 ई0 में अपने घर में स्वर्गवास हो गए। मान्यवर स्मिथ जिन्होंने 'बैपटिस्ट मिशन' में पचास वर्ष का सक्रीय योगदान दिया था के नाम की भी पीतल की पलेट लगाई गई। मान्यवर जे0एच0बटेसॅन जो कि रायल आर्मी टेम्पेरेन्स संस्था के सचिव थे, ने भी यहां इस चर्च में सन् 1892 ई0 से सन् 1899 ई0 तक सेवा की थी। जब कि मान्यवर विलियम विलसॅन ने भी 1903 ई. में यहां सेवा की थी। इसी प्रकार 1904 ई0 में श्री ए.एम.मकलीन ने सेवा की थी। इसी वर्ष पतझड़ में 25000 रुपये के एवज में इसकी जयदाद स्कॉटलैंड चर्च को स्थानान्तर कर दी गई थी। तीन वर्ष तक चर्च की गतिविधियां बैंक की इमारत में चलतीं रहीं इस दौरान कोई स्थाई पादरी नहीं था लेकिन मान्यवर बटसेन द्वारा पूजा की जाती रही थी। तब 40000/–रुपये में सेंट मार्क का भवन जहां पूजा की जाती थी खरीद लिया गया और मान्यवर ई0 पालग्रेव डेवी को पूजा करने और विभिन्न अनुष्ठान निभाने के लिए कहा गया। 1913 ई0 में मान्यवर ए0जे0 रेवनेल ने यह कार्यभार डेवी से सम्भाला। इनके पास दो कार्यभार थे–भारत में वेस्लेथन चैपलेन का प्रशासन और युनियन चर्च शिमला के अनुष्ठानों को निभाना। इनकी चार वर्षों की अनुपस्थिति की अवधि में मान्यवर ए.डब्ल्यु बक्कले पादरी के रूप में कार्य करते रहे थे। सन् 1923–24 की सर्दियों में इसके भवन का पुनः उद्धार किया गया ताकि इसे स्मृद्धि प्रदान की जाये, हॉल कमरा बढ़ाया जाये, चार प्रकोष्ठ कक्षाओं के लिए और पादरियों के लिए क्वार्टर बनाए गए।

■■■

आल सेंट्स चैपल

वायसरीगल लाज में कार्यरत अंग्रेज अफसरों और दूसरे कर्मचारियों के लिए रविवारसीय अधिवेशन, पूजा या अनुष्ठान आदि के लिए क्राईस्ट चर्च या युनियन चर्च या कैथोलिक चर्च जाने के बजाय यही निर्णय किया गया कि इस क्षेत्र में बसने वाले दूसरे अंग्रेजों या ईसाई मत के मानने वालों के लिए एक चर्च बनाया जाये चुनाचे वाईसरीगल लॉज के वजूद में आने के वर्षों बाद प्रास्पेक्ट्स हिल पर वाईसरीगल लॉज के पार्श्व में, कर्मचारियों के क्वार्टरों के पास एक उच्च पठार पर इस चर्च को निर्मित किया गया।

यह एक 30–40 फुट लम्बा और 15–20 फुट चौड़ा हॉल है जिसके साथ अर्ध मण्डप, अर्ध गोलाई में पूर्व दिशा में स्थित है तो प्रवेश द्वार पश्चिम दिशा में हैं। ईंटों और पत्थरों से चिनाई की गई है। लगभग साढ़े छः फुट ऊंची दीवारों से खिड़कियां दोनों ओर अर्थात उत्तर दिशा और दक्षिण की ओर खुलती हैं। प्रवेश द्वार के शिखर पर, जो गेबल का तिकोना हिस्सा बनाता है, पर कभी तीन फुट व्यास का घड़ीनुमा काष्ठफलक सज्जित था जिसकी आठ काष्ठ नलिकायें आज भी दो वृत्तों को आपस में बांधे हैं। बाहर वाले वृत का व्यास तीन फुट के करीब है जब कि बीच वाले वृत्त का व्यास एक–डेढ़ फुट रहा होगा। निश्चय ही इस बीच वाले वृत में कभी घड़ी रही होगी पर अब खाली है।

ऊपर ढालुआं छत काष्ठ फलकों पर पकी मिट्टी की सुर्ख स्लेटों से बनाई गई थी जो अक्सर पर्वतीय क्षेत्रों में बनी दिख जाएगी। अब जरजर अवस्था में है। पकी मिट्टी की सुर्ख स्लेटें टूट–फूट गईं हैं और चहुं ओर उनका कचरा फैला है। खिड़कियों के शीशे टूट गए हैं। समय रहते सम्भाला नहीं गया तो यह भवन भी दूसरे भवनों की तरह खत्म हो जाएगा।

इसका अर्ध मण्डप कभी कलात्मक रहा होगा पर अब खण्डर हो रहा है। चर्च के साथ पादरी के आवास के लिए कभी क्वार्टर रहे होंगे पर अब उनके स्थान पर नए क्वार्टर बना दिए गए हैं।

चर्च का हाल खाली है–इसका फरनीचर कहां गया कोई नहीं जानता। इस चर्च को बनाने में कर्नल बाल्यु का योगदान रहा है इस ओर मात्र एक वाक्य में शिमला पॉस्ट और प्रेजेंट के लेखक श्री एडवर्ड जे.बक्क ने इति श्री कर ली है–

''कर्नल बाल्यु ने क्राईस्ट चर्च को एक 'रीडिंग डेस्क' दिया था जो बाद में 'आल सेंट्स चैपल' बाल्युगंज में ले जाया गया।'' अर्थात जब बाल्युगंज का नामकरण कर्नल बाल्यु के नाम से हुआ होगा उन्हीं दिनों इस चर्च की भी स्थापना हुई होगी। इस भग्नावशेष चर्च पर बाल्युगंज के एक दुकानदार किसी साईंदास का कब्जा है पर कानूनी कार्यवाही सी0पी0डब्ल्यु0डी0 और सांई दास के बीच चल रही है। सी0पी0डब्ल्यु0डी0 ने चर्च के प्रवेश द्वार पर एक नोटिस टांग रखा है जिसमें अदालत का हवाला देते हुए अनधिकृत कब्जे को छोड़ने के लिए लिखा गया है।

बाहर एक बोर्ड पर सी.पी.डब्ल्यु.डी. की ओर से इस जयदाद पर अपना हक जताया गया है और इसे नुकसान पहुंचाने वाले पर कानूनी कार्यवाही की जाएगी, जो हो रही है। फैसला शीघ्र होना चाहिए ताकि इस पुरातन धरोहर को बचाया जा सके।

■■■

रोथनी कॉस्ल

जाखू की ओर जाते प्राचीन 'रोथनी हाऊस', रोथनी कॉस्ल के रूप में देखा जा सकता है। इस का निर्माण कर्नल रोथनी ने 1838 ई0 में करवाया था। कर्नल इसमें अनेक वर्षो तक रहा था कर्नल ने इसे डॉक्टर कार्टे को बेच दिया। डॉ0 कार्टे ने इस भवन में शिमला बैंक निगम 19 नवम्बर 1844 ई0 में आरम्भ किया था । कार्टे के बाद इस निगम के दूसरे सचिव के तौर पर श्री आर्नोल्ड एच0 मैथ्यू आए। इस बैंक की कुल नकदी 1847 ई0 में आठ लाख थी लेकिन यह एक वर्ष में दुगुणा हो चुकी थी। और इस बैंक में पांच-पांच सौ रुपयों के 3200 शेयर थे इस प्रकार बैंक के पास शेयरों के रूप में 1600000 जमा पूंजी थी। इस बैंक का मुख्य धंधा भारतीय मुद्रा परिवर्तन तथा सर्विस को लोन देना था। जनवरी 1851 ई0 में यह बैंक माल पर 'बैन्टिक कॉस्ल' में स्थानान्तरित कर दिया गया।

बाद में 'रोथनी हाउस' श्री आर्नोल्ड एच0 मैथ्यू की वैयक्तिक जयदाद बन गया। आर्नोल्ड बैंक के साथ 1854 ई0 तक जुड़े रहे। इसके बाद वे आगरा बैंक के मैनेजर बन कर आगरा चले गए। 1867 ई0 में 'रोथनी हाऊस' जिसे अब नया नाम 'रोथनी कॉस्ल' दिया गया था एक चर्चित व्यक्तित्व श्री पी0 मिछेल ने खरीद लिया। वे इस 'कॉस्ल' में कुछ वर्षों तक रहे बाद में इसे उन्होंने ए0ओ0हयूम को बेच दिया। हयूम उन दिनों ब्रिटिश इण्डिया सरकार के सचिव थे। ए0 ओ0 हयूम ने इस भवन को वायसरीगल लॉज बनाने के लिए खरीदा था। वे जानते थे कि पीटर हॉफ, जहां वर्तमान गर्वनर-जनरल का वास था- वायसराय के आवास और कार्यालय के लिए नाकाफी था। उन्होंने इस इमारत तथा लॉन को भव्य स्वरूप देने के लिए दो लाख रुपयें खर्च किए। भव्य स्वागत कक्ष जो बड़ी पार्टियों के लिए सक्षम हो,बनवाया। उसके साथ लगता एक भव्य कला संग्रहालय बनवाया जिसकी दीवारों पर उन्होंने अनेक भारतीय जानवरों के सींगों को सज्जित किया। एक युरोपीय माली की सहायता से उन्होंने लॉन तथा संग्रहालय में फूलों की बहार ला दी जहां वे गर्व से आगंन्तुक पर्यटकों का स्वागत करते थे।

लेकिन चूंकि इस भवन तक जाता रास्ता चढ़ाई पर पैदल जाने का था अतः इसे वायसराय लॉज बनाने और इसे सरकार को बेचने का उनका स्वप्न अधूरा ही रहा। बाद में उन्होंने इस भवन को पक्षियों के संग्रहालय तथा चिड़ियाघर में तबदील कर दिया।

ए0ओ0हयूम अन्यतम स्तर के बुद्धिजीवी तथा दूरदर्शक थे। यद्यपि अपने सर्विस कैरियर में उन्होंने अनेक पद और रुतबे पाए पर अंततः वे भारतीय राष्ट्रवाद की ओर उन्मुख हो आए थे। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के समय वे इटावा में थे। भारतीय आन्दोलनकर्त्ताओं के दबाव के कारण उन्हें इटावा छोड़ना पड़ा और सभी अंग्रेज़ आगरा की ओर कूच कर गए लेकिन ए0ओ0हयूम में अत्यंत उत्साह था। उन्होंने अपनी सूझ-बूझ से इटावा पर फिर से कब्जा कर लिया। उन्होंने स्थानीय लोगों को अपने साथ जोड़ा और आन्दोलन-कारियों को पीछे हटने पर मजबूर कर दिया। लॉर्ड मेयो ने उनकी दूरदर्शिता और समयानुकूल निश्चय की क्षमता देखते हुए उन्हें कृषि विभाग का विभागाध्यक्ष बना दिया जिसका चार्ज उनके पास पांच वर्ष तक रहा।

ए0ओ0 हयूम अपने जीवन में अनेक दिलचस्प शगल पाले थे- इनमें से पक्षियों का अध्ययन प्रमुख था जिसके लिए उन्होंने अपनी 'कॉस्ल' में एक पक्षीघर भी खोल रखा था। चूंकि वे स्वयं एक बहुत उंचे पद पर विराजमान थे अतः दूर-दराज इलाकों में फैले अपने कर्मचारियों के माध्यम से वे अनेक प्रकार के पक्षियों को पकड़वा कर मंगवाते और उनका अध्ययन करते थे। इन पक्षियों को इनके वंशांनुसार विभिन्न छोटे पिंजरों में रखा जाता। बाद में वे भारतीय दर्शन की ओर उन्मुख हो आये थे। इस बीच अनेक पक्षियों का शिकार किया जा चुका था और उनका संरक्षण अलमारियों में किया जाता था। बाद में ये सारे पक्षी ब्रिटिश म्यूजियम, इंग्लैंड में स्थानातरण कर दिए गए।

■■■

रैवन्ज़वूड

रैवन्ज़वूड भी शिमला के प्राचीन तथा अपने स्थापत्य में अपूर्व भवनों में से एक रहा है। यह भवन कैल्विन ग्रोव से थोड़ा नीचे एक टीले पर स्थित था। इस के निर्माण का इतिहास उपलब्ध नहीं है तथापि इस भवन के साथ एक ऐतिहासिक नाम डॉ0ए0ओ0मीरा का जुड़ा है। डॉ0 ओ0मीरा उत्तरी भारत में एक मात्र दंत चिकित्सक थे जो लगभग सतरह वर्ष तक इस भवन के मालिक रहे। डॉ0 ओ0 मीरा शिमला में 1850 ई0 में आए थे। वे अपने कार्य में इतने कुशल थे कि उनकी प्रसिद्धि प्रांत, देश की सीमा लांघ कर काबुल–कंधार तक जा पहुंची थी कि उन्हें अफगानिस्तान के अमीर अब्दुल रहमान का निमंत्रण मिला। उन्हें काबुल में बुलाया गया था। उन दिनों इतना लम्बा सफर कर काबुल पहुंचना और वहां से वापिस आने का अर्थ था महीनों–वर्षों तक खो जाना अतः पहले आनाकानी के बाद डॉ0 ओ0 मीरा अफगान राजदूत की प्रार्थना पर काबुल जाने के लिए तैयार हो गए। किसी प्रकार डॉक्टर जब काबुल पहुंचे तो उनकी खूब आव–भक्त की गई पर जिस काम के लिए बुलाया गया था, अमीर का एक दांत दर्द करता था वह उसे निकलवाना चाहता था, उसके लिए उन्हें नहीं कहा गया तो जब उन्होंने शिमला वापिस जाने की बात कही तो तुरंत अमीर ने अपने दांत निकलवाने की बात की। पर वह पहले अपने किसी दरबारी का दांत निकलवा कर देखना चाहता था कि कहीं बहुत दर्द तो नहीं होता। उसने एक दरबारी का दांत निकालने का फरमान जारी कर दिया। दरबारी ने बहुतेरे हाथ जोड़े कि उसके सभी दांत ठीक हैं और वह नहीं चाहता पर यह अमीर का फरमान था उसे जबर्दस्ती पकड़कर ऊंचे मेज़ पर बैठा कर दांत निकलवा दिया गया–तत्पश्चात अमीर दांत निकालने के लिए राज़ी हुआ।

डॉ0ओ0मीरा लगभग छः माह के बाद काबुल से शिमला लौटे थे।

डॉ0 ओ0 मीरा के चाचा डॉक्टर बैरी ओ0 मीरा नेपोलियन के वैयक्तिक डॉक्टर थे। जब

नेपोलियन की मृत्यु पर उसके पार्थिव शरीर को एक कब्र में दफना दिया गया तो डॉक्टर बैरी मीरा ने उसकी कब्र पर 'वीपिंग विल्लो' का एक पौधा रोपा था। बाद में इस पौधे की कलमें आशा अंतरीप से होते हुए भारत पहुंची और कुछ हिस्सा डॉ0 ओ0 मीरा के हिस्से में भी आया परिणामतः इन्हें तत्कालीन प्रमुख ब्रिटिश अहलकारों में बांट दिया गया। इसका सर्वाधिक स्वरूप सर आर्थर केर के मशोबरा में स्थित उनके भवन 'शेरवूड' के लॉन में उगे सुन्दर वृक्ष के रूप में उभर कर सामने आया। एक पौधा चैडविक भवन के लॉन में भी रोपा गया था जो एक सुन्दर वृक्ष का स्वरूप हासिल कर चुका था।

1867 ई0 में रैवन्जवूड का भवन ब्रिटिश सरकार के वित्त सचिव श्री एफ0 लूशिंगटॅन ने खरीद लिया और जब तक वे नौकरी में रहे इस भवन में ही रहे। बाद में इसे फरीदकोट के राजा ने खरीद लिया।

राजा ने स्थापत्यविद् टी.ई0जी0कपूर की सहायता से ढेर सा पैसा खर्च कर इसे सुन्दर तथा व्यवस्थित स्वरूप देकर एक महल के रूप में स्थापित किया। बाद में इस भवन में शिमला के उपायुक्त सेसिल बीडॅन रहे। सेसिल के शिमला छोड़ने पर कर्नल आर0 होम का यह निवास स्थान बना, जो कि सिंचाई विभाग में विभागाध्यक्ष थे। अन्ततः 1925 ई0 तक इस भवन में कौंसिल के सैनिक सदस्य जनरल सर हैनरी ब्रैकनबरी का आवास स्थान रहा।अब इसका अस्तित्व भी बाकी नहीं रहा है।

■■■

स्टर्लिंग कॉस्ल

स्टर्लिंग कॉस्ल शिमला के प्राचीनतम इने–गिने भवनों में से एक रहा है जो 1830 ई0 के आस–पास निर्मित किया गया था। इसका सर्वप्रथम सन्दर्भ हमें 1833 ई0 में मिलता है कि यह भवन स्टर्लिंग द्वारा बनाया गया था जो एक पठार पर स्थित था जिसे घने वन–प्रान्तर ने घेर रखा था। यहां एक संदर्भ आता है कि 'कैप्टेन जी0 की पत्नी का इस भवन में देहांत हो गया था।' इसका ज़िक्र सुश्री एडन की डायरियों से भी हमें मिलता हैं। मार्च 1839 ई0 में वह लिखतीं हैं 'छावनी के आला अफसर ने एक घर श्रीमती एस0तथा उसकी आंटी के लिए किराए पर लिया था जो हमारे घर के काफी पास था जिसे स्टर्लिंग कॉसल से जाना ज़ाता था। वह एक भद्दे से रंग से पुता था और उसमें पहले कोई नहीं रहता था। ऐसी धारणा थी कि वर्ष में एक बार अवश्य उस पर बिजली गिरती थी। चूंकि वह हमारे पास था और वे वहां एक नृत्य का आयोजन करने ज़ा रहे थे अतः वहां क्या हो रहा है हमें पता चलता रहता था। आला अफसर मुझे किसी नटखट बच्चे की तरह लगता था जिसके लिए मैं कुछ भी करने को तैयार थी। किसी ने 'स्टर्लिंग कॉसल' के गेबल अर्थात तिकोनी छत की ओर संकेत करते हुए कहा कि वे दो छोटी खिड़कियां अच्छी लगतीं हैं विशेषकर उस समय जब कोई सुन्दरी उसमें से झुकते हुए बाहर झांक रही हो। मैंने नशीली आंखों वाले कैप्टेन पी0 को देखा जो 'स्टर्लिंग कॉस्ल' में फूलों का गुच्छा ले जा रहा था। ब्रेकफास्ट के बाद वह मेरे पीछे पीछे मेरे कमरे में आ पहुंचा और उसने यह उचित समझा कि वह मुझे बताए कि उसने कुमारी एस0 को प्रस्तावित किया है। जब से उसकी सगाई हुई है वह एक दम बदल गया है–तब से वह बात करने लगा है, मज़ाक करता है और किसी किशोर की तरह नाचने लगता हैं। वह दिन में तीन बार एक ही महिला से नृत्य करता रहा लेकिन दूसरे रोज़ सुबह–सवेरे वह अपने पिछले दिन के अनुभवों को लिखने बैठ जाता।' यह वर्णन सुश्री एडन ने अपनी पुस्तक में 1839 ई0 में लिखे थे। तब से स्वतंत्रता प्राप्ति तक अनेक अंग्रेज अधिकारियों का यह निवास स्थान था। 1844 ई0 से 1850 ई0 तक लार्ड हार्डिंग के विदेश सचिव, सर फ्रेडरिक क्यूरी छः वर्ष तक इसमें रहे थे। उनके बाद लार्ड डलहोज़ी के एक सलाहकार का यह निवास स्थान रहा था। बाद में इस पर आसमानी बिजली ने अपना कहर ढाया और यह भग्नाविशेष में बदल गया परिणामतः इसे भूतह समझ कर कोई भी इसकी सम्भाल के लिए सामने नहीं आया। बाद में 1855 ई0 के आस–पास इसे एक बार फिर सुधारा गया और इसे एक स्कूल में बदल दिया गया। सन् 1865 ई0 में इसे मूर नामक एक न्यायक ने खरीद कर इसे फिर सुधारा और अपना निवास स्थान बनाया। लेकिन पांच वर्ष बाद ही मूर ने इसे लाभांश लेकर 1870 ई0 में प्रसिद्ध व्यवसायी कॉट्टन को बेच दिया। कॉट्टन ने तीन वर्ष बाद यानिकि 1873 ई0 में इसे एस0टी0बर्कले को बेच दिया। और 1880 ई0 में यह कॉस्ल सर0डब्ल्यू0डब्ल्यू0 हंटर की झोली में जा पड़ी जिसे हंटर ने थोड़ा सुधार कर अपने निवास स्थान में तबदील कर दिया। हंटर ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि जब उसने इसे खरीदा तो यह क्षत–विक्षत इमारत थी जो वन–प्रांतर में स्थित एक टीले पर निर्मित थी। सामने रजत शिखर लिए पर्वतीय श्रृंखलाओं की दृश्यावलियां अति आकर्षित लगतीं और सामने एक बहुत बड़ा बगीचा था पर उसकी देख –रेख नहीं की गई थी। वस्तुतः हंटर पहले किराएदार के तौर पर स्टर्लिंग कॉस्ल में आया था लेकिन एकांत–प्रिय होने के कारण उसे इसका माहौल बहुत भाया परिणामतः उसने न केवल इसे खरीद लिया अथच यहीं पर उसने अपना डेरा जमाया। यहीं पर उसने अपनी चर्चित पुस्तक 'हिस्ट्री ऑव द' इण्डियन प्युपल' सम्पन्न की। इस कॉस्ल में सर हंटर के साथ एक पवित्र आत्मा युक्त, सर कौर्टेनी इल्बर्ट, जो कि वायसराय कौसिल के कानूनी सलाहकार थे, आकर रहने लगे। बाद में अनेक वरिष्ठ अहलकारों का यह

निवास स्थान रहा जिनमें प्रमुख थे कमशः कर्नल इयान हैमिल्टन, कर्नल सर आर0एम0जेन्निंगज़, श्रीमती मीकिन, जनरल ए0एच0हंटर।जनरल हंटर ने इसे एक बार फिर सुधारा और अनेक परिवर्तन किए और आजीवन वहां रहे। उनकी मृत्यु पर ग्वालियर के महाराजा सिंधिया ने इसे खरीद कर जी खोल कर इस पर पैसा खर्चा पर दो वर्ष के बाद इसे महाराजा नाभा को बेच दिया। महाराजा नाभा ने इसे तीन लाख रुपये में खरीदा था।1925 ई0 में इसमें भारत के क्वाटर मास्टर जनरल, सर आर0स्टूयर्ट वर्टले किराएदार रहे थे। स्टर्लिंग कॉस्ल एक अति सुन्दर भवन रहा है अक्सर एकांतप्रिय वासियों के लिए यह स्वार्गिक अनुभूति प्रदान करता रहा है। इसको अनेक विशिष्ट अहलकारों, लेखकों आदि ने किराए पर लिया लेकिन इसका किराया तीन हज़ार रुपये सालाना से कभी बढ़ा नहीं अथच तीन हज़ार रुपये अधिकतम किराया थां।

■■■

रिपॅन हस्पताल भवन

रिपॅन हस्पताल को वजूद में लाने का श्रेय श्री ए0ओ0हयूम और सर बेन्ज़ामिन फ्रेन्कलिन, जो कि भारतीय आयुर्विज्ञान के महानिदेशक थे, को जाता है। 1882 ई0 में जबकि बेन्जामिन शिमला में सिविल सर्जन थे, हस्पताल की जगह नाकाफी थी। युरोपियन रोगियों के लिए कोई अलग से स्थान निश्चित नहीं था। जबकि स्थानीय रोगियों के लिए जो हस्पताल की इमारत थी वह अस्वास्थ्यवर्धक वातावरण में स्थित थी। शिमला नगर निगम ने 21 सितम्बर 1882 ई0 को एक सब–कमेटी मुकर्रर की। इस कमेटी में श्री ए0ओ हयूम के इलावा सर्जन जनरल टाउनसेंड, इन्सपेक्टर जनरल सिविल हस्पताल, श्री जे0एलस्टॅन, श्री जेम्स बॉल्कर, लाला राम नारायण और मेजर फ्रेंकलिन बेंजामिन आदि सदस्य थे। 20 अक्तूबर 1882 ई0 में मारक्विस रिपॅन ने नए हस्पताल की नींव रखी और उसका नाम भी रिपॅन हस्पताल ही रखा गया। इस हस्पताल के निर्माण के लिए आर्थिक सहयोग भी मिलने लगा और 14 मेई 1885 ई0 में यह हस्पताल सम्पूर्ण हो गया था और उस रोज तत्कालीन वॉयसराय लार्ड डफ़्फरिन ने जन साधारण के लिए खोल दिया। इस हस्पताल के उद्भव के बारे में ब्यौरे से बम्बई गज्ज़ेट ने लिखा है–

'लेडी रिपॅन ने हस्पिताल बनाने का प्रस्ताव रखा था, ए0ओ0हयूम ने चंदा जमा किया, एच0इरविन ने इमारत का नमूना तैयार किया जिसे कैम्पयिन तथा लियरमाउथ ने निर्मित कर साकार किया तथा डॉ0 बी0 फ्रेंकलिन, सिवल सर्जन इस सारी प्रक्रिया को कार्यान्वित करने वाले अध्यक्ष थे।

रिपॅन हस्पताल शिमला नगर के दक्षिणी पठार पर स्थित है– यद्यपि पहले यह एक नवेकली जगह थी पर अब गुंजान नगर का यह हिस्सा बन गया है और लगभग नगर के बीचो–बीच स्थित होने का दावा कर सकता है। यह जगह नगर निगम ने दी थी जहां पहले 'ब्रायर्स' तथा 'ग्लेन कॉटेज' जैसे भवन स्थित थे लेकिन दोनों ही घर 1881 ई0 तक जल कर राख हो गए थे। उस समय इस जगह की कीमत 30000 रुपये थी। आर्थिक सहयोग देने वालों की एक लम्बी सूची है– इनमें से मुख्य थे लार्ड रिपॅन, विजयनगर, पटियाला, कोटा, धौलपुर, ट्रावनकोर, दरबंगा, जोधपुर तथा जम्मू कश्मीर के महाराजा, बहावलपुर के नवाब और मुर्शिदावाद की महारानी स्वर्णमयी ने भी आंशिक योगदान दिया था। इनके इलावा अनेक सभ्रान्त नागरिकों तथा प्रवासी युरोपीयों ने भी अपना योगदान दिया था। इस प्रकार 1893 ई0 तक कुल रक्म 147184 रुपये जमा हो चुकी थी। 1925 ई0 तक इस हस्पताल में अनेक फेर बदल किए गए और अनेक नए विभाग खोले गए। उस समय इसमें कुल 52 बिस्तर थे जिनमें से 36 भारतीय मरीजों के लिए जनरल वार्डो में स्थापित थे 12 युरोपीय, एंग्लों इण्डीयन और गण्य–माण्य भारतीयों के लिए निश्चित थे जो विशेष वार्ड का हिस्सा थे। कुछ प्राईवेट वार्ड भी थे। एक अन्य ब्लॉक भी बनाया गया था जहां आठ स्वतंत्र प्रकोष्ठ थे। 1921–22 ई0 में नगर निगम ने हस्पताल को आध ुनिक सुविधाओं से लैस करने हेतु नए उपकरण खरीद के लिए काफी पैसा खर्च किया। ओपरेशन थिएटेर को सुधारा गया, स्टॉफ नर्सें रखीं गईं और अनुभवी एक्सरे तकनीशियन को विशेष तौर पर बाहर से बुलाया गया। 1925 ई0 में डफ़्फरिन ब्लॉक में एक लेक्चर थिएटर का निर्माण किया गया जिसके लिए लेडी रीडिंग ने अपने पर्स से दस हज़ार रुपये दान दिए। प्रदूषित जल तथा प्रदूषित हवा से फैलने वाले रोगों के लिए एक अन्य वार्ड भी इसी वर्ष अलग से स्थापित किया गया जो बाद में हस्पताल से अलगकर बालूगंज ले जाया गया पर इसका प्रशासन रिपॅन हस्पताल के अधिकारियों के पास ही रहा।

जनसंख्या अनेक गुणा बढ़ जाने से यह हस्पताल अति संकुचित तथा भीड़–भाड़ से युक्त लगता है और नाम बदल कर दीन दयाल आयुर्विज्ञान हस्पताल रख दिया गया है पर जन–साधारण में अभी भी यह रिपॅन हस्पताल के तौर पर ही जाना जाता है।

■■■

स्नोडॅन

स्नोडॅन जो वर्तमान में अनेक मंजिला इमारतों का समूह है और शिमला के मुख्य हस्पताल के कार्यालय तथा विभाग सम्भाले है कभी वायसराय के परिवार का आश्रय स्थल था। स्नोडॅन का ज़िक्र सर्वप्रथम लेडी लिट्टन की डायरी से हमें मिलता है। 5 मेई 1850 ई0 में लेडी लिट्टन ने अपनी डायरी में लिखा था–'हमने स्नोडॅन तक घुड़सवारी की, उस घर तक जहां हमें रिपॅन के आने पर अपना डेरा जमाना है। यह भवन लॉर्ड राबर्ट्स का है लेकिन लार्ड राबर्ट्स ने इसे दरबंगा के राजा को किराए पर दिया हुआ है और राजा ने हमें यहां रहने के लिए इस लिए दिया है क्यों कि वह जुलाई तक यहां नहीं आता।'

आगे जून सात 1880 ई0 के दिन लेडी लिट्टन ने एक बार फिर स्नोडॅन का जिक्र छेड़ा है– 'बच्चों ने पीटर हॉफ छोड़ दिया हैं लड़कियां घुड़सवारी करते हुए और बाकी लोग टांगें में स्नोडॅन पहुंचे। उसके बाद कमरों का प्रबन्धन शुरु हुआ और साथ ही सफाई का अभियान छेड़ा गया। शाम के समय जब हम लॉन में,शमियाने के नीचे रात्रि भोज को बैठे थे कि लॉर्ड विलियम ब्रेसफोर्ड लॉर्ड रिपॅन को अम्बाला छोड़कर धीघ्र ही वापिस आ पहुंचे ताकि हमारे साथ वे अंतिम शाम बिता सकें। उन्होंने हमें बताया कि गर्मी बहुत थी– मेरी कल्पना से भी परे। और हमें– अर्थात लॉर्ड ब्रेसफोर्ड और मेजर वाईट को अपने सर पर गर्मी दूर भगाने के लिए, बर्फ रखनी पड़ी...'

जून आठ, 1880 ई0 के दिन लेडी लिट्टॅन ने एक बार फिर अपनी डायरी में लिखा–'लॉर्ड रिपॅन पांच बजे तक पहुंच जाएंगे। उनका स्वागत एक बड़े शमियाने के नीचे करना होगा क्योंकि घर बहुत छोटा हैं आज रात को बड़ा खाना होगा और फिर हम दूसरे घर चले जाएंगे।' लार्ड रिपॅन के आगमन पर लेडी लिट्टन ने लिखा– 'पिछले मंगलवार बड़ा घोर दिन था– एकरसता लिए हुए। नया सामान लेकर नौकर आ पहुंचे थे और उनके बाद मैंने लॉर्ड रिपॅन के पीछे पीछे खच्चर पर यात्रा की। वर्दी में सजे स्मार्ट अधिकारियों से शमियाना भरा हुआ था और अल्हादित कर रहा था। हम वरामदे से खड़े होकर यह सब निहार रहे थे। लॉर्ड रिपॅन खुले हृदय के व्यक्ति हैं और मुझे विश्वास है कि वह अवश्य लोकप्रिय होंगे। हमारा रात्रि भोज बहुत करीने से सम्पन्न हुआ लेकिन जब हमें विदा होना था तो मेरा मन बड़ा खराब हुआ और हाथ मिलाते मिलाते मैं लगभग रो पड़ी थी।'

स्नोडॅन में जनरल पीटर इन्न एक डिस्पेन्सरी चलाते थे। 1873–74 में इस भवन को लॉर्ड रॉबर्ट ने खरीद लिया और इस भवन में अनेक सुधार किए। 1887 ई0 में शिमले को बेहतरीन तरीके से सजाया गया था क्योंकि यह इग्लैंड की रानी की रजत जयन्ती वर्ष था। स्नोडॅन में नए 'बाल रूम' के उदघाटन के अवसर पर फेन्सी ड्रेस शो' का आयोजन किया गया। इस बीच लॉर्ड राबर्ट शिमला के सदूर पर्वतीय क्षेत्रों के दौरे पर निकल गए और वापिस शिमला आने पर लेडी राबर्ट के कुछ चहेतों ने 'होम्स इन हिल्स' बनाने के लिए अनेक उपहार दिए। इसका आयोजन स्नोडॅन में ही किया गया। इस अवसर पर लॉर्ड लैन्सडाउन ने संयोजक का रोल अदा किया। यह रॉबर्ट्स परिवार का स्नोडॅन में अंतिम कार्यक्रम था।

लार्ड राबर्ट्स के विदा होने के कुछ दिन बाद भारत सरकार ने स्नोडॅन को 79187 रुपये में खरीद लिया और उसे कमान्डर–इन–चीफ का निवास स्थान घोषित कर दिया गया। यह जयदाद लैण्ड इक्विजीशन एक्ट के अंतर्गत ली गई थी। बाद में एक दुमंजिला इमारत निर्मित की गई ताकि महामहिम का व्यैक्तिक स्टॉफ वहां रह सके। एक बहुत बड़ा द्वार बनाया गया जो दोनों ओर बनाए गए विशाल स्तम्भों पर आधारित था।

लार्ड राबर्ट्स 28 नवम्बर 1885 से लेकर 7 अप्रैल 1893 ई0 तक ब्रिटिश इण्डिया के कमान्डर–इन–चीफ

रहे। जब तक वे पद पर थे स्नोडॅन में ही उनका निवास स्थान रहा। रार्बट्स के बाद जनरल जॉर्ज स्टियूवर्ट वाईट ने इस ओहदे को सम्भाला। जनरल वाईट पांच वर्ष तक स्नोडॅन में रहे। उन्होंने इस भवन में एक गार्द प्रकोष्ठ और गेट बनवाये। इस बीच लेडी वाईट अपनी मेहमानवाज़ी के लिए लोकप्रिय हो आईं थीं। स्नोडॅन में अनेक नृत्य तथा नाटकों के कार्यक्रमों का आयोजन किया गया जो अति चर्चित रहे। जनरल वाईट के बाद चार्ल्स नामर्ने ने यह पद सम्भाला पर कुछेक महिनों के लिए ही और बाद में इसकी बागडोर सर विलियम लॉकहर्ट को सम्भालनी पड़ी। सर विलियम बातों में नहीं कर्म में यकीन रखते थे जिन्होंने अपनी ख्याति युद्ध के मैदान में अर्जित की थी। पर वे किसी रहस्यमयी बीमारी से त्रस्त होकर कलकत्ता चले गए जहां उनकी मृत्यु 18 मार्च 1900 ई० में हो गई। उनके बाद स्नोडॅन के निवासी बने सर पॉवर पॉल्मर जिन्होंने अपने पद पर रहते हुए सेना को उचित ट्रनिंग और अस्त्र–शस्त्र से लैस किया पर जनरल पॉवर की अचानक मृत्यु 28 फरवरी, 1904 ई० में होने से राज्य हिल गया। इस बीच जनरल किचनर का नाम इस पद के लिए नामांकित हो चुका था। जनरल किचनर अति महत्वाकांक्षी था। पहले तो उसने अपनी रिहायशगाह को बारीकी से परखा और अनेक खामियां उसमें पाईं और स्नोडॅन के भवन में सुधार के लिए अनेक सिफारशें कीं जिन्हें भारत सरकार ने कमोवेश स्वीकार कर उसके अधिकार में काफी पैसा दे दिया। स्नोडॅन के प्रवेश द्वार, सीढ़ियों आदि में सुधार किए गए। नीचे के माले में कमाण्डर–इन–चीफ का विशाल पर अन्धेरा सोने का कमरा ढह दिया गया और उसके स्थान पर एक 'एल' आकार का सुन्दर हाल कमरा बनवाया गया। इस हाल से एक खुली सीढ़ी वर्तुलाकार में ऊपर चढ़ती हुई ले जाई गई जो पहले माले पर स्थित कमरों के बाहर उन्हें घेरे बरामदे में खुलती थी। यह सीढ़ी, हाल के पैनल और वे स्तम्भ जिनपर बरामदा टिका था अखरोट की लकड़ी के साथ सजाया गया। इन सीढ़ियों को वर्तुल होते हुए देखना अपने आप में अति लोमहर्षक था क्योंकि इन मोड़ों पर हथियार सजाए गए थे जो दुश्मनों से छीने गए थे। हाल की अन्दरूनी छत के ठीक नीचे अनेक बैनरों की कतारें सजित की गईं थीं जिन पर अनेक जयघोष लिखे गए थे।

हाल के मध्य में लगभग एक दर्जन वे ध्वज सज्जित थे जो जनरल ने ओमदुर्मन के युद्ध में हथयाये थे। बाद में किचनर ने अति कलात्मक भारतीय और चीनी कला का अन्यतम नमूना, एक बेशक कीमती अल्मारी को उखाड़ फेंका और जो स्थान खाली हुआ वहां एक सुन्दर 'बिलियर्ड रूम' बनवाया। बिलियर्ड के मेज के पैनलों को शीशम की कलात्मक काढ़ी हुई पट्टियों से सज्जित किया जिन पर खेल का उत्स लिखा गया था– 'हमला करो, और डरो नहीं'। इस हाल के फर्श को नौशहरा से लाई गई संगमरमर की स्लैबों से अलंकृत किया गया और 'ब्रास फायर डाग' को रेलवे की फैक्टरियों में ढाला गया। किचनर ने इसके लिए 'लाहौर स्कूल ऑव आर्ट' के मशहूर और चर्चित कलाविज्ञ रामसिंह, जोकि जॉह्न किपलिंग का शिष्य था, जिसने ओसबर्न में रानी विक्टोरिया के लिए भारतीय कक्ष का नमूना तैयार किया था, की सलाह से सारा कार्य किया।

जून 1903 ई० में किचनर के सौजन्य से स्नोडॅन में अति विशद और शानदार नृत्य का आयोजन किया गया। इस नृत्य के लिए संगीतज्ञ फ्रांस से मंगवाये गए जो अपने क्षेत्र में अति निपुण थे। इस विशद नृत्य के लिए दो भोज कक्षों को सजाया गया था। इनमें से एक वह विशाल कक्ष जो 'बाल रूम' में था और दूसरा निचली इमारत में भोजन कक्ष। भोजन कक्ष में उन सभी भेटों की नुमायश की गई जो किचनर को भेंट की गईं थीं। पहले विशाल कप थे जो लण्डन के नगर ने भेंट दिए थे। और उसके बाद छोटे कप थे जो ग्रोसर कम्पनियों ने भेंट दिए थे। लीवर पूल द्वारा भेंट में दिए गए गुलाब जल से भरे हुक्के और प्लेटें थीं जो इनके बाद प्रदर्शित किए गए थे। इनके बाद थे दो जोड़े दीप स्तम्भ, नमकदानियां, तेल पात्र, मिर्च दानियां आदि क्रमशः प्रदर्शित

किए गए थे इनमें आकर्षण का केन्द्र सूप तथा खाने की प्लेटें थीं जिनमें रात्रि भोज दिया गया। विशाल चांदी की तश्तरियां जो चैथन तथा लीवर पूल ने भेंट में दीं थीं इस प्रदर्शनी का मुख्य अंश थी।

लॉर्ड किचनर द्वारा आयोजित नृत्य पार्टियां अति लोकप्रिय हुई। एक बार तो बहुत दिलचस्प घटना घट गई कि किचनर द्वारा घोषित एक नृत्य स्थगित कर दिया गया पर पांच संभ्रात महिलायें जिन्हें आमंत्रित नहीं किया गया था स्थगन की सूचना नहीं पा सकीं– वे निश्चित समय पर पहुंच तो गईं पर वहां उन्हें मुहं की खानी पड़ी।

1909 ई0 में लार्ड किचनर की विदाई के समय 170 अफसरों के लिए जवानों ने भोज का प्रबन्ध किया था– युनाईटिड सर्विस क्लब में। इसमें 15 जनरल थे और 26 कर्नल और इस अवसर पर लार्ड किचनर की टिप्पणी कि आगामी जनरल को सहायकों की कोई कठिनाई नहीं होगी मज़ाक का कारण बन गयी थी।

किचनर द्वारा आयोजित नृत्य पार्टियों और दूसरे शुगलों ने प्रशासन को बहुत प्रभावित किया था। अक्सर शिमला को 'डांस पार्टियों' 'फैन्सी ड्रैस शो' और दिखावे का नगर करार दे दिया गया था। किचनर के बाद आने वाले जनरलों– सर ओ' मूर तथा जनरल बौचैम्प डफ्फ और सर चार्ल्स मोनरों ने सभी ऐसी पार्टियों का बहिष्कार कर दिया था। परिणामतः ये पार्टियां बंद हो गईं पर संभ्रात तथा ऊंचे मरहलों पर वास करती महिलाओं को कुछ तो चाहिए था अपने को व्यस्त रखने के लिए अतः उन्होंने सेना के जवानों के लिए अनेक कार्य अपने हाथ में ले रखे थे। अब तक स्नोडॅन तथा बार्नस़ कोर्ट में एक प्रतिस्पर्धा शुरु हो चुकी थी। कर्नल हैरी रॉस रेडक्रास द्वारा आयोजित अनेक कार्यक्रमों में भाग लेने लगा था। उन दिनों लेडी मोनरो अपने कार्यो तथा सादा जीवन के लिए काफ़ी लोकप्रिय हो चुकी थी। अनेक दूसरे कार्यो के साथ उसने ग्रेंड लक्की बैग का आविष्कार किया ताकि अन्नाडेल में रेडक्रास को केन्द्रित किया जा सके। इस प्रक्रिया से उसने रेडक्रास के पर्स में 50000 रुपये जमा करवा दिए। विदाई के समय उसे बार्नस़ कोर्ट में बहुत संवेदनशील विदाई दी गई और उच्च वर्ग के इस समागम में उसे गलीचे भेंट दिए गए। जनरल मोनरों बच्चों का चहेता था। स्नोडॅन से अपने कार्यालय तक वह अनेक बार बच्चों तथा किशोरों को मिलने का समय निकाल लेता था।

जनरल मोनरो के बाद लार्ड रॉवलीन्सॅन ने जनरल का ओहदा सम्भाला। वह जनरल रॉवर्ट का सहायक 1886 ई0 में रहा था। लार्ड और लेडी रॉवलीन्सन शिमला में अति चर्चित दम्पत्ती रही हैं। दोनों ने शिमला के अनेक सामाजिक कार्यक्रमों में बढ़चढ़ कर भाग लिया। उनके समय में स्नोडॅन में महिलाओं के लिए तैयार होकर सामाजिक और सांस्कृतिक कार्यक्रमों में भाग लेने हेतु एक विशाल 'ड्रैसिंग रूम' बनाया। यह 'ड्रैसिंग रूम' इस प्रकार निर्मित किया गया था कि इसे 'स्क्वैश टेनिस कोर्ट' के तौर पर भी इस्तेमाल किया जा सकता था। लार्ड रावलिन्सॅन पोलो, मोटर ड्राईविंग तथा शिकार का शौकीन था। वह यात्रा करने का भी शौकीन था। ऐसा कहा जाता है कि उसके शिमला आगमन से उसकी मृत्यु तक वह रेल से लगभग 70000 मील तय कर चुका था।

लेडी रावलसॅन ने एक बार फिर नृत्य के कार्यक्रम आयोजित करने शुरु कर दिए थे जो स्नोडॅन के 'बालरूम' में आयोजित किए जाते थे।

जनरल रावलसॅन की आकस्मिक मृत्यु पर जनरल क्लॉड जेकॅब ने कमाण्ड सम्भाली। यह 1925 का वर्ष था जनरल जेकॅब तथा लेडी जेकॅब शिमला में अति लोकप्रिय होते हुए भी उन्होंने उच्च परम्पराओं को कायम रखा। जनरल जैकॅब ने अनावश्यक गोपनीयता को सेना से दूर कर जनसाधारण के करीब लाया अतः वह जनसाधारण में अति चर्चित हुआ। पर जनरल का शिमला में ठहराव अति कम रहा तीन अप्रैल 1925 ई0 में उसने यह पद सम्भाला था और 5 अगस्त 1925 को फील्ड मार्शल विलियम वर्डवुड को सौंप दिया।

शायद फील्ड मार्शल विलियम ही थे जो इस भवन में अंतिम जनरल निवासी रहे। 6 अगस्त 1925 से आगे लगभग चार वर्ष तक फील्ड मार्शल विलियम यहां रहे।

स्नोडॅन को यह गौरव हासिल है कि अक्तूबर 1922 में लार्ड रीडिंग–वॉयसराय के राज्यकाल में हैरीसन की बेटी पेग्गी की शादी की पार्टी और दूसरी रसमें स्नोडॅन में हुई थीं। उस समय लार्ड–रॉवलिसॅन कमाण्डर–इन–चीफ थे। और लाहौर से बिशॅप दुरांट शादी की रसम को पूरा करने विशेष तौर पर आमंत्रित किए गए थे।

बाद में स्नोडॅन को हस्पताल में बदल दिया गया था। अब इसका नाम बदलकर इन्दिरा गांधी मेडीकल कालेज और हस्पताल रख दिया गया। तीन नई इमारतें बनाई गई ताकि बढ़ती जरूरतों को पूरा कर सके और मेडीकल कालेज के साथ साथ हस्पताल के भी विभिन्न विभागों को सुचारु रूप से चलाया जा सके पर अंग्रेजों की परम्पराओं को स्नोडन आज भी इतिहास के पन्नों में जिन्दा रखे हैं।

■■■
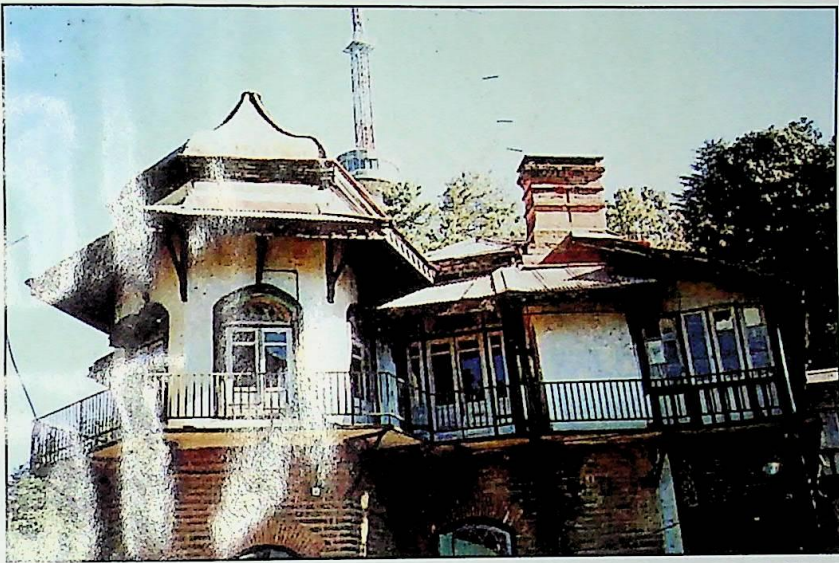
विंडक्लिफ भवन

कैनेडी काटेज
(कभी यहीं पर स्थित था
कैनेडी हॉउस)

बेंटिक कॉस्ल जहां
अब स्टेट बैंक है
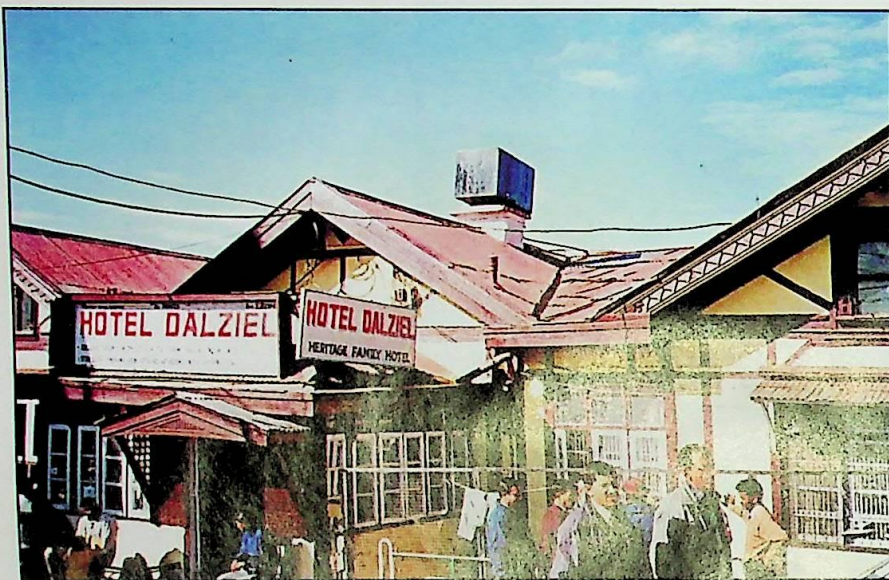
डेलजेल हॉऊस

रेलवे बोर्ड भवन

गॉर्टन कॉस्ल
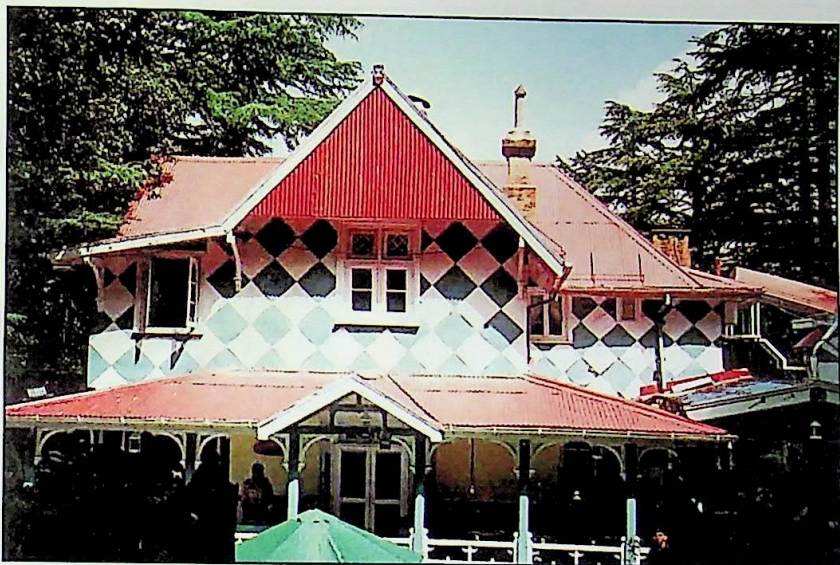
सदी का सफर करता ग्लेन

मुख्य डाकघर भवन

बेनटॅनी भवन

आल सेंट्स चेपल

रोथनी कॉस्ल

पीटरहॉफ

बार्न'स कोर्ट

कसोली का विश्राम घर

चर्च,कसोली

चैल पैलैस होटेल
और रेस्त्रां

ओबराय कलार्क्स
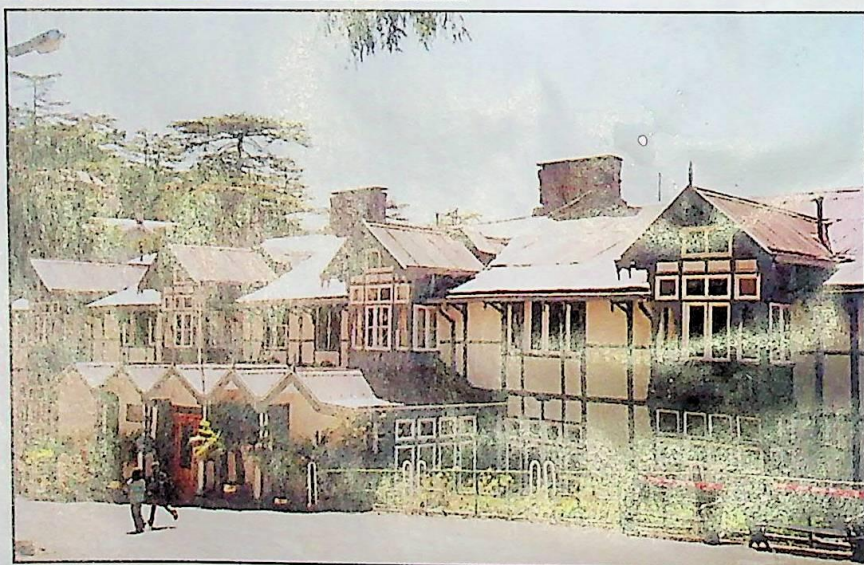
रिट्रीट,मशोबरा

← कालीबाड़ी मंदिर भवन समूह में एक मंदिर

सीपुर का श्रद्धास्थल →
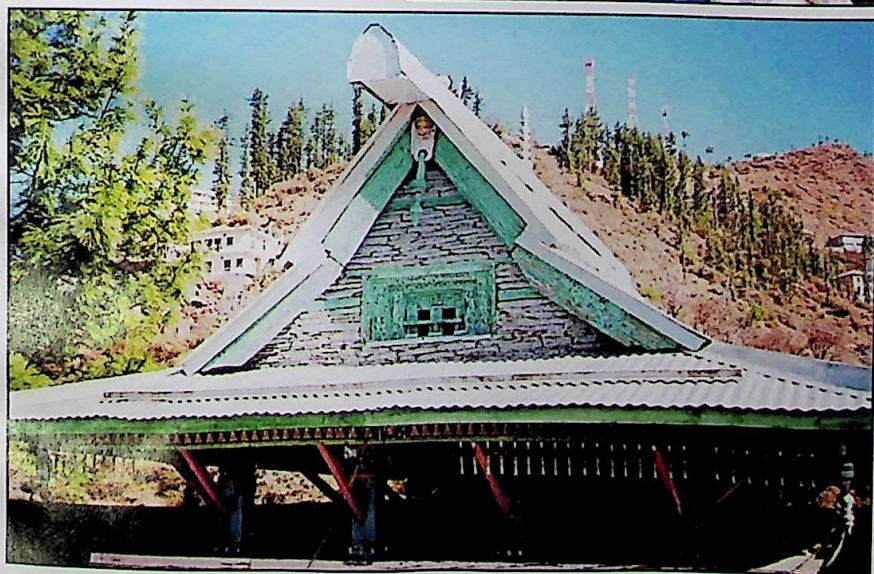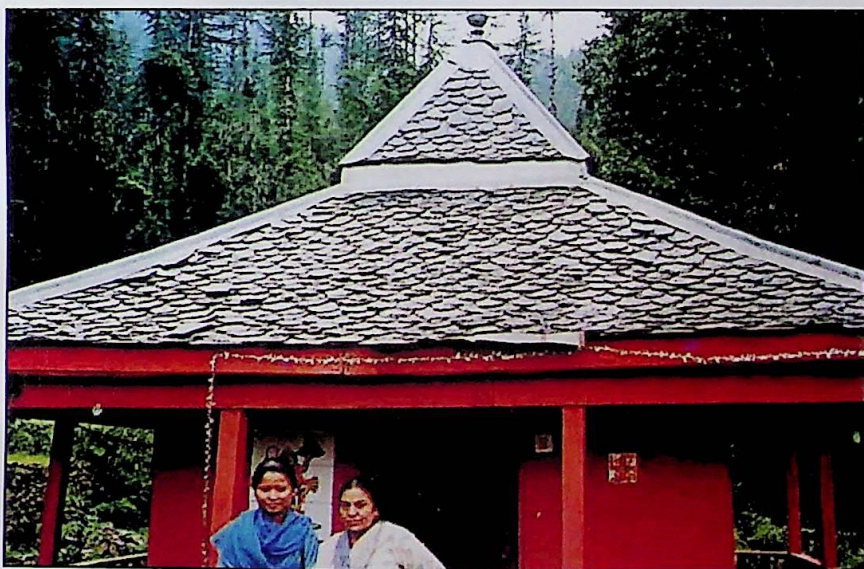
← चिखड़ेश्वर का श्रद्धास्थल
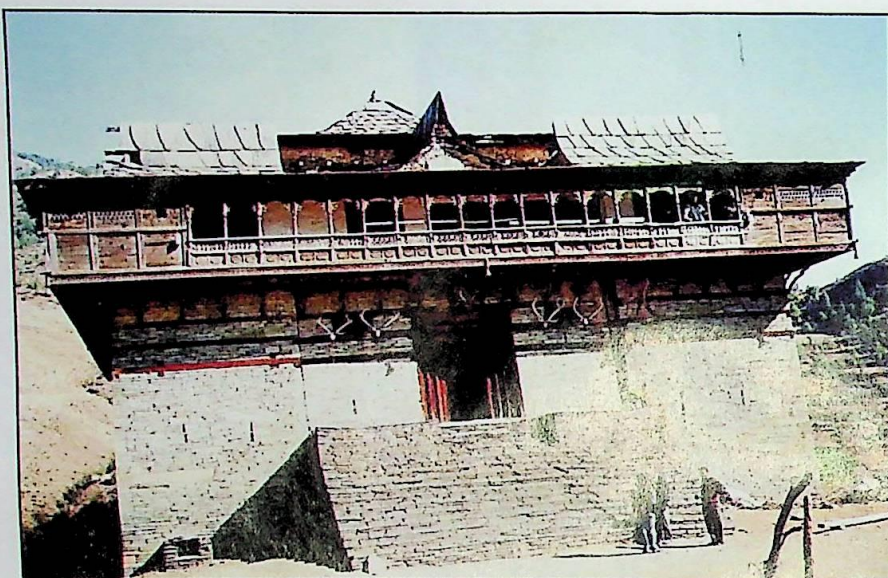
सैंज कोठी
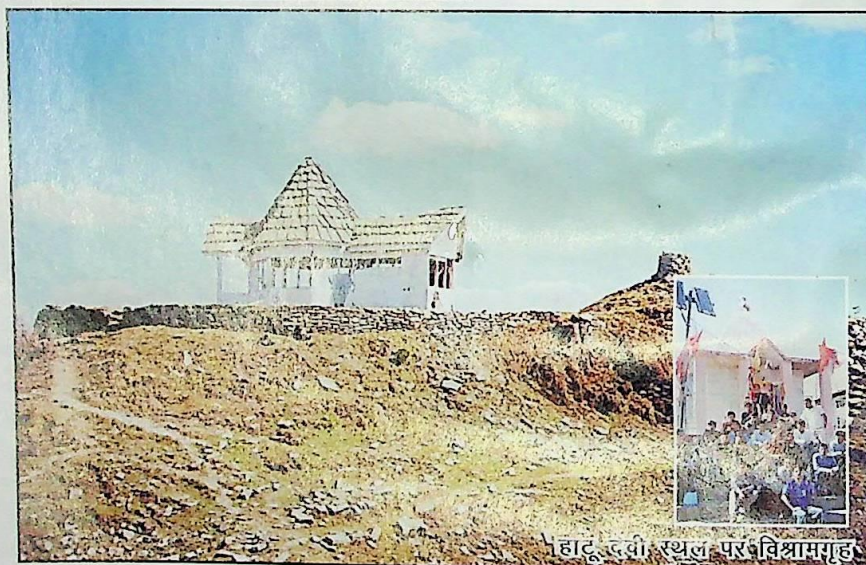
हाटू देवी स्थल पर विश्रामगृह
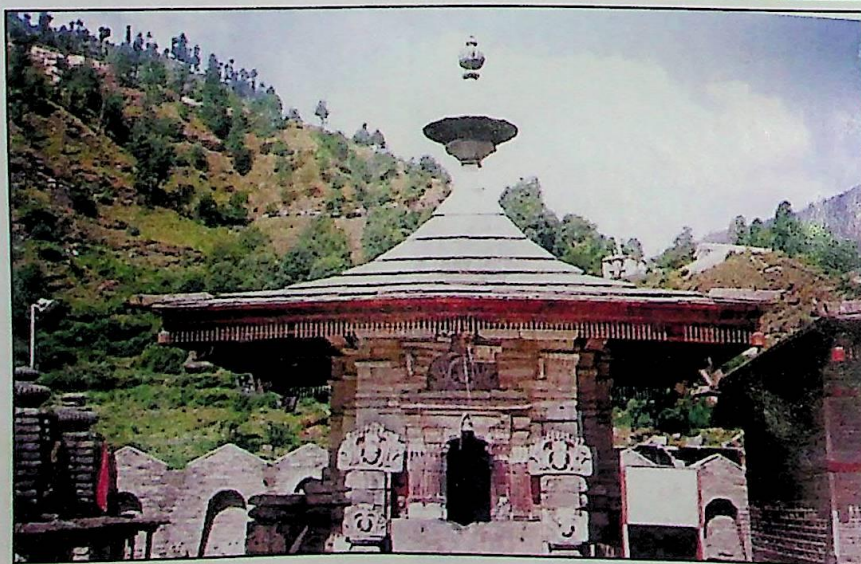
हाटेश्वरी देवी मंदिर समूह

ऑकलैंड हॉऊस

लॉर्ड विलियम के बाद अर्ल ऑव ऑकलैण्ड गर्वनर जनरल के औहदे पर तैनात हुए,1836 ई0 1842 ई0 तक, लॉर्ड ऑकलैण्ड ने अपने लिए एक अन्य भवन के लिए शिमला पर्वतीय श्रृंखला के पूर्वोत्तर में एक पठार चुना जहां 1838 ई0 में 'ऑकलैण्ड हॉऊस' बनकर सामने आया। और वह पठार जिस पर यह भवन बना 'इलाईसिअम' नाम से चर्चित हुआ। इस नाम का कारण थीं ऑकलैण्ड की दो बहने जो अपने शोक, नाच गाने और थिएटर के लिए प्रसिद्ध थीं। अतः ऑकलैण्ड भवन इन कार्यक्रमों का केन्द्र बनकर उभरा।

'ऑकलैण्ड हाऊस' के निर्माण का इतिहास अति दिलचस्प है। 1828 ई0 में ईस्ट इण्डियां कम्पनी के एक सर्जन, डॉक्टर बलैक को पोलीटिकल एजेंट की ओर से सुबाथु में धरती का एक टुकड़ा भेंट स्वरूप मिला। इसे दो प्लाटों में बांट दिया गया–प्लाट क्रमांक 13 तथा प्लाट क्रमांक 54। प्लाट क्रमांक 13 पर उसने एक विशाल इमारत खड़ी की जो किराए पर दे दी गई और प्लाट क्रमांक 54 पर उसने अपने लिए एक छोटा भवन बनवाया।

1836 ई0 में डॉ0 बलैक ने प्लाट 13 विमय विशाल भवन के लॉर्ड ऑकलैण्ड को बेच दिया ओर प्लाट क्रमांक 54 कैप्टेन डब्ल्यू0जी0आसबर्ने, जो कि लॉर्ड ऑकलैण्ड का भतीजा और मिलीटेरी सेक्रेटरी था,को बेच दिया गया। लॉर्ड ऑकलैंण्ड ने इस भवन का छोटा हिस्सा अपनी रिहायश के लिए रखा लेकिन अपने अनुजों तथा रिश्तेदारों द्वारा लॉर्ड ऑकलैंण्ड को अनेक निमंत्रण मिले तदुपरांत बहुत आग्रह पर लार्ड ने एक छोटा भवन स्वीकार कर 1840 ई0 में उक्त विशाल भवन और प्लाट क्रमांक 54 पर बना भवन बेच दिया जिन्हें डॉ0 जे0 रेन्सफोर्ड जो कि कम्पनी की सर्विस में सहायक सर्जन था ने 16000 रुपये में खरीद लिया। बाद में इन भवनों को क्रमशः सरकारी भवन और सेक्रेटरी का बसेरा,सेक्रेटरी लॉज,की संज्ञाओं से जाना जाने लगा।वर्ष 1858 ई0 में डॉ0रेन्सफोर्ड को इन भवनों के एवज् में बंगाल आर्मी के कर्नल पीटर द्वारा 24000 रुपये मिले। कर्नल पीटर बहुत दूरदर्शी था और व्यवसाई सोच रखता था। उसने 'ऑकलैंड एस्टेट', जो प्लाट क्रमांक 13 तथा 54 पर बने भवनों व खाली स्थान पर आधारित थी, अनेक हिस्सों में बांट कर बेचना शुरू किया। कर्नल ने सर्वप्रथम प्लाट क्रमांक 13 पर बने ऑकलैंण्ड भवन का सौदा 8000 रुपये में किया और इसे कलकत्ता के बिशॅप ,जो कि पंजाब महिला विद्यालय का न्यासी था, के सपूर्द कर दिया। पर इसी प्लाट में बने एलाईसियम होटल, केंडल लॉज और वेवर्ले आदि को अपने पास ही रखा। जबकि सेक्रेटरी लॉज को डब्ल्यू न्यूमैन को 5100 रुपये में बेच दिया पर वह मैदान जिस पर बेलवेदेयर निर्मित था अपने पास ही रखा।

'ऑकलैंण्ड हॉऊस' को 1836 ई0 से 1848 ई0 तक, लगभग बारह वर्षो तक, तत्कालीन गर्वनर–जनरलों के आवास होने का गौरव प्राप्त हुआ और इस भवन में क्रमशः लार्ड ऑकलैंण्ड ने 1836 ई0 से 1842 ई0 तक, अर्ल ऑव एल्लेबोरोह् ने 1842 ई0 से 1844 ई0 तक और विसकांऊट हार्डिंग ने 1844 ई0 से 1848 ई0 तक अपना आवास स्थान बनाने का गौरव इस भवन को प्रदान किया लेकिन बाद में बार्नस हॉउस और पीटरहॉफ आदि भवनों के निर्माण के साथ इस भवन का महत्व इतना नहीं रहा तथा इसे एक फ्रेंच दम्पत्ति ने खरीद कर होस्टल बना दिया जिसे बाद में एक भारतीय व्यवसाई ने खरीदकर होटल बना दिया।

1866 ई0 में इसे महिला विद्यालय के लिए खरीद कर 'होली लॉज' के नाम से अभिहित किया जाने लगा। इस विद्यालय की पहली हेड मिस्ट्रेस श्रीमती मकीन्नॅन थीं। जिन्होंने इस भवन को कक्षाओं के योग्य सुधार कर बड़ा किया और कुछ नए प्रकोष्ठ स्टॉफ की अवासीय सुविधाओं के लिए भी निर्मित किए गए। इसके लिए उपरी माले पर अनेक प्रकोष्ठ बनाए गए। शुरू शुरू में इस स्कूल का महत्व इतना बड़ा कि लगभग सभी

अंग्रेज अधिकारियों में एक प्रतिस्पर्धा रहती थी कि उनकी बेटियां इस स्कूल में शिक्षा ग्रहण करें पर कालान्तर में जब इंग्लैण्ड जाने की सुविधा मिलने लगी तो धीरे धीरे यह स्कूल शिथिल पड गया। बाद में सुश्री प्रट्ट, जो कि प्रसिद्ध संगीतकार जुलियस बेनीडिक्ट की शिष्या थी, ने इस स्कूल को न केवल संवारा अथच एक बार फिर अपनी सूझ–बूझ से वह इसे उन्नति के उच्च सौपानों तक ले गई। सुश्री प्रट्ट अनेक वर्षों तक इस विद्यालय में कार्य करने के बाद सन 1904 ई0 में अवकाश ग्रहण कर गईं बाद में इस विद्यालय को लाहौर की संत हिल्डा की डाओसेसन सोसाईटी ने सम्भाल लिया और सुश्री एम0 पेयर्स के सपुर्द इसे सौंप दिया गया। पुरानी इमारत को,जसके साथ इतिहास की अनेक घटनायें जुड़ी थीं 1920 ई0 में गिरा दिया गया और रूपये 270000 की कीमत पर ,स्कूल की आवश्यकताओं को सामने रखते हुए नई इमारत को निर्मित किया गया– स्टॉफ तथा शिक्षार्थियों को अवासीय सुविधायें प्रदान की गईं।

आईये अब मौलिक ऑकलैण्ड हाऊस' के स्थापत्य के बारे में जानें। यह एक मंजिला भवन था जिसकी छत स्पाट और समतल थी जिस पर खूब कूट–पीट कर मिट्टी के लेप किए गए थे ताकि वर्षा का पानी या पिघलने पर बर्फ का पानी भीतर न जा सके। लेकिन इन तैयारियों के बावजूद एक बार इतनी वर्षा हुई कि उसका पानी छत और दीवारों के जोड़ पर से रिसता रहा फलस्वरूप मुख्य कमरे की भीतरी छत ढहकर नीचे गिर पड़ी और काफी नुकसान हुआ। उन दिनों लॉर्ड ऑकलैण्ड के स्टाफ सदस्य कैप्टेन एम0 एक छाता लेकर बैठते थे और रोजनामचा लिखते थे। जहां तक कि दूसरे लोगों को भी छाते तान कर खाना खाना पड़ता था। वर्षा के दिनों में मक्खियों और मच्छरों का काफी प्रकोप रहता था फलस्वरूप ऑकलैण्ड के निवासी अनेक रातों सो नहीं पाते थे।

लॉर्ड ऑकलैण्ड की बहन एमिली एडन ने 1838–39 ई0 में अपने संस्मरणों में लिखा था–

'अप्रैल में जब हम शिमला पहुंचे तो यह दूधिया बर्फ से ढका था। हमारा नौकर गाईल्स ने जो दो दिन पहले ही पहुंच चुका था उसने हमारे कमरों में पर्दे लगा दिए थे और फर्श को गलीचों से ढक दिया था अतः हमें बहुत सुविधाजनक लगा। मेरा छोटा कमरा उजास से भरा हल्का सा लगता था और वह सब उत्सुकता और स्वप्न जो मैंने यात्रा के दौरान संजोए थे अब साकार होने लगे थे।......दृश्य अति आकर्षक थे। ड्राईंग रूम से दिखने वाली गहरी वादियां पश्चिम दिशा तक चलीं गईं थीं और डाईनिंग रूम से हम बर्फ से ढकी चोटियों को निहार सकते थे जो मेरे कमरे से भी दीखती थीं। हमारी बैठकें छोटीं थीं पर इस भयंकर सर्दी में वे अच्छी लगीं और दो प्रमुख प्रकोष्ठ अच्छी तरह सज्जित होकर अच्छे लगे। हमारे हर कमरे में अंगीठी का प्रबन्ध था और खिड़कियां खुलीं थीं। हर दिशा में सुर्ख बुरांस के फूल फूल कर अपनी छटा बिखेर रहे थे। और आसपास के वानस्पतिक वातास में सैर करना अति सुखद था। अप्रैल 22 ,जलवायु, वातास और सब कुछ मन को हर्षाने वाला है और हमारा यह बेचारा घर जिसे हर कोई बुरा भला कहता है शिमला का आश्चर्य बन कर रह गया है। हमने कलकत्ता से गलीचे, फानूस और 'बाल शेड' खरीद कर लाये थे और स्थानीय एक कलाकार को पेपर की कतरनों को नमूनों में ढालकर दीवारों पर रंग से चिपकाने का काम सौंप दिया था। खिड़कियों और किवाड़ों के हाशियों के नंगेपन को इस प्रकार हमने अपनी कलात्मक सूझ से ढक दिया था। हम अपना काफी समय बागवानी में लगाते थे। हम नीचे घाटियों में घुड़सवारी करते चले जाते थे और घोड़ों के साइसों को जंगली टुलिप और लिली के फूलों के पौधों को खोदने के लिए कहते। धीरे धीरे वे इतने जोश से भर उठे कि जब भी वे ऐसे फूल के पौधे देखते तो झट से बिना कहे ही, कूद कर प्रयास से उन पौधों को उखाड़ लाते पर हर बार जड़ों के गुल्मों को वे काट देते थे। हमारे पास बहुत कम मेहमान आते थे। हमारे समूह के इलावा शिमला में लगभग 46 महिलायें और 12 पुरुष थे। 40 महिलायें और छः पुरुष बाद में आने वाले थे। हमारी पार्टी में कितने

नृत्य के दौर होंगे नहीं कह सकते–प्रबन्धक इस विषय में थोड़ा चिंतित थे.....यहां अनेक खूबसूरत चेहरे थे लेकिन हम कठिनाई से रात्रि भोज का प्रबन्ध कर पाते थे। अक्सर निमंत्रित महिलाओं की ओर से कोई न कोई बहाना बना लिया जाता था कि 'चूंकि हमारे पति युद्ध में रत हैं हम पार्टियों में भाग नहीं ले सकतीं।' वहां पांच महिलायें एक ही रेज़ीमैंट की एक इमारत में अपने परिवारों के साथ रहतीं थीं और उनकी एक ही बैठक थी फिर भी वे कहतीं थीं कि वे कभी एक दूसरे के साथ लड़ीं नहीं।'

'जीवन बहुत स्वच्छन्द था। अनेक बार लॉर्ड ऑकलैण्ड रात्रि भोज के बाद अपनी बहनों के साथ बेंन्टिक कॉस्ल में जनरल सर हेनरी फेन, जोकि कमान्डर–इन–चीफ थे ,को मिलने चले जाते थे और अनौपचारिक तौर पर अनेक किस्से कहानियां उमगने लगतीं। एक बार बंगाल के मुख्य न्यायधीश ,सर एडवर्ड रियान, 1839 ई0 में शिमला लार्ड से मिलने आये लेकिन 'ऑकलैण्ड हॉउस' में कोई कमरा खाली नहीं था परिणामतः उन्हें कहीं और ठहरना पड़ा पर रात्रि भोज 'ऑकलैण्ड हॉऊस' में ही हुआ।'

आठ मेई, 1838 ई0 में लॉर्ड ऑकलैण्ड ने ऑकलैण्ड हाऊस में एक दरबार का आयोजन किया जिसमें सभी पर्वतीय राजाओं, रजवाड़ों को आमंत्रित किया गया। इनका परिचय कर्नल तप्प ने लॉर्ड से एक एक कर करवाया। कर्नल तप्प सिस–सतलुज स्टेट्स का सुपरइन्टेडेंट था। मेई 1838 ई0 में भेंटों से लैस राजदूत महाराजा रणजीत सिंह द्वारा ऑकलैण्ड में भेजा गया। उस समय का दृश्य अति दिलचस्प था कि गोरखा सैनिकों की एक कम्पनी प्रवेश द्वार के एक और तैनात थी तो दूसरी ओर लोहित रंग की वर्दियां पहने, भालों से लैस गर्वनर जनरल की अपनी टुकड़ी मुस्तैदी से तैनात थी। पंजाब के राजदूत तथा उसके साथी वहां लगभग एक सप्ताह तक रहे जिनके सामने नृत्य करने से महिलायें हिचकिचातीं रहीं पर अंतिम दिन लार्ड के कहने से उन्होंने एक अच्छा नृत्य प्रस्तुत किया।

24 मेई 1838 ई0 को ऑकलैण्ड हॉऊस में इंग्लैण्ड की महारानी की वर्षगांठ नृत्य और बाल डांस कर मनाई गई जिसका जिक्र एक फ्रांसीसी यात्री ने अपने संस्मरणों में कुछ इस प्रकार किया था–

'इस अवसर के अनुकूल प्रबन्ध किया गया। मुख्य भवन तक जाते पथ को दीपकों से आलोकित किया गया था और यह उजास वर्तुलाकार रास्ते में और लुभावना लगता था खासकर आस–पास के पौधों को निखारता हुआ। दूर से ऐसा प्रतीत होता था मानों सितारों के झुण्ड हरे आकाश में टिमटिमा रहे हों। इस अवसर पर संगीत अपना प्रभाव छोड़ता है। इस की स्वर–लहरियां पर्वतों की चोटियों को तरंगित करतीं चहुं ओर मुखरित हो रहीं थीं'।

सुश्री एडन यहां सात माह तक रही थी। उसने ऑकलैंड छोड़ते हुए लिखा था–

ऑकलैण्ड हॉऊस को बरबाद होते देखकर मुझे अत्यंत दुःख हो रहा है। हमने अपने जीवन के खूबसूरत सात माह खूबसूरती से यहां बिताए हैं जो कहीं भी भारत में इससे बढ़ियां तरीके से नहीं बिताए जा सकते थे जहां कोई चिंता नहीं कोई गर्मी नहीं और अगर हिमालय प्रिम रोज़ अथवा पेन्ज कॉमन का फैलाव इस सारे माहोल को मुखरित कर रहा होता तो मुझे सारा जीवन यहां बिताने में कोई हिचकिचाहट नहीं होती।'

यह सुश्री एडन का अपनी बहन को लिखा गया पत्र सन् 1866 में प्रकाशित हुआ जब कि सुश्री एडन 1860 ई0 में 72 वर्ष की आयु में अपनी इहलीला समाप्त कर जा चुकी थीं।

1838 ई0 में ऑकलैण्ड के साथ लगता भवन, 'सेक्रेटरी लॉज' को प्राईवेट तथा मिलीटेरी के कार्यालयों में बदल दिया गया। इनके साथ वेवर्ले तथा आकलेह् नामक भवनों को क्रमशः मिलीटरी विभाग तथा विदेशी मामलों के कार्यालयों को सौंप दिया गया।

सुश्री एडन ने 1839 ई0 में 'सैक्रेटरी लॉज' के बारे में लिखा था–

'यह भवन सहायकों को सौंप दिया गया था ताकि उनके खर्चे कुछ कम हों बावजूद इसके कि ऑकलैण्ड भवन

लार्ड ऑकलैंण्ड की अपनी जयदाद थी। भवन के बाहर पठार की ओर चढ़ती सीढ़ियों जैसी ढालान पर टेरेस बनाकर उन्हें फूलों से सजाया गया था। बाहर एक ओर नृत्य के लिए बैंण्ड बजाने की जगह निश्चित की गई थी। बाकी दिनों में ये कार्यक्रम निश्चित नहीं थे पर हर बुधवार को नृत्य होता था। 'सेकेटरी लॉज' एक तरह से सरकार का अघोषित सेकिटेरिएट बन चुका था।'

लॉर्ड ऑकलैंण्ड के बाद लॉर्ड एल्लेबोरोह् ने कार्य सम्भाला और अपना आवास ऑकलैंण्ड में ही रखा। जुलाई 1844 ई0 में सर हेनरी हार्डिंग ने वायसराय का ओहदा सम्भाला पर व्यस्तता के कारण वह 1946 ई0 तक शिमला नहीं आ सका। जब वह गर्मियों में शिमला आया तो 'ऑकलैंण्ड हॉऊस' में ही ठहरा। उसके बेटे विसकाउंट हार्डिंग ने अपने पिता के शिमला ठहरने के व्यौरे 'रूलर्स ऑव इण्डिया' में दिए हैं–

'यह छोटा सा बंगला था बर्फीली चोटियों को देखते हुए और बाद में निर्मित सरकारी बंगलें से बहुत लघु रूप रखता था। मैं अक्सर अपने पिता को इसके बरामदे में टहलते देखता था। उसके साथ उसके सहायक होते थे जो उसी तेजी के साथ उस डाक को पढ़ते हुए चलते थे जो लाहौर से आती थी।'

हार्डिंग ने मुश्किल से चार वर्षो तक राज्य किया था जब उसने अपने लिए छुट्टी चाही थी।

हार्डिंग के बाद लार्ड डलहौजी ने बागडोर सम्भाली लेकिन उसे ऑकलैंण्ड भवन पसन्द नहीं आया। उसने 'स्ट्राबेरी हिल्स' और कनेडी हाउस में अपना डेरा डाला। इस प्रकार लार्ड डलहौजी के आगमन के साथ ही ऑकलैंण्ड हॉउस का सरकारी हलकों में वर्चस्व खत्म हो गया और यह भवन तथ्रा जयदाद जैसे ऊपर कहा गया है– पहले फ्रेंच दम्पती और बाद में व्यवसाई मानसिकता रखने वाले ब्रिटिश अधिकारी के पास चली गई। अंततः वहां एक स्कूल बना।

वर्तमान स्कूल बहुत सुचारू रूप से चल रहा है और इसके प्रबन्ध को श्री जॉह्न देख रहे हैं और उनकी धर्म पत्नी,श्रीमती सुनीता जाह्न स्कूल की प्रिंसीपल हैं। दोनो ही बड़े तन मन से अपने कार्य में संलग्न हैं। और विद्यालय का स्तर उन्हों ने बनाए रखा है।

■■■

बिशॅप कॉट्टन स्कूल भवन

बिशॅप कॉट्टन स्कूल श्री कॉट्टन नाम के बिशॅप की देन है जो अपने समय के एक चर्चित विद्वान और शिक्षाविद थे। उनकी शिक्षा वेस्ट–मिनिस्टर स्कूल तथा कैम्ब्रेज के ट्रिनिटी कालेज जैसे संस्थानों में हुई थी और बाद में वह सहायक मास्टर बनकर प्रसिद्ध डॉ0 आरनोल्ड के सान्निध्य में कार्यरत हुए और उन्नति कर मार्लबोरो संस्थान का हैडमास्स्टर बने। बिशॅप कॉट्टन कलकत्ता में बिशॅप के रूप में 1858 ई0 में पधारे थे। चूंकि आधारभूत वह अध्यापक थे अतः यहां आते ही उनका ध्यान अंग्रेजी छात्रों की शिक्षा दीक्षा की ओर गया। 1857 के युद्ध के बाद जब अंग्रेज गिरजाघरों में थैंक्स गिविंग सेरीमॅनी' में भाग लेने जमा हुए तो वहां पर बिशॅप कॉट्टन ने एक प्रथम श्रेणी के स्कूल की स्थापना किसी पर्वतीय क्षेत्र में करने की बात रखी। तत्कालीन वॉयसराय लार्ड कैंनिंग के मन में ये विचार पैठ कर गए अतः उन्होंने बिशॅप कॉट्टन को हर तरह सम्भव सहयोग देने की बात कही।

जुलाई 8, 1859 के दिन कलकत्ता के कैथेडरल में बिशॅप स्कूल के लिए एक निश्चित फंड शुरू किया गया।16 मार्च, 1863 ई0 में यह स्कूल, बिशॅप के सक्रिय सहयोग से जतोग में पुरानी गोरखा छावनी में खोला गया जिसे गोरखा सेना ने उन दिनों खाली किया था। लेकिन बिशॅप कॉट्टन ने जो स्वप्न इस स्कूल का संजोया था वह अभी अधूरा ही था अतः वह निरन्तर नई जगह की तलाश में रहे। अंततः 26 सितम्बर, 1866 के रोज महामहिम वायसराय, सर जॉहन लारेंस ने नए स्कूल की नींव रखी। इस स्कूल का कोई औपचारिक नाम नहीं था। चूंकि इसके निर्माण में बिशॅप लगे थे अतः इसे बिशॅप स्कूल कहा जाता था। बाद में 1867 में एक दुर्घटना में बिशॅप की मृत्यु हो गई तो स्कूल का नाम उनके नाम के अनुसार बिशॅप कॉट्टन स्कूल रखा गया। मई 1905 ई0 में इस इमारत का काफी हिस्सा आग में भस्म हो गया फिर 1907 ई0 में इसका पुनः निर्मा'ण किया गया।

इस स्कूल के निर्माण के पीछे निर्माता का स्वप्न था कि इंगलैंण्ड के प्रसिद्ध विनचेस्टर, रुगबी तथा मार्लबोरोह् जैसे स्कूलों का स्थान यह पा सके। भारत भर में सर्वश्रेष्ठ स्कूल का दर्जा तो इसे मिला ही। और स्कूल के महत्व को देखते हुए अनेक वॉयसरायों ने यहां पर अपने दौरे किए। इनमें सर जॉहन लारेंस, लॉर्ड मिंटो, द' मारक्यिस ऑव कर्ज़न, लार्ड चेम्सफोर्ड तथा अर्ल ऑव रीडिंग प्रमुख थे।

1923 ई0 में स्कूल ने अपने सफलपूर्ण पचास वर्ष पूरे किए तथा स्वर्ण जयन्ती मनाई जब वॉयसराय तथा लेडी रीडिंग ने वहां पधार कर बच्चों को प्रोत्साहित किया और ईनाम तक्सीम किए। इस अवसर पर महामहिम ने अपने भाषण में कहा था–

आज यह स्कूल अपने निश्चित भवन तथा दूसरी सुविधाओं सहित स्थापित हो चुका है और एक महत्वपूर्ण स्कूल के रूप में अपना नाम दर्ज करवा चुका है। यह शिक्षा का आलोक स्तम्भ बन चुका है जिसमें युरोपीय, ऐंगलो–इंडियन तथा कुछ भारतीय छात्रों को शिक्षा लेने की सुविधा है।..........इस स्कूल के स्वप्नद्रष्टा, बिशॅप कॉट्टन का स्वप्न कि यह स्कूल कभी इंगलैंड के विनचैस्टर, रुगबी, और मार्लबोरोह् स्कूलों के समकक्ष खड़ा हो सकेगा आज पूरा हो गया है।' इसके साथ पवित्र ट्रिनिटी चैपल की इमारत 23 जुलाई, 1908 ई0 के दिन छात्रों के लिए खोल दी गई जिसमें छात्रों तथा स्टॉफ के आवास के इलावा एक प्रकोष्ठ मेहमानों के लिए भी रखा गया था। इस स्कूल के साथ जुड़े

हुए अन्यतम शिक्षाविद् हेडमास्टर के तौर पर कार्यरत रहे हैं। इनमें से रेवरेंड डॉ0स्लेटर–1863 से 1865 ई0, रे0डॉ0रांबिन्सॅन 1885 से 1886 ई0, रे0ई0ए0ईरॉस 1886 से 1901 ई0, रे0 एच0एम0 लियुस 1901 से 1919 ई0 तक रे0एफ0आर0गिल्लेस्पी 1919 से 1922 ई0 तथा रे0ओ0नील बाद में वर्षो हैडमास्टर रहे हैं।

सामान्यतः ये सभी हैडमास्टर, अथच सहायक मास्टर भी इंगलैण्ड से यहां आते थे। अकैडेमिक शिक्षा–दीक्षा के इलावा छात्रों को एन0सी0सी0, स्काउटशिप, क्रिकेट, हॉकी, फुटबाल आदि में भी शिक्षा दी जाती थी। इनके इलावा जिमनास्टिक, बॉक्सिंग तथ्रा दूसरी शारीरिक स्पर्धाओं के लिए छात्रों को ट्रेनिंग दी जाती थी।

■■■

सेंट बीड्स कालेज

शिमला में मिशनरी संस्थानों ने शिक्षा जगत में अभूतपूर्व योगदान दिया है। यद्यपि जितने भी शिक्षण संस्थान इन लोगों ने खोले, शुरू शुरू में केवल अंग्रेजों के बच्चों के लिए ही थे। भारतीय बच्चे इनमें पढ़ने से महरूम थे लेकिन कालान्तर में ऊंचे वर्ग के लोगों के लिए अपने बच्चों को इन संस्थानों में पढ़ाने की होड़ लग गई–एक संघर्ष सा छिड़ गया फलतः कुछ सीमा तक भारतीय बच्चे भी प्रवेश पाने लगे। यह तभी होता था जब अंग्रेज बच्चों के प्रवेश के बाद यदि कुछ सीटें रह जातीं तो पहले ऐंग्लों इण्डियन समाज के बच्चों को प्रवेश दिया जाता बाद में दूसरे बच्चों का नम्बर आता था–ऑकलैण्ड, बिशॅप काट्टन स्कूल और सेंट बीड्स कालेज इसके उदाहरण हैं।

सेंट बीड्स का संस्थान वस्तुतः शिक्षण संस्थान समूह का एक हिस्सा था। जीजस एण्ड मेरी की भिक्षुणियों के लिए छोटे चेलिसिया में एक मण्डप बनाया गया था जहां पहले से ही सेंट फ्रेंसिस का सैनिक अनाथालय, सेंट अलायसियस हाई स्कूल और सेंट बीड्स ट्रेनिंग कालेज था। यहीं पर 'नोविसिएट हाऊस ऑव कन्ग्रिगेशन फॉर इण्डिया' का मण्डप और हाल भी स्थित था। यद्यपि भिक्षुणियों का आगमन भारत में लगभग 1842 ई0में हो चुका था तथापि उनके लिए 'कान्वेंट' की स्थापना 1864 ई0 में की गई। लोरेटो की भिक्षुणियों के लिए तारा हाल में 1895 में एक स्कूल विकसित हो चुका था।

वस्तुतः इन स्कूलों में पढ़ाने के लिए अनुभवी और प्रशिक्षित अध्यापिकाओं की आवश्यकता थी। जिसे बड़ी शिद्दत के साथ मदर सेंट क्लेयर ने महसूस किया। वह महिला शिक्षा के लिए जी जान से जुटी थी। अतः न केवल उसने शिक्षिकाओं को प्रशिक्षित करने के लिए एक प्रशिक्षण संस्थान खोला अथच स्कूल की शिक्षा पूरा करने के बाद यदि लड़कियां आगे पढ़ना चाहें तो उनके लिए कालेज की पढ़ाई शुरु की। इसके लिए 'अंडर ग्रेजुएट' की क्लासें शुरु कीं गई।यद्यपि प्रशिक्षण संस्थान 1864 ई0 से शुरु हो चुका था और देश के उत्तर–पूर्व इलाके के संस्थानों के लिए अनेक प्रशिक्षित शिक्षक तैयार होने शुरु हो गए थे और यह संस्थान अति सफल सिद्ध हुआ था कि अनेक दूर दराज के इलाकों से यहां प्रशिक्षण पाने के लिए भिक्षुणियों और अन्य अध्यापिकाओं को विभिन्न संस्थान भेज रहे थे। इस संस्थान ने अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया था तथापि महिला कालेज का प्रारम्भ, इसी परिसर में, और भवनों का निर्माण कर 1904 में हुआ। ट्रेनिंग सैंटर की अभूतपूर्व सफलता के साथ अब महिला कालेज की भी उन्नति दिन प्रति दिन होने लगी।

चूंकि उन दिनों उत्तरी भारत में मात्र यही एक महिला कालेज था अतः प्रवेश पाने के लिए एक होड़ सी लग गई थी। पर उन दिनों इस कालेज में प्रवेश मात्र अंग्रेज अहलकारों की लड़कियों या दूसरे यूरोपियन अहलकारों की महिलाओं तक ही सीमित था। पर इस सीमा को स्वतंत्रता के बाद कालेज के प्रशासन को तोड़ना पड़ा चुनाचे भारतीय महिलायें भी इसमें शिक्षा पाने लगीं। यद्यपि शुरू शुरू में यह प्रशिक्षण संस्थान स्वतंत्र था, अपनी तरह का एक ही संस्थान अतः किसी विश्वविद्यालय अथवा संस्थान के साथ संबद्ध नहीं था पर जब महिला कालेज 1904 ई0 में शुरू किया गया तो संस्थान को पंजाब विश्वविद्यालय, लाहौर के साथ संबद्ध करना पड़ा। कालेज की अकैडमिक शिक्षा के साथ धीरे धीरे अनेक अन्डरग्रेजुएट कोर्स भी शुरू किए गए और यदि कोई महिला प्राईवेट तौर पर परीक्षा में भाग लेना चाहती तो यह सुविधा भी यह कालेज प्रदान करता था। धीरे धीरे यह महिला कालेज उत्तर भारत के सर्वश्रेष्ठ कालेज के तौर पर उभर कर सामने आया।

इस बीच, 1967 के वर्ष जीजस एण्ड मैरी संस्थान ने दिल्ली को उपयुक्त मान कर वहां एक महिला

कालेज इसी नाम से आरम्भ किया। उद्देश्य यही था कि शिमला से इस कालेज को दिल्ली शिफ्ट कर दिया जाए। चुनाचे शिमला में आगे के लिए प्रवेश बंद कर दिया गया और जो दिल्ली की छात्रायें यहां पढने आतीं थीं उन्हें दिल्ली के कालेज में प्रवेश पाने की छूट दे दी गई। यह लगभग तय था कि शिमला में महिला कालेज बंद कर दिया जाएगा चुनाचे स्थानीय अभिभावकों ने खूब भाग दौड़ की पर संस्थान के लिए उनका संघर्ष कोई महत्व नहीं रखता था चुनाचे तत्कालीन मुख्यमंत्री डॉ0 वाई0 एस0 परमार से प्रार्थना की गई। उनके व्यक्तिगत हस्ताक्षेप से यह स्थानांतरण रुक गया। तब से यह कालेज दिन प्रतिदिन उन्नति की ओर अग्रसर होता ही गया। शैक्षणिक तौर पर तो इसकी लड़कियों ने अनेक आयाम तय तो किए ही, खेलों में तथा दूसरे क्षेत्रों में भी अपना वर्चस्व स्थापित किया है। अनेक नाम इस ओर गिनाए जा सकते हैं। अभिनेत्री प्रिती जिंटा, शिक्षाविद् भुवन चंदेल तथा सतवंत अटवाल, पूर्णिमा चौहान आदि अनेंक नाम हैं जिन्होंने इस संस्थान का नाम अपने अपने क्षेत्र में रोशन किया है।

इस संस्थान की सब से बड़ी खूबी यह है कि कभी यह राजनैतिक अखाड़ा नहीं बना है। प्रिंसीपल मेलबा रोड्रिग के अनुसार कालेज का वातावरण हमेशा ही शुद्ध रहा है बिना किसी लाग–लपेट के। कालेज में लीडरशिप की विशेषता विकसित करने के लिए चुनाव होते हैं और एडमिरल और कैप्टेनशिप के लिए प्रतिस्पर्धायें भी रहतीं हैं। पर किसी भी राजनैतिक हस्ताक्षेप को यहां पनपने नहीं दिया गया है। यही कारण है कि यहां कभी किसी किस्म की स्ट्राईक अथवा आंदोलन नहीं होता। शुद्ध सांस्कृतिक विरासत में मिली शिक्षा पाकर लड़कियों का चहुमुखी विकास किया जाता है। सांस्कृतिक कार्यक्रमों, वाद–विवाद प्रतियोगिताओं और नाटकों आदि में लड़कियां बढ़–चढ़ कर भाग लेतीं हैं।

कालेज ने अभी हाल में ही अपना शताब्दी समारोह पांच दिवसीय सांस्कृतिक कार्यक्रमों के साथ 27 सितम्बर से एक सामूहिक आयोजन कर मनाया जो एक अक्तूबर 2003 को सम्पन्न हुआ।
इस संस्थान द्वारा शताब्दी सफलतापूर्ण सम्पूर्ण करने पर International Fedration of Catholic Universities, Paris ने इस संस्थान को एक्सेलेसिया कोर्डे (Ecclesia Corde) का खिताब दिया गया।
एक स्मारिका मार्च 2004 ई0 में प्रकाशित की गई। और इस कालेज को लेकर स्मृति टिकट भी चलाई जाए इसका भी प्रयास है।

■■■

बार्न'स कोर्ट

यद्यपि शिमला में अनेक ऐसी इमारतें हैं जो परंपरागत स्थापत्य का नमूना कही जा सकती हैं पर सबसे अद्भुत एक इमारत ऐसी है जो अपने में डेढ़ सौ वर्ष का इतिहास सभाए है। यह इमारत है राजभवन। लगभग डेढ़ शताब्दी पहले इसका निर्माण हुआ था। यद्यपि यह भवन वर्षों पहले वजूद में आया था पर इसका नामकरन ब्रिटिश इण्डिया में तीसरे आर्मी चीफ ले. जनरल सर एडवर्ड बर्ने के नाम से रखा गया था। यह उनका सरकारी कार्यालय तथा आवास था।

यद्यपि इस भवन का नामकरन 10 जनवरी, 1832 ई. में हुआ था जब सर एडवर्ड बर्ने ने इसे अपना कार्यालय और आवास बनाया था पर इसका निर्माण दो वर्ष पहले तब शुरू हो चुका था जब प्रथम जनवरी 1830 ई0 में डॉ. जे. लुधलो को 200 वर्ग गज रकबा 40 रुपये प्रति वर्ष के लगान देने की शर्त पर कैप्टेन सी.जे.कनेडी जो कि देहली में ब्रिटिश इण्डिया के राजनीतिक एजेन्ट का मुख्य सहायक था, ने दिया था। इस रकबे में एक भवन आगे ही बना हुआ था जो आगे चल कर इस बड़े भवन कम्पलेक्स का केन्द्र बना था। इस बीच उस मात्र एक छोटे भवन के आस–पास लॉन, भवन तथा लैंडस्केप विकसित किए जाने लगे थे।

इसी दौरान इस रकबे के साथ लगती जमीन का पचास वर्ग गज का एक टुकड़ा अडजूटैन्ट जनरल के कार्यालय में रत मैक डरमॅट्ट को इस शर्त पर दे दिया गया कि उसे 10 रुपये लगान के तौर पर प्रति वर्ष देना होगा। बाद में, जमीन के इस टुकड़े को भी सर एडवर्ड बर्ने ने अपने रकबे के साथ मिला लिया था। सन् 1832 ई. में इस रकबे के साथ लगता चट्टानी और सीधी भीत्तियों से लैस जमीन का एक खुला टुकडा भी अपने रकबे के साथ मिला लिया जिसके एवज में चालीस रुपये जमीन का और टैक्स देना मंजूर हुआ। इस प्रकार इस सारी ज़मीन और बीच में बने भवन का वार्षिक किराया या टैक्स 40 जमा 40 जमा दस अर्थात 90 रुपये सन् 1932 ई. में था। कालान्तर में सर एडवर्ड बर्ने ने 14000/– रुपये देकर इस जमीन के हकूक तथा इसे अपना नाम देने का अधिकार प्राप्त कर लिया था।

बाद में इस जयदाद की मलकीयत मेजर एस. बी. गोद की झोली में आन पडी। पर यह कब हुआ और मेजर गोद ने इसे कितने में खरीदा, इसके बारे में दस्तावेज चुप हैं हां मेजर गोद ने इसे 15 मेई, 1875 ई. में मेजर जनरल सर पीटर लम्सडेन, जो उन दिनों क्वाटर मास्टर जनरल थे, को 23000/– रुपये में बेच दी। इस बिक्री की तसदीक सरकार ने अपने पत्रांक 1081 दिनांक 23 जून सन् 1878 ई. द्वारा की थी। मेजर जनरल सर पीटर लम्सडन ने इसे पंजाब सरकार को 21 मेई 1879 ई. में 50360/–रुपये में बेच दिया था–उस समय इसकी खरीद पर पंजाब सरकार के अहलकारों ने इस का वृतांत इस तरह लिखा था–

'बार्न'स कोर्ट आधी एक माला और आधी दो माला इमारत है जिसका मुख पश्चिम दक्षिण में है। इसका प्रमुख प्रवेश द्वार पश्चिम दिशा की ओर है। इस भवन का इस तरह निर्माण किया गया है कि तीन दिशाओं, अर्थात पश्चिम, दक्षिण तथा पूर्व दिशा से विहंगम दृश्यावलियां देखने को मिलती हैं। इस भवन कम्पलेक्स में मुख्य इजाफा एक दोमाला भवन के निर्माण के साथ किया गया था जिसका निर्माण लेफटीनेंट गर्वनर सर सी.यू. एटकिसॅन के समय किया गया था। नीचे के माले में बालरूम तथा ऊपर के माले पर कार्यालय के कमरे हैं जो लेफटीनेंट गवर्नर तथा उसके सचिव के कार्य के लिए हैं। बाल रूम को मनोरम पूर्वी मूरजातीय कलात्मक तस्वीरों से सज्जित किया गया है। इस कार्य को मेहनत और लग्न से लाहौर के मेयो स्कूल ऑव आर्ट्स' के प्रिंसीपल श्री लाकवूड किपलिंग की देखरेख में सरअंजाम दिया गया।'

आज भी थोड़े बहुत परिवर्तन के साथ, वैसी ही स्थिति है। अब बाल रूम को सेरीमोनियल हाल में बदल दिया गया है। अक्सर राज्यपाल द्वारा 'ऐट होम' दिए जाने के समय यह हाल पूरी तरह जीवंत हो जाता है। हाल की भीत्तियों को सुरुचिपूर्ण सजाया गया है। मंच की पूर्व दिशा की भीत्ति जो कि ऊपर के माले की ओर जाती हुई सीढ़ियों के ठीक नीचे स्थित है,को ब्रिटिश राज्यकाल की वृहद् तस्वीरों से सजाया गया है। मंच पर लाल कारपेट पर तीन सेरीमोनियल कुर्सियां सजी हैं–बीच वाली स्वर्ण–मण्डित सिंहासन की तरह है और इसके दोनों ओर मीनाकारी से सज्जित कुर्सियां हैं। हमें बताया गया कि अनुष्ठानों, विशेष पर्वों पर राजकीय दिवसों में इन सज्जित कुर्सियों पर राज्यपाल मुख्य कुर्सी पर और दोनों ओर की कुर्सियों में एक पर मुख्यमंत्री और दूसरी पर कोई प्रतिष्ठित अतिथि या उच्च न्यायालय का मुख्यधीश विराजमान होते हैं।

सामने की भीत्तियो को पारम्परिक तुरुहियों, अलंकृत कांसे की प्लेटों से सज्जित किया गया है–उसके साथ की भीत्ति जो अलमारीनुमा ग्वाक्ष के ऊपर स्थित है, को गोलाकार में खड़गों से सजाया गया है जिनके बीच में ढाल किसी सितारे की तरह चमक रही है इसी प्रकार इस हाल के चहुं ओर की भीत्तियों पर एक–दूसरे को क्रास करती तलवारें और बीच में ढाल को सजाया गया है।

पूरे हाल में फर्शी सुर्ख रंग की कारपेट बिछी है जो हाल के साथ लगे दो गैलरीनुमा कमरों के फर्श पर बिछी कारपेट से मेल खाती है। मंच पर खड़े होकर हाल की ओर देखें तो दाईं ओर तो दो खुली गैलरीनुमा बैठकें हैं जहां पार्टी या प्रीतिभोज के समय बैठकर गप–शप करने और सुरा की चुस्की लेने का आनन्द उठाया जाता था। इन कक्षों में सुर्ख रंग की फर्शी कारपेट पर सुन्दर सोफे सज्जित हैं। दोनों कक्षों में 'फायर प्लेस' बने हैं जो सर्दियों के दिनों में भीतर के तापमान को बनाए रखते थे। तो बाईं ओर एक गलियारा हाल को घेरे इन कक्षों तक चला गया है जिसकी खिड़कियां दक्षिण और पश्चिम दिशाओं की ओर खुलती हैं। इस गलियारे में चहूं ओर कुर्सियां फैली हैं। इन कुर्सियों को पार्टियों के समय या 'एटहोम' के समय सजा दिया जाता है ताकि आमंत्रित अतिथियों को बैठने के लिए जगह मुहैया करवाई जाए। वस्तुतः राजभवन का यह वृहद् कक्ष 'सेरीमोनियल हॉल' के तौर पर जाना जाता है। जब कोई राजकीय कार्यक्रम होता है तो यह मुखर हो उठता है–राजसी जलूस ऊपर के माले से सीढ़ियों द्वारा नीचे जब आता है तो देखने योग्य होता है।

इसी हाल के साथ लगा एक अन्य बड़ा प्रकोष्ठ है जिसे 'सम्मिट हॉल' के नाम से जाना जाता है। इस हाल में सन् 1972 ई. में चर्चित 'इण्डो–पाक' समझौता हुआ था जो 'शिमला पैक्ट' के नाम से विख्यात है। वह मेज तथा कुर्सियां जिनपर बैठ कर इस समझौते को सर अंजाम दिया गया था आज भी उसी प्रकार सज्जित हैं। श्रीमती इन्दिरा गान्धी और पाकिस्तान के प्रधानमंत्री श्री भुट्टो के बीच द्विपक्षीय इस ऐतिहासिक समझौते का यह प्रकोष्ठ मूक साक्षी रहा है।

'इसकी भीत्तियों पर ऐतिहासिक चित्र सज्जित हैं जिनमें देश के शीर्षस्थ राजनीतिक नेता विभिन्न अवसरों पर कार्यरत दर्शाये गए हैं। 'शिमला पैक्ट' वाले मेज के पीछे की काष्ठ भीत्ति पर श्रीमती इन्दिरा गान्ध ी की मुसकराती हुई बड़ी तस्वीर लगी है जिसके नीचे कांस्य प्लेट पर इस ऐतिहासिक समझौते की बात उकेरी गई है। इसी प्रकार इस कलात्मक मेज पर भी दो मण्डित तस्वीरें फ्रेमों के साथ उन क्षणों को दर्शाती रखी गई हैं। इस सारे प्रकोष्ठ की भीत्तियों को काष्ठ फलकों से सज्जित किया गया है जिनपर ऐतिहासिक चित्र सज्जित हैं। दाईं ओर की भीत्ति पर सरदार पटेल, गान्धी जी तथा बा की तस्वीर है तो उसके साथ बीच में यात्रारत गान्धी जी की तस्वीर है।

'आगे किसी इमारत की तस्वीर है तो संगमरमर के दीवार के साथ लगे एक मेजनुमा मंच पर एक

कांस्यकुम्भ पर वृहद् मण्डित गोलाकार शीशे के दोनों ओर दो तस्वीरें सज्जित हैं—एक तस्वीर में श्री भुट्टो, श्रीमती इन्दिरागान्धी और बेनजीर भुट्टो की कुर्सियों पर विराजमान तस्वीरें हैं। इसी प्रकार एक अन्य संगमरमरी कार्निश पर श्रीमती इन्दिरा गान्धी और श्री भुट्टो की खड़े आकार में तस्वीर है बीच में वैसा की देखने का शीशा है और दूसरी साईड में एक अन्य ऐतिहासिक तस्वीर सज्जित है। एक अन्य तस्वीर में श्री भुट्टो, श्रीमती इन्दिरा गान्धी और पीछे सरदार स्वर्णसिंह की तस्वीर सज्जित है। एक अन्य तस्वीर में गान्धी जी को किसी अंग्रेज अधिकारी के साथ दर्शाया गया है। इसी प्रकार दूसरी भीत्तियों पर अनेक ऐतिहासिक चित्र सज्जित हैं। हाल के ठीक बीच में एक कलात्मक मेज पर अनेक 'डेकोरेटिव' वस्तुएं सजा कर करीने से रखीं गईं हैं। पूर्व की ओर खुलने वालीं खिड़कियां इस प्रकोष्ठ को उजास से भर देतीं हैं जिन्हें बंद कर इस प्रकोष्ठ को बाहर की दुनिया से काटा जा सकता है। भीत्तियों के साथ सोफासेट सज्जित हैं जिनके सामने कलात्मक मेज रखे हैं—छोटी छोटी फर्शी कारपेट्स पर। इस प्रकोष्ठ को 'कीर्तिकक्ष' की संज्ञा दी गई है।

कीर्तिकक्ष के साथ लगता एक अन्य कक्ष है जिसमें बिलियर्ड टेबल लगा है। इसी कक्ष में एक भीत्ति पर एक चित्र में श्री राजगोपालाचार्य को बिलियर्ड खेलते दर्शाया गया है। जब वे भारत के प्रथम गर्वनर जनरल बने तो शिमला आये थे। यह चित्र उसी समय का है।

एक और सज्जित बैठक—'सिटिंग रूम' कहलाती थी जो अब आदित्य हो आई है। जहां अक्सर लेफटीनेट गर्वनर अपने अतिथियों तथा दूसरे महत्वपूर्ण व्यक्तियों के साथ बैठक करते थे। यह प्रकोष्ठ अभी तक वैसे ही सज्जित है। पश्चिम की ओर लगी खिड़कियों से रौशनी भीतर ढुक कर छब्बों में फैल जाती है और प्रकोष्ठ उजास से भर मुखर हो आता है। चहुं ओर दीवारों के साथ लगे सोफों पर कर्शन करीने से सजाकर रखे गए हैं। एक कारपेट तो सारे फर्श को ढके है तो छोटी सुर्ख रंग की फूल—पत्तियों से कढ़ी कारपेट पर केन्द्रीय मेज सजा है। आदित्य के साथ लगते एक प्रकोष्ठ में अति कलात्मक नीले रंग की कुर्सियां जिनके फ्रेम सुनहरी रंग के हैं, नीले रंग की फर्शी कारपेट पर सजी हैं। ठीक बीच में एक अन्य छोटी कारपेट पर एक मेज रखा है। हमें बताया गया कि ये सेरीमोनियल कुर्सियां हैं जिन्हें राजसी समारोहों में बाहर सेरीमोनियल हॉल में लाया जाता है।

फिर वापिस आकर कीर्ति कक्ष के साथ लगे बांई ओर एक अन्य हाल में हम ढुकते हैं जिसमें पर्शियन कारपेट आद्योपान्त फर्श को ढके हैं जिस पर बीच में एक लम्बा मेज सज्जित है जिसके दोनों ओर कुर्सियां सज्जित हैं। यह 'डायनिंग हॉल' है जहां एक वक्त में चालीस—पचास लोगों के खाने का प्रबन्ध रहता है। इस हाल के साथ आगे किचन तथा काम करने वालों के प्रकोष्ठ तथा क्रॉकरी आदि के लिए बड़ी बड़ी अलमारियां हैं। इसे मधुरिमा की संज्ञा दी गई है।

एक साईड प्रकोष्ठ में कलात्मक फुलकारी वाली कारपेट पर उसी रंग तथा फूलों से सज्जित कलात्मक सोफा सज्जित है जिसके पास एक पुराना रेडियो सेट पड़ा है। ऊपर भीत्ति पर लेफटीनेंट जनरल सर एडवर्ड बर्ने की तलवार हाथ में पकड़े आदमकद तस्वीर सज्जित है।

ऊपर के माले में लेफटीनेट गर्वनर तथा उनके सचिव की रिहायशगाह तथा कार्यालय के प्रकोष्ठ रहे हैं जिन्हें अब अति महत्वपूर्ण अतिथियों के लिए अति विशिष्ट अतिथि कक्षों में बदल दिया गया है और इन्हें विभिन्न नाम दिए गए हैं—मोनाल, किन्नर कैलाश, महापुष्प आदि। अन्य अतिथि—कक्ष तुशार, जाखू आदि है। जाखू वस्तुतः राजभवन के कर्मियों के लिए है। दूसरे अतिथि कक्षों के नाम कमशः अनामिका, कामना तथा तारा हैं।

राजपाल का प्राईवेट आवास भी एक ओर इसी माले पर स्थित है। बाहर झूले सहित और प्राकृतिक

काष्ठमेजों से सज्जित हवाघर है। कभी यहां लेफटीनेंट गर्वनर के परिवार के सदस्य या अति महत्वपूर्ण अतिथि चाय, कॉफी, बीयर आदि का आनन्द उठाते हुए पर्वतीय श्रृंखलाओं के विहंगम दृश्यों का लुत्फ उठाते थे।राजपाल का कार्यालय और आवास होने से आज भी यह उसी आन–शान का प्रतीक है जैसे दशकों पहले ब्रिटिश इण्डिया के समय हुआ करता था।

राज भवन का अपना स्टाफ,देख रेख करने के लिए मुख्य अफसर हैं जो इसके साथ अनेक दशकों से जुड़े हैं और इसका इतिहास जानते हैं।

राजभवन–बार्न'स कोर्ट काम्पलेक्स का मुख्य भवन विशुद्ध पाश्चात्य शैली का, विशेषकर इंगलैण्ड में निर्मित 'कॉस्ल' का प्रतिरूप कहा जा सकता है। वृहद् प्रकोष्ठ, खुले गलियारे और ढालुआं छतें तथा पार्श्व में 'टावर' जैसे शिखर इसे पाश्चात्य स्थापत्य का नमूना बना देते है।

■■■

पीटरहॉफ

पीटरहॉफ आकाशवाणी केन्द्र से थोड़ा ऊपर एक पठार पर स्थित है। इस भवन को यह गौरव प्राप्त है कि यह ब्रिटिश इण्डिया के पहले कुछेक वॉयसरायों का निवास स्थान लगभग 26 वर्ष तक रहा है। प्रथम वॉयसराय अर्ल ऑव एल्गिन थे जो 12 मार्च 1862 ई0 से 20 नवम्बर 1863 ई0 तक यहां रहे थे। बाद में सर जे0 लारेंस, अर्ल ऑव मेयो, लार्ड नार्थब्रुक, लार्ड लिट्‌टॅन, मारक्सि ऑव रिपॅन तथा अर्ल ऑव डफरिन आदि वॉयसरायो ने यहां पर अपना निवास स्थान बनाया था। बाद में वॉयसरीगल लॉज, राष्ट्पति निवास जहां अभी उच्च अध्ययन केन्द्र है को वॉयसराय अर्ल ऑव डफरिन ने 10.12.1888 को अपना निवास स्थान बनाया। पीटरहॉफ जनरल इन्ने की मलकीयत था। उन्होंने बाद में सिरमौर के राजा को बेच दिया था। सिरमौर के राजा शमशेर प्रकाश 1856 ई0 से1998 ई0 ने इसे अनेक वर्षो तक अपने पास रखा था लेकिन 1880 ई0 में ब्रिटिश सरकार ने इसे खरीद लिया था।

यह एक दिलचस्प बात है जिसे बहुत कम लोग जानते हैं कि शिमला की पहली स्थानीय सिमेटरी इस स्थान पर थी। यहां एक पुराना कबरिस्तान था। लार्ड लिट्‌टन और लार्ड रिपॅन के अनेक कर्मी टायफायड से ग्रसित थे– इसका कारण शायद यही रहा था।यद्यपि पीटरहॉफ वॉयसराय निवास तथा ब्रिटिश इण्डिया का गर्मियों का कार्यालय रहा है पर इसे कभी भी वॉयसराय अथवा उनके परिवार जनों, विशेषकर उनकी मलिकाओं ने इसे पसंद नहीं किया था। इस ओर हमें अनेक संकेत इतिहास तथा वैयक्तिक संस्मरणों में से मिलते हैं।

लार्ड लिट्‌टन तथा लेडी लिट्‌टन पहली वॉयसराय दम्पत्ति थी जिसने पीटरहॉफ से निकलकर एक खुले, विशाल निवास की कल्पना की थी। लार्ड लिट्‌टन ने तो वॉयसरीगल लॉज के लिए 'अबज़रवेटरी हिल्' का 1876 ई0 में चयन कर लिया था। लेडी लिट्‌टन की डायरी में 28 अगस्त, 1876 ई0 का लिखित संदर्भ इस ओर संकेत करता है। जहां तक कि लेडी लिट्‌टन अनेक बार राजा दरबंगा के भवन स्नोडॅन में रहने चली जाती थी, विशेषता जब लार्ड शिमला में नहीं होते थे।

जून 7, 1880 ई0 के एक संस्मरण में लेडी लिट्‌टन ने लिखा है– 'सभी बच्चों ने पीटर हॉफ छोड़ दिया था। लड़कियां घुड़सवारी कर और बाकियों ने टांगे का उपयोग किया था। रात्रि खाने के लिए एक शमियाना लगाया गया था जब लॉर्ड बर्सफोर्ड भी अम्बाला से वापिस आ गए थे लार्ड रिपॅन को छोड़कर।

............लार्ड रिपॅन पांच बजे पहुंचे थे............आज रात्रि एक बड़ा खाना था अतः शमियाना बड़ा लगाना पड़ा।' तब तक लार्ड रिपॅन नए वायसराय चुन लिए गए थे और लार्ड लिट्‌टन ने उनका पीटर हॉफ में स्वागत किया था। तोपों की सलामी दी गई और गार्ड ऑव ऑनर दिया गया। और लार्ड लिट्‌टन स्नोडॅन में रहने के लिए चले गए थे। बाद में लेडी लिट्‌टन ने अपने घर से जुलाई 1935 में लिखा था........

'लड़कियां तथा सेवा करने वालियां नीचे पहाडी की तलहटी में एक बंगलें में रहती थीं जब तक कि उस भवन में परिवर्तन नहीं किए गए तब उन्हें इस भवन के पिछवाड़े में एक कमरा रहने के लिए दिया गया। वहां उस पहाडी पर और कुछ नहीं बन सकता था।'

लार्ड रिपॅन के लिए काम की व्यस्तता के कारण चर्च में सर्विस के लिए जाना मुश्किल था अतः उन्होंने ऊपरली मंजिल का पीटर हॉफ का एक प्रकोष्ठ चैपेल में बदल दिया था ताकि वह निरंतर प्रेयर कर सकें। लॉर्ड रिपॅन नए निवास के लिए उत्सुक नहीं थे। जब इंजीनियरों ने बताया कि यह इमारत सुरक्षित नहीं है तो उन्होंने हंसते हुए कहा था कि 'मुझे लगता है मेरे राज्यकाल के दौरान तक यह सुरक्षित रहेगी।'

लार्ड रिपॅन का कार्यकाल लगभग चार वर्ष रहा था। उनके बाद लॉर्ड डफरिन, एक आयरिश लॉर्ड ने शासन सम्भाला। इस भवन के बारे में लेडी डफरिन ने बहुत निराश होकर लिखा है– 21 अप्रैल 1885 ई0 में–

'घर क्या यह एक कॉटेज है, हर उस परिवार के लिए निवास स्थान हो सकता है जो केवल यहां रहना चाहे। कार्यालयी प्रक्रिया के लिए यह कदापि उचित नहीं है। हां रहने के लिए हमारे लिए ठीक था पर जब हम वॉयसराय के रूप में सोचते हैं यह भवन बिल्कुल ही उचित नहीं था। मैं तो समझती हूं कि यह एक अजीब किस्म की इमारत थी। पिछवाड़े में मात्र एक गज खाली जगह थी जब आप नीचे गिरने से अपने को बचा सकते थे. ....सहायकों को हर रोज साहसिक यात्रा करनी पड़ती थी कि वे रात्रि भोज के लिए शामिल हो सकें। चलना, घुड़सवारी करना और घोड़ा गाड़ी चलानी आदि एक बहुत बड़ा रिस्क था......शिमला आने पर मेरे मन में तीन बातें आतीं हैं–पहले तो मुझे इस स्थान पर आना ही नहीं चाहिए था, दूसरे मैं ऐसे छोटे घर में कभी रही ही नहीं और तीसरे मैंने ऐसा तंग स्थान नहीं देखा जो दरवाजों के बाहर भी तंगी रखता हो– मुझे डर है कि यह विचार मेरी आत्मा में न कहीं घुस जाए।'

दो साल के बाद जॉहन राय ने अपनी कृति 'हेलन ट्रेवेलयान' में पीटरहॉफ को 'एक छोटा असुविधाजनक सरकारी आवास' की संज्ञा दी थी।

यद्यपि हर वॉयसराय ने पीटरहॉफ को असुविधाजनक बताया था तथापि पैसे के अभाव में नई इमारत खड़ी करने की बात किसी के मन में नहीं आई। लेकिन लॉर्ड डफरिन अपनी पत्नी के प्रति बहुत संवेदनशील था। उसने यह निश्चय कर लिया था कि किसी भी सूरत में वह नई इमारत बनाएगा।

इस ओर लेडी डफरिन ने अपनी डायरी में संकेत किए हैं–

'डी तथा मैंने अबजरवेटरी हिल का वह स्थान देखा जिसे नए भवन के लिए लॉर्ड लिट्टन ने चुना था। कलकत्ता में हमें कहा गया था कि हम अपने पुराने आवास में कुछ परिवर्तन कर उसे ठीक–ठाक कर लें। लेकिन जब हमने यहां आकर पीटर हॉफ को देखा तो लगा कि यह सम्भव नहीं है। लेकिन जब हमने नए भवन की जगह देखी तो हमें लगा कि यह ठीक है। सामने विहंगम दृश्य था और काफी खाली जगह थी जिस पर निर्माण किया जा सकता था।'

लॉर्ड डफरिन ने स्वयं भवन निर्माण की योजना बनाई थी और पूरी तरह से इस नए भवन के निर्माण के प्रति वे प्रतिबद्ध थे। वह हर शाम को प्रगति की समीक्षा करने वहां पहुंच जाते थे। जो तत्कालीन निर्माता सर थिएडोरे होप की चिंता का वायस था। अनेक बार तुरंत परिवर्तन करने पड़ते पर बजट में कोई इजाफा नहीं किया जाता था।

लेडी डफरिन ने 28 मई 1885 में लिखा–

'रात्रि भोज़ और पार्टी के लिए हमें वस्तुतः शमियाने का प्रबन्ध करना पड़ा जिसमें लगभग एक सौ लोग आ सकते थे.......नृत्य दो कमरों में निश्चित किया गया था लेकिन बदकिस्मत से एक का फर्श ठीक नहीं था अतः एक ही कमरे तक हमें सीमित रहना पड़ा।'

जुलाई 15, 1887 में लेडी डफरिन ने अपनी डायरी में लिखा डी ने हरमी और मुझे बाद दोपहर को अपने साथ नया घर दिखाने के लिए ले लिया। दृश्य बड़ा दिलचस्प था। कार्य करने वाले विशेषकर महिलायें अपने वस्त्रों तथा मिट्टी के बर्तनो को अपने सिरों पर उठाए कार्य में रत थीं। शिल्पि अपने काम में व्यस्त थे। मुझे लगा कि हमारा निवास अच्छा बनेगा। वह छोटी काटेज जिसमें हमें सिकुड़ कर रहना पड़ता है और लड़कियां तथा उनकी देखभाल करने वाली नौकरानियों को एक ही कमरे में सोना पड़ता था........अतः मैं यह लोभ संवरन

नहीं कर सकी कि देखूं ऐसी दिक्कत यहां तो नहीं होगी।......मैंने देखा कि हमारा नया निवास स्थान अच्छा होगा और काफी खुला भी होगा।'

18 अगस्त 1887 ई0 में पीटरहॉफ में लॉर्ड डफरिन ने तीन फ्रांसीसी पर्यटकों को दुपहर के खाने पर बुलाया। इन्होंने मध्य एशिया को पार कर भारत आने का दुस्साहस किया था। पर उन्हें अपने निवास स्थान पर बुलाकर वॉयसराय दम्पत्ति खुश नहीं हुए अपितु कुण्ठित हो रहे थे।

अन्ततः 23 जुलाई, 1888 ई0 को डफरिन परिवार ने पीटरहॉफ के संकुचित वातावरण को त्यागकर नए निवास स्थान को अपनाया और चैन की सांस ली। लेडी डफरिन इस़ दिन के बारे में लिखती है–

'मैंने नाश्ते के बाद आज पीटर हॉफ के भवन को छोड़ दिया केवल लंच करने के लिए मात्र आधे घण्टे के लिए वहां गई थी। सारा दिन मैं अपने कमरों और ड्रांइग रूम को संवारने में लगी रही। डी0 तथा लड़कियां रात्रि भोज से पहले यहां नहीं आए तब तक हर वस्तु रोशन थी, हर कोना आलोकित था। यह इतना सहज था कि मात्र बटन दबाओ और अपने परिवेश को आलोकित कर लो। रात्रि भोज के बाद हम रसोईघर देखने गए जो खूब खुला प्रकोष्ठ था और सफेद टाईल्स से छः फुट की ऊचाई तक सज्जित था– देखकर बहुत अच्छा लगा।'

इस प्रकार पीटर हॉफ से वायसराय दम्पत्तियों का पीछा छूटा। अंग्रेजी वॉयसरायों ने तो इससे छुटकारा पा लिया पर उनके प्रतिष्ठित अतिथियों के लिए यह अतिथिगृह का कार्य करता रहा। आजादी के बाद यह पंजाब उच्च न्यालय के भवन के तौर पर चर्चित हुआ। पर जब हिमाचल पंजाब से अलग हो गया तो इस भवन को हिमाचल में शामिल करने के अनेक प्रयास हुए अंततः जब हिमाचल को पूर्व राज्य का रुतबा मिला तो इसे भी राजभवन की उपाधि से नवाज़ा गया। तब कभी राज भवन और कभी अतिथिगृह के रूप में इसे अनेक राज्यपालों और मुख्यातिथिओं ने रुतवा दिया। अनेक गण्यमान्य अतिथियों को सुविधा प्रदान करने का गौरव इसे प्राप्त है। पर यह ज्यादा देर अपने ऐश्वर्य को सम्भाल कर नहीं रख सका। 1981 में यह भव्य भवन जलकर राख हो गया। जिसकी जिम्मेदारी को निश्चित करने के अनेक प्रयास हुए पर किसी को भी दण्ड नहीं दिया गया। अनेक वर्षो तक यह अधजला भवन चीखता–पुकारता रहा अंततः 1990--91 में इसका पुनः निर्माण शुरु हुआ और उसे राज्य अतिथि गृह के रूप में मान्यता दी गई जो आज तक इसकी झोली में बावस्ता है पर अब इसे राज्य का पर्यटन निगम चलाता है।

शिमला में जो इने गिने संस्थान या होटल हैं जिनमें राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की सभायें या समागम होते हैं उनमें से यह एक प्रमुख संस्थान है अभी हाल ही में नेशनल कांग्रेस की राष्ट्रीय संगोष्ठी का यहां आयोजन किया गया। इसके इलावा अनेक धार्मिक और सामाजिक समागमों का यह केन्द्र रहा है। चूंकि इसकी स्थिति शहर के बीचोबीच होते हुए भी एक नवेकली जगह पर है अतः आयोजकों को कोई दिक्कत नहीं होती अतः उनके लिए प्रथम 'चॉयस' यही रहता है।

विंडक्लिफ भवन

शिमला की 'हेरीटेज बिल्डिंग्स' में दिंडक्लिफ का अपना एक विशेष स्थान है। पीटर हॉफ और प्रदेश के संग्रहालय के मध्य में स्थित यह भवन अपने स्थापत्य तथा ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य के कारण चर्चित एवम् प्रसिद्ध रहा है। वस्तुतः यह दूरदर्शन केन्द्र पीटर हॉफ और राज्य संग्रहालय की त्रिवेणी बनाता हुआ इन तीनों नवीन भवनों को जोडता हुआ, दशकों से झंझाओं को झेलता खड़ा है

विंडक्लिफ भवन का निर्माण शिमला के मौसम को देखते हुए विशुद्ध पहाड़ी शिल्प को सम्मुख रखकर किया गया था। धज्जी दीवारों के माध्यम से खुले प्रकोष्ठ और प्रयाप्त धूप के आगमन के लिए दीर्घायें, काष्ठ–फर्श आदि इस ओर संकेत करते हैं कि इस तरह के भवन अपने आप में उर्जा को सम्भाले रखते थे और जरा भी नष्ट होने देते थे।

इस भवन का निर्माण इस तरह किया गया है कि लेशमात्र भी ऊर्जा नष्ट न हो। पूर्वोत्तर दिशा में प्रकोष्ठों के बाहर, विशेषकर ऊपरी मंजिल पर बनी दीर्घायें, सर्दियों में, धूप के आगमन के लिए वरदान सिद्ध होती हैं और दूसरी ओर ठीक इसके विपरीत पश्चिमोत्तर की ओर बनी हुई दीर्घायें डूबते सूर्य की तपिश को सम्भाले रखतीं थीं और दक्षिण दिशा में प्रकोष्ठों को शीशों से लैस किया जाता था ताकि धूप सारे दिन भीतर आ सके। पूर्व दिशा से शुरु होकर जब सूर्य धीरे धीरे पश्चिम दिशा की ओर पलायन करता है–दुपहर को दक्षिण दिशा में अपनी उर्जा बिखेरता है जिसे उलीचने का यथोचित प्रबन्ध इस भवन के निर्माण में किया गया था।

यह दो मंजिला भवन है जिसकी धज्जी दीवारें ऊपर उठती हुई अपने मुकाम तक पहुंचती है। खुले प्रकोष्ठ, हाल कमरे तथा भीतर के प्रकोष्ठ से खुली सीढ़ियां ऊपर की ओर चढ़ती हैं। ये सीढ़ियां खूब चौड़ी हैं कि चढ़ते हुए दिक्कत नहीं होती। तले में तीन खुले प्रकोष्ठ हैं। पहला प्रकोष्ठ जो दक्षिण की ओर है गोलाई लिए है। दूसरा प्रकोष्ठ एक खुला प्रकोष्ठ है जो इस समय इंजिनीयर रूम के तौर पर इस्तेमाल किया जाता है। बीच का प्रकोष्ठ मात्र खुली सीढियों के लिए है। काष्ठ सीढ़ियां ऊपर के माले को जातीं हैं। तो तीसरा प्रकोष्ठ एक हाल कमरा है जो 24 फुट लम्बा और बीस फुट चौड़ा है। इसके साथ लगे दो प्रकोष्ठ हैं। एक किचन के लिए और दूसरा प्रकोष्ठ उसके साथ लगा स्टोर रूम है। और उसके बाद एक खुला स्टोर है।

दूसरे माले पर एक बहुत खुला हाल है जिसके बाहर पश्चिम की ओर दीर्घा है–गैलरीनुमा जहां पश्चिम की ओर धूप आने के लिए प्रकाशित प्रकोष्ठ है। उसके साथ लगे दो गेस्ट रूम हैं। इन दो गेस्ट रूम के बीच सीटिंग रूम है जहां कभी एंटिक फर्नीचर लगे थे पर अब मात्र कुर्सियां और टेबल लगे हैं। इनके साथ लगे पूर्वोत्तर की ओर तीन प्रकोष्ठ हैं जहां अब ट्रांसमीटर लगे हैं। और चौथा छोटा प्रकोष्ठ स्टोर के लिए है। दूसरी मंजिल पर बड़े हाल कमरे के बाहर–पश्मोत्तर दिशा की ओर दीर्घायें खुली हैं ताकि दक्षिणांचल की ओर प्रतिगामी सूर्य की रौशनी और ऊर्जा को आत्मसात किया जा सके। इस दीर्घा के साथ ही एक बाथरूम है और पश्चिम की ओर एक बैठक है ताकि वहां बैठकर पश्चिम गामी सूर्य की किरणों का आनन्द लिया जा सके।

इस भवन के साथ लगतीं पूर्वोत्तर दिशा की ओर एक वृहद् दीर्घा में छः प्रकोष्ठ दो मंजिलों में बने हैं। ये कभी नौकरों, चाकरों और चौकीदारों के कमरे थे जो अब जीर्ण शीर्ण अवस्था में पड़े हैं। पृष्ठभूमि में जो प्रकोष्ठ है उस पर एक अवजर्वेटरी की तरह कोनात्मक पिरामिडनुमा प्रकोष्ठ बना है जो इस स्थापत्य के चतम्कारिक रूप को उजागर करता है।

इसके इतिहास के बारे में बात करने से पहले यह बात करना जरूरी है कि यहां कभी आकाशवाणी का

'मोनेटरिंग सेल' होता था। सारे भारतवर्ष के आकाशवाणी केन्द्रों से प्रसारित होने वाले कार्यक्रमो को सुना जाता था। विशेषकर समाचारों को सुन कर उनकी रिपोर्ट केन्द्र को भेजी जाती थी। इसी केन्द्र द्वारा सुनी गई एक महत्वपूर्ण रिर्पोट–जब पाकिस्तान के डिक्टेटर ज़ियाखान ने भुट्टो सरकार को पद दलित कर डिकटेटरशिप लागू की थी को सर्वप्रथम यहीं से केन्द्र को भेजा गया था जो सर्वप्रथम यहीं से सूचना मिलने पर प्रसारित हुआ था कि बी.बी.सी.भी पीछे रह गई थी। और इस समाचार वाचक को पुरस्कृत किया गया था। यहीं से एक और सूचना केन्द्र को भेजी गई थी जब एक लद्दाखी समाचार वाचक ने अपने व्यक्तिगत लाभ के लिए इसे इस्तेमाल किया गया था और उसकी सेवायें खत्म कर दी ग़ईं थीं।

आज यह अति जर्जर हालत में खड़ा है पर कभी यह भवन अति आलीशान भवन रहा था जहां ब्रिटिश इण्डिया के उच्च उहलकार यहां ठहरते थे।

आजकल यहां आकाशवाणी शिमला का शार्टवेव ट्रांसमीटर लगा है। नीचे के हाल कमरे खाली पड़े हैं–मात्र पीछे के कमरों में ट्रांसमीटर स्थापित हैं। एक कमरे में चौकीदारों के लिए रात्रि आराम के लिए बिस्तर लगे हैं। ऊपर का बड़ा हाल कमरा और उसके दोनों और बनी गैलरियां खाली पड़ीं हैं। हाल कमरे की छत कभी कलात्मक 'वुडवर्क' के लिए प्रसिद्ध थी पर अब भीतरी छत में से लकड़ी के टुकड़े नीचे गिरना चाहते हैं। छत बड़ी जर्जर अवस्था में पड़ी है, कभी भी टपक संकती है।

पूर्वोत्तर दिशा में स्थित दो कमरों को 'गेस्ट रूम्स' में बदल दिया गया है पर पानी की किल्लत होने के कारण ये कम ही प्रयोग में आते हैं

वायसरायरीगल लॉज

यह कम्पलेक्स तीन भवनों पर आधारित है– मुख्य भवन जहां आजकल उच्च अध्ययन संस्थान का आलीशान पुस्तकालय है, जिसे पांच स्तरों पर बनाया गया है– मुख्य मंजिल पर्वतीय मार्ग की ओर खुलती है जबकि दूसरी मंजिल एक पहाड़ी के समानान्तर बनी है जिसमें दोनों ओर और बीच में अनेक कमरे बनाए गए हैं। दांई ओर एक अन्धेरा कमरा है जिसे लोहे के ग्रिल से ढक रखा है। ऐसी मान्यता है कि इस अन्धेरे कमरे को राजनैतिक कैदियों को छुपा कर रखने के लिए इस्तेमाल किया जाता है। अक्सर ये कैदी अति महत्वपूर्ण होते थे जिन्हें आम कैदखानों में रखना खतरनाक माना जाता था। आजकल सामान रखने के लिए इन्हें प्रयोग में लाया जाता है।

एक अति विशाल रसोई 30फुट गुणा 30फुट रकबे की, जिसकी छत गुबन्दनुमा है तथा भीतर अनेक बड़ी मेजें जिन पर संगमरमर की स्लैबें लगी हैं– कभी डायनिंग टेबल के तौर पर इस्तेमाल की जाती रहीं थीं। इन्हीं के पास पड़े हैं बड़े–बड़े हाट केसिज़ जो उस वक्त की याद दिलाते हैं जब अंग्रेजों के समय, वायसराय यानि कि लाट साहब के शाही वांशिदों और उच्च कारिंदों के लिए खाना इन हाट केसों में गर्म रखा जाता था या रसोई से दूसरे स्थान पर ले जाया जाता था। अब ये हाट केस निर्रथक पड़े है। यही दूसरी मंजिल जो कभी विशाल डायनिंग हाल लिए थी अब भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान का भव्य पुस्तकालय बन गई है। इसकी दीवारें कभी वायसराय तथा इंगलैंड की विभूतियों के चित्रों से सज्जित थीं अब खाली सी वीरान लगतीं हैं। इसके साथ लगा है लांऊज– प्रतीक्षालय जहां कभी वायसराय के महत्वपूर्ण महमान प्रतीक्षा में रहते थे।

तीसरे माले में अनेक खुले प्रकोष्ठ हैं– इसमें से दो, जो लगभग मध्य में स्थित थे अति सज्जित थे–मखमली, पर्दो, जालीदार खिड़कियों, सुंदरियों की मांसल तस्वीरों से सज्जित ये प्रकोष्ठ वायसराय तथा उसकी धर्मपत्नी, वायसरीन के सोने कें कमरे थे। इन्हें अभी तक वैसे ही सुरक्षित रखा गया है जबकि बाकी के अन्य प्रकोष्ठों को अध्ययन में रत अनुसंधित्सुओं के लिए अध्ययन प्रकोष्ठ बना दिए गए है। कभी ये कमरे भी अति सज्जित होते थे और वायसराय के विशिष्ठ मेहमानों के लिए तय थे। लगभग नौ ऐसे कमरे आजकल इस्तेमाल में हैं।चौथा माला मात्र मेहमानों के लिए ही होता था।

दूसरी इमारत, जिसे जनप्रवेश भवन कहा जाता था, बाद में, सन् 1918 ई0 में बनी थी। इस इमारत को वायसराय के कार्यालय के कर्मियों के लिए बनाया गया था। आजकल एडवांस स्टडी संस्थान के कर्मचारियों द्वारा इसे इस्तेमाल किया जाता है।

तीसरी इमारत जिसे ऑबजरवेटरी की संज्ञा से जाना जाता है, मध्ययुगीन स्थापत्य कला की धरोहर कही जा सकती है। इस इमारत में अनेक प्रकोष्ठ हैं और सामने हरी घास का,लॉन में, कालीन बिछा है जिसके साथ लगी, साईड, की दीवारों पर फूलों लदी बल्लरियां सारे वर्ष अपनी छटा और सुगन्ध बिखेरती रहती है। यह इमारत महत्वपूर्ण मेहमानों और वायसराय के सलाहकारों द्वारा इस्तेमाल में लाई जाती थी। आजकल इसे विद्वान इस्तेमाल करते हैं। इसमें एक कन्टीन भी है जहां से खाना तथा दूसरी खाद्य वस्तुएं लीं जा सकतीं है। यह सारा कम्पलेक्स वायसरीगल लॉज कहलाता था जिसे बाद में राष्ट्पति भवन के नाम से जाना गया। इसे औपचारिक तौर पर 20 अक्तूबर, 1965 को भारत के तत्कालीन राष्ट्पति, प्रसिद्ध विद्वान और दार्शनिक सर्वपल्ली डा0 राधाकृष्णन द्वारा भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान को सौंप दिया गया था। वातावरण, परिवेश और नैसर्गिक वातास से प्रभावित होकर डॉ0 साहब ने इसे अनुसंधित्सुओं के लिए अति उपयुक्त पाया अतः इस इमारत को

इस संस्थान को समर्पित कर दिया। यह इमारत आदर्शोन्मुख परिवेश लिए एक पर्वतीय पठार पर स्थित है जिसे समरहिल के तौर पर जाना जाता है।

भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान एक निदेशक द्वारा परिचालित है जिसके सहयोग के लिए अनेक दूसरे कर्मी होते हैं। इसे आर्थिक योगदान मानव संसाधान मंत्रालय देता है। कुछ आर्थिक सहायता प्रकाशनों के विक्रय से भी हो जाती है।

संस्थान द्वारा उच्च अध्ययन हेत खुले विज्ञापन दिए जाते हैं। उचित तथा चयनित प्रतिस्पर्धियों को वृत्ति से अलंकृत किया जाता है। अनेक विषयों पर कार्य किया जा सकता है– कला, सामाजिक विज्ञान, साहित्य तथा सामाजिक मानविकी आदि। अक्सर चर्चित विद्वानों को विषय विशेष पर भाषण देने के लिए आमंत्रित किया जाता है। ये विद्वान अपने अपने क्षेत्र में सर्वोच्च अनुभव रखने वाले होते हैं। वे कुछ विभूतियां जिन्होने अपने भाषणों द्वारा इसके वातास को मुखरित किया था उनमें से प्रोफैसर मुल्खराज आनन्द, प्रोफैसर निर्मल कुमार बोस, प्रोफैसर सुनीति कुमार चट्टर्जी, प्रोफैसर के० एस० सच्चिदानन्द, प्रोफैसर बी०एन० गोस्वामी आदि विशेष तौर पर सराहे जाते हैं। अनेक कार्याशालायें और सेमिनार भी आयोजित किए जाते हैं। अध्ययन में रत अनुसंधित्सुओं के लिए सेमीनार आयोजित किए जाते हैं। अनुसंधान में रत अनुसंधित्सुओं को अपना कार्य सम्पन्न करने के बाद रिपोर्ट जमा करवानी होती है जिसे उपयुक्त जान कर प्रकाशित किया जाता है। इनके इलावा कम से कम तीन राष्ट्रीय स्तर के सेमीनारों का भी आयोजन किया जाता है।

इन सेमीनारों में विशेष विद्वानों के भाग लेने के लिए आमंत्रित किया जाता है। यद्यपि इस सारे कार्य को कार्यान्वित करने के लिए सचिव होता है पर अनुसंधित्सुओं के चयन तथा दूसरे नीतिजनक निर्देशन के लिए विद्वानों का एक समूह होता है जो शैक्षणिक तौर पर तथा अपने क्षेत्र में बहुत ऊंचे पदों पर आसीन होते हैं, वे सचिव तथा दूसरे स्टाफ सदस्यों का मार्गदर्शन करते है।

इससे पहले कि इसके संरक्षण के सवाल की बात की जाए।इस विशद,विशाल और भव्य इमारत–समूह के निर्माण के बारे में जानना आवश्यक हो जाता है। वायसरीगल लाज के वजूद में आने से पहले वर्तमान आकाशवाणी केन्द्र के पास ऊचाई पर पीटर हॉफ नामक भव्य इमारत वायसराय के निवास के तौर पर इस्तेमाल की जाती थी। इसे इसीलिए बनाया गया था कि गर्मियों के कुछ माह यहां बिताने के लिए वायसराय, उसका परिवार और कुछ महत्वपूर्ण अफसर कलकता से शिमला आकर ठहरते थे।बाद में शिमला को परोक्ष में और थोड़ी देर के बाद औपचारिक तौर पर राजधानी नामित कर दिया गया। पीटर हॉफ को पहले पहल लार्ड एल्गिन ने अपना निवास बनाया था। शायद यह उन्हीं दिनों 1863 में निर्मित हुआ था।वस्तुतः 1876 ई० में लार्ड लिट्टन तथा लेडी लिट्टन ने अधिकारिक रूप से यहां निवास बनाया और इसमें अनेक परिवर्तन किए। पर लार्ड लिट्टन तथा लेडी लिट्टन अति फेशनेबल जोड़ा था। अपनी हैसीयत के अनुसार उन्हें यह इमारत ठीक नहीं लगी अतः वे इस तलाश में रहे कि कोई आदेर्शोन्मुख अति उत्तम स्थान वायसराय के उपयुक्त मिल सके। 1877 ई० में अंततः ऑबजरवेटरी पहाड़ी पर, शिमला के पश्चिम में, एक स्थान अति उपयुक्त लगा। सुपर इंजीनियर कैप्टेन कोल को इसका डिजायन तैयार करने को कहा गया। 1880 ई० में कैप्टेन कोल के स्थान पर हैनरी इरविन सुपर इंजीनीयर के तौर पर तैनात हुआ। वायसरीगल लाज का डिजायन तो तैयार हो गया पर लार्ड लिट्टन के उत्तराधिकारी लार्ड रिपॅन ने कोई दिलचस्पी नहीं ली अतः लार्ड रिपॅन के बाद लार्ड डफरिन ने पहले तो कोई दिलचस्पी नहीं ली पर उसकी लेडी अति महत्वाकांक्षी थी। वह चाहती थी कि वे भारतीय राजाओं की तरह खूब ऐयाश जीवन जीएं। उसने लार्ड डफरिन को इस ओर प्रेरित किया चुनाचे कुछ हेर–फेर के बाद हैनरी इरविन का बनाया डिजायन मंजूर कर लिया गया और उसे कार्यान्वित करने के लिए लेडी डफरिन

स्वयं खूब दिलचस्पी लेने लगी। उसे इस बात की आशंका थी कि कहीं इस भव्य इमारत के बनते बनते कोई दूसरा वायसराय न आ जाये। चुनाचे 1885 ई0 में पूर्ण सहमति के साथ यह इमारत शुरू की गई और 1888 ई0 में यह सम्पन्न हो गई थी। 23 जुलाई 1888 ई0 में डफरिन दम्पति ने इसमें पदार्पण किया। इस इमारत में शाही दम्पति के अनुरूप देश की वेश कीमती खानों से लाए गए पत्थरों, स्लैबों को खच्चरों और बकरों की पीठ पर ढोकर लाया गया। स्थानीय सीजन्ड देवदार के इलावा टीक, सागवान और अखरोट की लकड़ी का प्रयोग किया गया। लगभग सारा इमारती काम देवदार और सागवान की लकड़ी से किया गया है तो फरनीचर अखरोट की लकड़ी और सागवान की लकड़ी से बनाया गया है।

अब बात आती है इसके संरक्षण की। इसमें कोई शक नहीं कि 1888 ई0 में निर्मित होकर सामने आने वाली भव्य इमारत अपने स्थापत्य और अंतरिम स्वरूप को लेकर एक अत्युत्तम भवन समूह है जिसका संरक्षण आवश्यक ही नहीं अथच अति महत्वपूर्ण है। जब स्थानीय सरकार ने इसे पांच सितारा होटल में परिवर्तन करने की बात की तो एक पबलिक लिटीगेशन द्वारा इसे चुनौती दी गई। श्री राजीव मनकोटिया द्वारा दायर की गई याचिका पर यद्यपि बहुत सकारात्मक न्यायायिक फैसला हुआ पर निहित में कहीं इसके असंरक्षण की बात बैठी हुई थी। यद्यपि इस याचिका के पीछे यही निहित था कि इसे होटल में बदलने पर इसका वजूद और ऐतिहासिक महत्व खत्म हो जाएगा पर इस याचिका में कहीं पर भी इसकी चर्चा नहीं थी कि भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान को यहां से स्थानांतरण कर दिया जाए। बुद्धिजीवियों से बड़ा संवेदनशील इस ओर भला, कौन हो सकता है। मनकोटिया अभी भी इस बात पर टिके हैं कि उन्होंने संस्थान के स्थानांतरण की बात नहीं की मात्र वह चाहते थे कि यह होटल में परिवर्तित न हो। लेकिन उच्चतम न्यायालय द्वारा पारित इस फैसले कि 31 दिसम्बर 2003 तक संस्थान को इस भवन समूह से स्थानांतरण कर दिया जाए से अनेक समस्यायें उभर आई थीं कि भारत द्वितीय राष्ट्रपति, दार्शनिक और विद्वान सर्वपल्ली डा0 राधा कृष्णन ने जो स्वप्न संजोया था उसका क्या होगा? भारत में ऐसी कौन सी जगह मिल सकेगी जहां ऐसा वातास संवेदनशील लेखकों के लिए प्रेरणा और प्रोत्साहन देने में समर्थ होगा। और इस थोड़े समय में यह सम्भव है क्या ! अच्छा हो यदि इन समस्याओं पर गौर किया जाए। विद्वानों से बढ़कर ऐसा कौन व्यक्ति होगा जो इस ओर ध्यान देगा। खैर बहुत प्रयास करने पर सन् 2006 में ज़ाकर इस संस्थान को राहत मिली।

■■■

सिसिल भवन समूह

शिमला नगर को सुशोभित करते प्राचीन भवनों में सेसिल भवन समूह का एक महत्वपूर्ण स्थान है। एक बहुत छोटे प्रयास के साथ इस कम्पलेक्स का आग़ाज़ लगभग एक सौ साठ वर्ष पहले टेन्डरिल कॉटेज़ के रूप में हो चुका था जिसका निर्माण चौड़ा मैदान में 1844 ई0 में एक मंजिला घर के रूप में किया गया था। 1850 ई0 में यह घर श्रीमती बारलो कोलीयर के पास चला गया। श्रीमती बारलो ने इसे 29 जून 1850 ई0 में बोली के आधार पर अदालत को बेच दिया जिसे 2410 रुपये में डेविड कोलीयर ने खरीद लिया। इसे एच0आर0कुक, जो कि तत्कालीन सरकार में रजिस्टरार के पद पर तैनात थे ने 18000 रुपये में खरीद लिया। कुक बाद में, 17 नवम्बर 1877 में विदेश मंत्रालय में सहायक के पद पर तैनात हुए। कुक ने इसे ढहा कर दुबारा बनाया और तीन फलैटों में इसका निर्माण कर अनेक लोगों को किराए पर दे दिया। कुक ने इसे 1902 ई0 में 45000 रुपये में श्री होट्ज़ को बेच दिया। होट्ज़ जो कि एक चर्चित छायाकार थे और जिन्होंने शिमला के आस–पास के अनेक दुलर्भ छायाचित्र जमा किए थे,वास्तुशिल्प में भी दखल रखते थे ने इस भवन का प्रसार किया और कई गुणा बढ़ाकर इसके साथ अनेक्सी और सर्वेंट क्वार्टर भी तैयार किए और इसे 'होटल सेसिल' के नाम से नवाज़ा गया। इस प्रकार सन् 1902 ई0 में यह अपने वास्तविक नाम से वजूद में आया।

श्रीमती होट्ज जो अपने होटलों के लिए दिल्ली ,आगरा और मशोबरा में चर्चित थी ने इस होटल का भी कार्यभार सम्भाल लिया था। उसने इस होटल को न केवल चर्चित किया अपितु उत्तरी भारत के कुछेक इने गिने होट्लों में यह अपनी सुविधाओं के कारण गिना जाता था। जब इसकी चर्चा अपने चरम तक पहुंच चुकी थी तब श्रीमती होट्ज़ ने इसे जे0फलेट्टी नामक सज्जन को अढाई लाख में बेच दिया। जे0फलेट्टी अपनी होटल सर्विस के लिए आगे ही चर्चित हो चुका था। उसे भारतीय अनेक प्रदेशों में वायसराय के प्रवासों का प्रबन्ध तो सौंपा ही जाता था अथच 1906 ई0 में उसे प्रिंस ऑव बेल्स के प्रवास के दौरान खान–पान के कार्य का भी प्रबन्ध सौंपा गया था परिणामतः उसने शाही–वंश में अपने आपको न केवल चर्चित कर लिया था अथच महामहिम प्रिंस ऑव वेल्स ने भी उसे एम0वी0ओ0 सम्मान से नवाज़ा। फलेट्टी ने इस होटल को और संवारा और बीसवीं सदी के प्रथम दशक में लगभग छः लाख रुपये खर्च कर इस भवन समूह के मुख्य खण्ड को आकर्षक फानूसों ,विदेशी फरनीचर तथा अति लुभावने पारदर्शक उकेरे गए चित्रों से सज्जित किया। इस प्रकार उत्तरी भारत में सम्भवतया यह अपनी शान–शौकत के साथ सज्जित पहला ऐसा होटल था जिसे बाद में पंजीकृत कर'क्लासीफाई' किया गया।

फलेट्टी ने इस होटल को 1916 ई0 तक बखूबी चलाया जब दूरदर्शी इस व्यवसाई ने एक वृहद् योजना के अन्तर्गत 'ऐसोशिएटिड होटल्स ऑव इण्डिया' नामक एक कम्पनी को जन्म दिया जिसमें साठ लाख रुपये की लागत से अनेक होटलों को खरीदकर या उनकी भागीदारी से एक वृहद् होटल साम्राज्य स्थापित किया। इस कम्पनी में शिमला के सेसिल होटल के साथ साथ अपने लाहौर के होटल ,मैडन होटल ,दिल्ली ,रावलपिंडी के फलेशमैन होटल व शिमला के लांगवूड' और मुरी के सिसेल होटल आदि भागीदार बनाए गए और स्वयं इस कम्पनी का 'मैनेजिंग डाईरेक्टर' बनकर इन्हें बखूबी चलाने लगा। पर इन सभी होटलों के बीच शिमला का सेसिल होटल निश्चित तौर पर अपनी विशिष्ठ उपलब्धियों के कारण सर्वश्रेष्ठ होटल के तौर पर जाना गया। इस होटल के बारे में अनेक चर्चित पर्यटकों और अनुसंधित्सुओं ने अपने विचार रखें हैं। 1845 ई0 में डॉक्टर हॉफमैस्टर ने अपने शिमला प्रवास के दौरान लिखाः–

'अजनबियों की सुविधा के लिए अभी हाल ही मे एक होटल का निर्माण हुआ है– यह एक ऐसी बात थी जिसके बारे में हिन्दोस्तान के मैदानी इलाकों में सोचा भी नहीं जा सकता था। एक फ्रांसीसी ने इसके स्थापत्य का कार्य अपने हाथ में लिया था और हम इस भवन में अपने को अति सुरक्षित पाते हैं। मैं तो इसके आर्द्र फर्श पर भी सोने के लिए लालायित रहता हूं–.......इसमें रखे गए पियानों के जोड़े में से एक को जब मैंने बजाया तो मुझे लगा कि इसे ट्यून कर सन्ध्या के समय या दोगाने के समय इसका सुन्दर इस्तेमाल किया जा सकता है।'

वर्तमान में भी सिसिल होटल ने अपनी साख रखी है। नब्बे के दशक में एक अफवाह थी कि इसे सरकार अपने हाथ में लेना चाहती है ताकि सरकारी अहलकारों का अस्थाई आवास बनाया जा सके पर होटल/कम्पनी का प्रशासन नहीं माना और होटल को बंद कर दिया गया–मुरम्मत के बहाने से। और दो तीन वर्ष तक इसकी मुरम्मत होती रही।

आज भी सेसिल होटल उन्नत ललाट लिए अपना वर्चस्व स्थापित कर उसी प्रकार पर्यटकों की खिदमत के लगाा है जैसे एक सदी पहले था अथच अब इसमें और सुधार किए गये हैं और पर्यटकों के लिए अतिरिक्त सुविधायें उपलब्ध करवाई गईं हैं।

■■■

ओबराय कलार्क्स

होटल क्लार्क का बहुत पुराना इतिहास नहीं है तथापि इस भवन की कहानी सेसिल होटल से जुड़ी हुई है। 1844 ई0 में चौड़ा मैदान में टेंडरिल काटेज नाम का भवन श्रीमती वार्लो ने खरीद लिया था जिसे श्रीमती बार्लो कोलियर से 29 जून 1850 ई0 में शिमला कोर्ट ने खरीद लिया। इसे बाद में एच0आर0कुक जो कि विदेशी मामलों के विभाग में सह सचिव थे, ने 18000 रुपये में 17 नवम्बर 1877 ई0 में खरीद कर इसे गिरा कर तीन फलैट बना दिए जो किराए पर चढ़ा दिए गए। 1902 ई0 में श्री आर होट्ज़ ने इसे 45000 रुपये में खरीदकर एक बार फिर गिरा कर होटल बनाया जिसे सेसिल होटल की संज्ञा से नवाज़ा गया। उनकी पत्नी श्रीमती होट्ज़ ने मशोबरा, देहली और आगरा में भी होटल बनाए पर सेसिल होटल उसने जे0फलेट्टी को अढ़ाई लाख में बेच दिया।

जे0फलेट्टी एक होटल व्यवसाई के तौर पर प्रसिद्ध हो चुका था। जे0फलेट्टी ने इस होटल को खरीद कर इस पर लगभग छः लाख और लगाकर इसे सेसिल होटल का वर्तमान स्वरूप दिया। 1916 ई0 में उसने एसोसिएटिड होटल कम्पनी स्थापित की जिसमें सेसिल होटल के साथ साथ दिल्ली का मेडन होटल, रावलपिंडी का फलैशमैन होटल शिमला के कार्स्टोफैन्स तथा लांगवूड तथा नव–निर्मित मुड़ी का सेसिल होटल भी थे। उन दिनों फलैट्टी ने सेसिल होटल का प्रबन्ध एक सुव्यवस्थित प्रबन्धक एडवर्ड क्लार्क को सौंप रखा था। एडवर्ड क्लार्क एक महत्वाकांक्षी व्यक्ति था जिसे होटल व्यवसाय में खासा दखल हो चुका था। अब वह स्वतंत्र तौर पर इसे अपने हाथ में लेना चाहता था पर फलैट्टी के होते यह सम्भव नहीं था। उसने छोटा शिमला की ओर जाती माल रोड पर एक ऐसा भवन तलाश किया जो होटल के अति उपयुक्त था।

उन्होंने उसे खरीदकर होटल का जामा दिया और उसे चलाने लगे। यह बीसवीं शताब्दी का दूसरा दशक था। उन दिनों ओबराय भी शिमला में आए और होटल सेसिल में क्लार्क के साथ कार्य करने लगे थे। दोनों में खूब छनती थी। बाद में एडवर्ड क्लार्क ने सेसिल होटल छोड़ दिया और स्वतंत्र तौर पर क्लार्क होटल के मालिक और प्रबन्धक के तौर पर कार्य करने लगे थे। इस बीच उन्होंने पुराने भवन को होटल के रूप में अच्छी तरह संवार दिया था। फलैट्टी लगभग 1930 ई0 के आस–पास इंग्लैंड चले गए थे फलस्वरूप उनके होटल सेसिल को भी एडवर्ड ने खरीद कर शिमला में होटलों का एक साम्राज्य स्थापित कर लिया था। अपने होटल के साथ–साथ उनके पास सेसिल होटल और ऐसोसिएटिड कम्पनी के अन्तर्गत आने वाला लांगवूड होटल भी ले लिया था। इस बीच ओबराय सेसिल होटल के प्रबन्धक के तौर पर स्थापित हो चुके थे।

1934 ई0 में एडवर्ड क्लार्क भी इंग्लैंड की ओर रवाना हो गए तो उन्होंने सेसिल और क्लार्क होटल ओबराय को बेच दिए।न केवल क्लार्क, सेसिल तथा लांगवूड के होटल उन्होंने ले लिए थे अथच एसोसिएटेड होटल ऑव इण्डिया कम्पनी के जितने भी होटल थे उन्होंने खरीद कर होटल व्यवसाय में अपना वर्चस्व स्थापित कर दिया था। यह 1936 का वर्ष था।1943 ई0 तक पहुंचते पहुंचते वे आठ होटलों के मालिक बन गए थे।

क्लार्क होटल वस्तुतः अपने वर्तमान स्वरूप में 1943 ई0 में वजूद में आया। 1943 ई0 से 1983 ई0 तक यह होटल निर्वाध गति से चलता रहा। अक्सर गर्मियों में यह भरा रहता था पर सर्दियों में बर्फबारी के कारण लगभग खाली रहता। इस बीच इस का पुनः निर्माण कर 1997 ई0 में एक स्तरीय होटल में बदल दिया गया और इसे पांच सतारा होटल का रुतबा दिया गया। यद्यपि इसका पुनः निर्माण किया गया था पर इसके बाहिरी ढांचे में कोई परिवर्तन नहीं किया गया। अथच भीतर अनेक प्रकार की सुविधायें जुटाई गई।पुराना होटल चार

दिवारी रूपी परकोटे से घिरा था और ऊपर से खुला था। पुनः निर्माण के बाद ऊपर शीशे की छत लगाई गई ताकि ऊपर से बंद हो जाए पर रौशनी अबाध रूप से भीतर आती रहे। चूंकि दीवारें पुरानी शैली की धज्जी दीवारें हैं। अतः भीतर की ऊर्जा का सर्दियों में भी ह्रास नहीं होता।

इस होटल के निर्माण में सारी लकड़ी सागवान की इस्तेमाल की गई है जो बर्मा से लाई गई थी। पुनः निर्माण के समय इस बात का ख्याल रखा गया कि काष्ठ–पच्चीकारी को कोई नुक्सान न पहुंचे। पुरानी कलात्मक काष्ठ पर उकेरी गई बल्लरियां और सजावट आज भी वैसी ही मुखरित है।

यद्यपि बहुत–सा फर्नीचर नया लाया गया था पर इस बात का ध्यान रखा गया था कि यह प्रकोष्ठों के प्राचीन सौन्दर्य के साथ मेल खा सके अतः ज्यादातर विक्टोरियन शैली का फर्नीचर ही खरीदा गया।

यह होटल सम्भवतया सबसे पुराना होटल है। धज्जी दीवारों के होने से किसी भी प्रकार की ऊर्जा का ह्रास नहीं होता अतः 'इन्टर्नल हीटिंग' की व्यवस्था की जरूरत कभी नहीं पड़ी।

यह भवन चार मंजिला भवन था जिसकी ढालुआं छत और पर्वतीय शैली आज भी विद्यमान है। इस भवन का निर्माण इस चातुर्य से स्थापन के असूल को सामने रख कर किया गया था कि इसमें सारा दिन धूप रहती है। गर्मियों के दिनों में सूरज ऊपर से गुजरता है जबकि सर्दियों में नीचे से जाते हुए सभी कमरों में अपनी ध ूप बिखेरता है जिसकी ऊर्जा को रात तक महसूस किया जा सकता है। धज्जी दीवारें होने से ऊर्जा का ह्रास नहीं होता।

इस होटल में कुल 32 कमरें हैं जिनमें 18 सूईट हैं। राय बहादुर ओबराय इन सभी होटलों के मालिक हैं।

■■■

वुड फील्ड भवन

शिमला में ऐसी अनेक इमारतें तथा भवन स्थित हैं जिन्हें देश के अति सम्मानीय और प्रतिष्ठित व्यक्तित्वों के संस्मरणों को संजोने का गौरव प्राप्त है। वैसे तो हरेक पुराने भवन के साथ एक सशक्त इतिहास जुड़ा हुआ है–ब्रिटिश इण्डिया के कर्णधार लार्ड बेंटिक, लार्ड डलहौजी, लार्ड एल्गिन, लार्ड मेयो, लार्ड लिट्टॅन, लार्ड रिपॅन, लार्ड डफ़्फरिन, लार्ड कर्जन, लार्ड हारडिंग, लार्ड लिट्टन आदि के संस्मरण इन भवनों के साथ जुड़े हैं जो संसार का एक तिहाई प्रशासन चलाते रहे थे। उनसे जुड़े अनेक कमान्डर–इन–चीफ भी इन भवनों के साथ जुड़े रहे हैं। इनमें विशेष जनरल सर एडवर्ड बर्ने जिन्होंने बार्न'स कोर्ट का निर्माण किया था, जनरल लॉर्ड विलियम बैंटिक जिन्होंने 'बेन्टिक कॉस्ल' का निर्माण किया था, जनरल, सर विलियम रोज़ जिन्होंने वूड विल्ले भवन का निर्माण किया था। ऐसे ही बीसियों नामों को उद्धृत किया जा सकता है। इनके इलावा भारतीय मूल के अनेक राजे–रजवाड़े भी इन भवनों के साथ जुड़े रहे थे। जैसे सिरमौर के राजा बेंटिक भवन के साथ, नाभा के रांजा नाभा एस्टेट के साथ, चैल होटल और चैल एस्टेट को उभारने में पटियाला के राजा भूपिन्द्र सिंह आदि का नाम भुलाया नहीं जा सकता। पर इन शक्तिशाली ब्रिटिश सम्राटों, सम्राज्ञियों, भारतीय राजाओं, महाराजाओं से इतर अनेक प्रबुद्ध भारतीयों का प्रवेश समय–समय पर शिमला में होता रहा है। इनमें सर्व–प्रथम महात्मा गांधी का नाम आता है जो भारतीय स्वतंत्रता संग्राम से जुड़े हुए थे और भारतीय जन–मानस के कर्णधार के रूप में उभरे थे। महात्मा गांधी का नाम राज़कुमारी अमृतकौर भवन, समरहिल के साथ और चेडविक भवन, समरहिल के साथ जुडा है। महात्मा गान्धी इन भवनों में ठहरे थे अतः इन भवनों के निर्माता गौरव से इनके संदर्भ देते हैं। इसी प्रकार उच्च अनुसंधान केन्द्र से बाल्युगंज जाते हुए वुडफील्ड भवन में चर्चित तथा विश्व प्रसिद्ध कवि रवीन्द्र नाथ ठाकुर ठहरे थे। वुडफील्ड को यह गौरव प्राप्त है कि इस भवन में भारतीय नागरिक सेवा के प्रथम भारतीय सदस्य तथा संगीतकार सत्येन्द्रनाथ ठाकुर ठहरे थे। सत्येन्द्र नाथ ठाकुर कवि रवीन्द्र नाथ ठाकुर के भाई थे जिन्होंने इस भवन को आठ मास के लिए किराए पर लिया था। उनकी धर्मपत्नी ज्ञानदा देवी प्रख्यात महिला थी जो बंगाल महिला आंदोलन के साथ जुड़ीं हुईं थीं। उनके साथ उनकी बेटी इन्दिरा भी आई थीं जो प्रख्यात संगीत शास्त्री थीं। उनके दूसरे भाई ज्योतिन्द्र नाथ ठाकुर जो कि प्रसिद्ध नाटककार थे भी यहां ठहरे थे। उनके तीसरे भाई चर्चित तथा प्रसिद्ध नाटककार, कवि, नोबल पुरस्कार विजेता कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर भी यहां कुछ गाह के लिए ठहरे थे। कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर अपने अनुजों अवनिन्द्र नाथ ठाकुर तथा सुरेन्द्रनाथ ठाकुर आदि के साथ यहां ठहरे थे। कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ने अपनी चर्चित कृति 'सोनारतरी' की आठ रचनायें यहीं पर रचीं थीं। वूड फील्ड' का यह भवन 1840 में वजूद में आया था। इसे किसी एंगलों–इंडियन ने निर्मित किया था। यह व्यक्ति ब्रिटिश इण्डिया के वायसराय, अर्ल ऑव ऑकलैंड के यहां कर्मचारी था। वस्तुतः इस सारे परिवेश में चार भवनों का निर्माण किया गया था। इनमें 'कोर्ट बिल्डिंग' थी जहां वायसराय का बैंड हॉउस रहता था। दूसरा भवन 'पेंट लैंड' था जो 1918 में वजूद में आया। तीसरा भवन 'कॉस्ल ग्रोव' था जो पहले 'अकाऊटेंट जनरल' का आवास स्थान था पर वर्तमान में यह भवन विधान सभा के अध्यक्ष का निवास स्थान है। और चौथा भवन 'आरकेडिया' है जो सैनिक उच्च अधिकारियों के लिए इस्तेमाल में आ रहा है।

'वूड फील्ड' का यह भवन 1840 ई० में निर्मित किया गया। यद्यपि इसके निर्माण में वायसराय के स्टॉफ का हाथ था और इस परिवेश में जितने भी भवन बने वे सभी वायसराय के स्टॉफ के सदस्यों के थे पर इसका निर्माण किसने किया इसके ब्योरे उपलब्ध नहीं हैं। पर एक दस्तावेज उपलब्ध है कि भारतीय सेवा के प्रथम

सदस्य सत्येंद्र ठाकुर, जो कि कवीन्द्र रवीन्द्र ठाकुर के बड़े भाई थे, उन्होंने इस भवन को सात–आठ माह के लिए किराए पर लिया था। उनके साथ उनकी धर्मपत्नी श्रीमती ज्ञानदेवी, एक प्रख्यात महिला थी जिसका प्रभाव अपने देवर कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर पर यथेष्ट था। उनके साथ उनकी बेटी प्रख्यात संगीतकार इन्दिरा देवी भी थीं। यहां पर अपने भाई सत्येन्द नाथ ठाकुर के पास रहने के लिए कवीन्द्र रवीन्द्र ठाकुर भी 1893 ई0 में अक्तूबर माह में आए थे। यहीं पर कवीन्द्र रवीन्द्र नाथ ठाकुर ने अपनी रचना सोनारतरी का प्रारूप तैयार किया था और इस रचना की आठ कवितायें यहीं पर उन्होंने रचीं थीं।

यह भवन पर्वतीय शैली में निर्मित धज्जी दीवारों पर निर्मित किया गया था जिसमें मिट्टी, पत्थर और लकड़ी का प्रयोग किया गया था। यह भवन दो दीवारों पर आधारित था। दोनों दीवारें को धज्जी स्थापत्य शैली पर निर्मित किया गया था। दोनों दीवारों के बीच खाली जगह छोड़ी गई थी–हवा और सीलन को हवा देने के लिए। यही कारण है कि इस भवन में सीलन कभी हॉवी नहीं हुई।

इस भवन में सत्येन्द्र ठाकुर प्रथम किरायेदार थे जिन्होंने इसे नौ माह के लिए किराए पर लिया था। इसमें तीन 'बेडरूम' थे, एक 'ड्राइंग रूम' था, एक 'पेन्टेरी' थी। एक बरामदा था। इस बरामदे में इसके प्रथम मालिक जो सूद परिवार से सम्बंधित थे ने एक प्रकोष्ठ निर्मित किया था जो उनके बेटे की शादी पर तैयार किया गया था।

इस भवन को श्री फकीर चंद मित्तल ने खरीदा था। 1948 ई0 में जो कि हाईकोर्ट में वकील थे। बाद में मित्तल साहब ने इसे श्री सत्यपाल सूद को 1969 ई0 में बेच दिया। श्री सत्यपाल सूद एक व्यवसाई थे। इनका व्यवसाय लोअर बाजार में था।

सूद साहब का कोई बेटा नहीं था। उनकी चार बेटियां थीं। अतः यह जयदाद चार हिस्सों में बंट गई।

इसमें अनेक किराएदार थे–मुख्यतः श्री आर0के0 गुप्ता हैं जो 1948 ई0 से यहां किराएदार हैं। सूद साहब ने प्रयास किया था कि इसे एक होटल में परिवर्तित कर दिया जाए पर.कानूनी अड़चनों के कारण ऐसा सम्भव नहीं हो सका। अब पचास वर्ष से रह रहे किराएदार इसे सम्भाले हैं। पर भवन की दीवारें जवाब दे रहीं हैं। चूंकि मालिक को लगता है कि किराएदार मात्र नाम मात्र किराए पर रह रहे हैं अतः वे इसका पुननिर्माण करने को तैयार नहीं हैं। लगभग 12 सर्वेट क्वाटर थे जिनमें से दस गिर चुके हैं और मात्र दो बाकी हैं। यदि समय रहते इन पर ध्यान नहीं दिया गया तो बाकी भी गिर जाएंगे अतः इसके निर्माण की अति आवश्यकता है ताकि यह भवन ऐतिहासिक गरिमा को खो न सके।

■■■

समरहिल एवम् राजकुमारी अमृत कौर भवन

समरहिल यद्यपि हिमाचल विश्वविद्यालय के कार्यालयों तथा चेडविक भवन के लिए प्रसिद्ध है वहीं पर गान्धी जी के शिमला आगमन पर समरहिल में ठहरने का इतिहास जुड़ा है। सर्वप्रथम लॉर्ड इरविन ने महात्मा गांधी को शिमला आने का निमंत्रण भेजा था। महात्मा गांधी समरहिल में स्थित राजकुमारी अमृतकौर की विशुद्ध जिआर्जियन शैली में बने भवन में ठहरे थे। राजकुमारी अमृतकौर कपूरथला के राजा हरनाम सिंह की बेटी थी जिसका जन्म 2 फरवरी 1889 ई0 में शाही परिवार में हुआ था। राजकुमारी की उच्च शिक्षा इन्गलैंड में ही सम्पन्न हुई।भारत आकर उसका सम्पर्क प्रसिद्ध क्रांतिकारी एवं चिंतक श्री गोपाल कृष्ण गोखले के साथ हुआ। बाद में वह महात्मा गांधी जी से अति प्रभावित हुई जिससे उसका जीवन दर्शन ही बदल गया।वह महात्मा गांधी की अन्यतम शिष्याओं में गिनी जाती है।नमक सत्यग्रह के कारण उसे मुंबई के जेल में अनेक दिनों तक बंद रहना पड़ा। 1937 में कांग्रेस की वकालत करने वह बन्नू पहुंची जहां एक बार फिर उसे क़ैद कर लिया गया।राजनीति में उसका खासा दखल था पर उसमें आकर राजकुमारी ने सामाजिक सुधार का ही बीड़ा उठाया था।1931–33 तक वह महिला उत्थान संस्था की अध्यक्षा रहीं और 1938 ई0 में उसे अखिल भारतीय महिला सम्मेलन का अध यक्ष चुन लिया गया।वह प्रथम भारतीय महिला थी जिसे हिन्दोस्तानी तालीमी संग के सदस्य के तौर पर चुना गया था। 1945 ई0 में लन्दन में और 1946 ई0 में पेरिस के स्थान पर उसने यूनेस्को में भारतीय डेलीगेशन का प्रतिनिधित्व किया था।स्वतंत्र भारत की वह पहली महिला मंत्रीं थी जिसे स्वास्थ्य विभाग सौंण गया।राजकुमारी अमृतकौर स्त्री शिक्षा की प्रबल समर्थक थी और उसका कहना था कि शिक्षा से ही महिलाओं का उद्धार हो सकता है। 1964 ई0 में इस मेधावी महिला का देहावसान हो गया। चूंकि उसके पिता सर हरनाम सिंह ने ईसाई धर्म अपना लिया था अतः राजकुमारी अमृतकौर भी स्वयं ईसाई थी और ईसाई धर्म के प्रति वह पूरी तरह आवद्ध थी। दूसरी ओर वह महात्मा गांधी के कुछेक सर्वसम्पन्न अनुयाइयों में राजकुमारी अमृतकौर का स्थान अति महत्वपूर्ण था। महात्मा गांधी द्वारा हर रोज समरहिल में अपनी पूजा के बाद गाये जाने वाले ईश भक्ति गीतों में 'अबाईड विद मी' जिसे कैथोलिक कार्डीनल न्यूमैन ने लिखा था, अति प्रचलित गीतों में एक था जिसे राजकुमारी अमृतकौर ने महात्मा गांधी की प्रार्थना सभा के लिए विशेष तौर पर चुना था। समरहिल में स्थापित राजकुमारी अमृतकौर भवन में हर रोज प्रार्थना सभा में इस गीत की आवृत्ति की जाती थी।

राजकुमारी अमृतकौर भवन पाश्चात्य स्थापत्य शैली का एक अद्‌भुत नमूना है। तीन मंजिला यह भवन अपने शानदार स्थापत्य के लिए अति चर्चित है। वस्तुतः दो ही मंजिलें हैं पर पर्वतीय ढालान पर स्थापित होने से आधारभूत एक मंजिल अपने आप ही बन आई है।

वर्गाकार में निर्मित यह भवन छत तक सीधी दीवारें लिए है जहां चौड़ी समानान्तर छत पर पिरामिडल आकार की एक अन्य छत त्रिकोण बनाती हुई ऊपर चली गई है। यहां चार चिमनियां करीने से सजी है। एक के ऊपर दूसरा माला लगभग उसी पैमाईश का है लेकिन नीचे के माले में सामने की दीवार में चार खिड़कियां और चार आलेनुमा गुम्बदाकार के झरोखें हैं जो पारदर्शी शीशों से सज्जित हैं। इस प्रकार चहूं ओर ये शीशेदार खिड़कियां एक प्रकार से गैलरी बनाती हुई स्थापित हैं। सामने प्रवेश द्वार के आगे एक पोर्च है जो स्तम्भाकार बाहिरी भीत्तियों पर स्थित मेहराब के आकार में समानान्तर आधार पर पोर्च की छत लिए है जो सामान्य छत से बाहर निकल कर गैलेरी बनाती दीखती है। ऊपर के माले की बाहिरी भीत्तियां चहूं ओर से खिड़कियों द्वारा सज्जित हैं जिन्हें पारदर्शी शीशों से मढ़ा गया है। वस्तुतः सर्दियों में धूप सीधे भीतर कमरों में आ सके इसके

लिए कमोपेशतर ये खिड़कियां ग्लास हाउस की कमी पूरी करती हैं ताकि सर्दियों में बर्फीली हवायें और झझांवत भीतर न आ सके लेकिन गुणगुणी धूप का मज़ा अवश्य लिया जा सके।

इमारत के पिछलं भाग में ऊपरी माले के ऊपर दोनों कोनों में चर्च के गुम्बदों की तरह दो टॅरेंटनुमा गुम्बद सजे हैं। बाहर आंगण को टायलों से मढ़ कर खूबसूरत बनाया गया है।

यह भवन आजकल एमस, आल इण्डिया मेडीकल इन्स्टीट्यूट,नई दिल्ली का अतिथि–गृह है जहां अक्सर डॉक्टर तथा दूसरे फेकल्टी सदस्य यहां छुट्टियों में या कार्यालयी प्रवास के दौरान आकर ठहरते है।

■■■

चेडविक भवन और प्रकृति का गुम होता संसार

चेडविक भवन कपूरथला के माननीय सरदार चरणजीत सिंह,जो कि राजघराने से सम्बंधित थे का भवन था। चेडविक का निर्माण जनरल जी0एफ0एल0मार्शल ने किया था जो कि आठवें दशक में पंजाब के मुख्य अभियन्ता थे और जिन्होंने पर्यावरण को लेकर बहुत कार्य किया था। उनके प्रकाशन–'वर्डस नेस्टिंग इन इण्डियां' तथा 'वटरफलाईस ऑव इण्डिया,बंगलादेश एवं सिलोन' आठवें दशक में खूब चर्चित हुए थे। लेडी डफरिन ने जुलाई 1885 ई में अपनी डायरी में लिखा था–

'मैं मेजर मार्शल को मिलने गई थी ताकि उनका तितलियों का संग्रह देख सकूं। इनमें से अनेक बहुत प्यारी थीं। इनमें से कुछ अनेक रंगी छटा बिखेरे बाहर अपने को बंद रखें थीं कि बिल्कुल पत्ते के आकार की लगतीं थीं ताकि अपने दुश्मनों को छका सकें। ये तितलियां आस पड़ोस में बनने वाली कच्ची शराब की इतनी आदी हो चुकीं थी कि शराब के खाली ड्रमों पर बैठी रहतीं थीं और जल्दी ही पकड़ में आ जातीं थीं।'

इस भवन को बाद में मैथ्यू नामक पादरी ने खरीद लिया था– लगभग नब्बे के दशक में और 1904 में इसे सुधार कर बड़ा किया गया ताकि यह शिमला के अन्यतम भवन के रूप में माना जाए और यह उस रूप में चर्चित भी हुआ। इसके बगीचे को तहदार टेरेसिस को एक अंग्रेज माली ने सुधारा था जिसने अनेक वर्ष इस कार्य में वर्सेल्ले में बिताकर अनुभव बटोरा था।

इस स्थान के बारे में श्रीमती एवेर्रड कोट्स, जिनका पूरा नाम सराह जैनेटे डंकन था, लिखती हैं–

'चेडविक शिमला में अति सुन्दर स्थान पर निर्मित है और इसका बगीचा अति सुन्दर और करीने से रखा गया है। फलों के वृक्ष सेवों से लदे पड़े हैं जो धीरे धीरे गुलाबी रंगत से सुर्ख हो रहे हैं। और ग्रीष्म ऋतु के बाद में खिलने वाले फूल पृष्ठ भूमि में एक सुन्दर सतह बनाते हैं जो आकाशीय पर्वतीय श्रृंखलाओं को ढकती धुंध में विलीन हो जाती है। किसी भी बगीचे का आदर्श स्थल इससे बढ़कर नहीं हो सकता– तीन दिशाओं में पर्वतीय विहंगम दृश्य दृष्टीगोचर होता है, कुछ पास दिखते हैं तो कुछ दूर और चौथी दिशा में वृक्षों का संसार लदा है जो बाकी वनस्पति को ढक देते हैं। यह सारा वातास बड़ा अद्भुत है खासकर उस व्यक्ति के लिए जिसे हर समय यह आशंका रहती है कि उसे कोई खिड़कियों में में से झांक कर देख रहा है। विशेषकर हिमालयी हिमदर्शन यहां से किए जा सकते हैं।'

और लेडी चेल्म्सफोर्ड ने तो चेडविक के बगीचे में अनेक तस्वीरें बनाई थीं। इस भवन के पास जो आवशार पड़ते है उन्हें 'चेडविक फाल' का नाम दिया गया । और जिस पठार पर यह भवन स्थित है उसे 'चेडविक हिल' का नाम दिया गया।लेकिन दुःखद स्थिति यह है कि वर्तमान में यह चेडविक भवन एक भुतह महल की तरह भग्नावशेष इमारत में बदल चुका है। आकाशवाणी की कालोनी इसी परिसर में बनाई गई है–शायद यह वही बगीचा होगा जिसका ज़िक्र श्रीमती एवेर्रड कोट्स और लेडी डफरिन ने किया है। पर वर्तमान में न बगीचा है न वह खुशनुमा वातावरण अथच कॉलोनी के तौर पर कंकरीट का जंगल उग आया है और उसके दायें बायें वन प्रान्तर में देवदार, बांज और बुरांस के वृक्ष उमग रहे हैं। बंदरों का कोलाहल है और लंगूरों की खड़मस्ती है। हां बसंत के आगमन पर लगभग पंद्रह दिनों तक अवश्य लगता है कि हम कहीं दैवीय स्थान में पहुंच गए हैं जब बुरांस के वृक्ष फूलकर यौवन के उन्माद में भरे–पूरे फूलों को उमगाते हैं तो लगता है सारे जंगल में आग लगी हो। सुर्ख फूलों की छटा हर ओर अपनी आभा बिखेरती रहती हैं उस सर्दी में भी, अनेक बार बर्फ पड़ी होने पर भी वे खूब फूलते हैं, बंदर और लंगूर बड़े मज़े से उन्हें बीनकर खाते हैं। कहते हैं इन फूलों का

रस हृदय रोगों के लिए अति लाभकारी होता है। यही कारण है कि बंदरों और लंगूरों को कभी हृदय रोग नहीं होता। मैंने अपने क्वार्टर से यह मंज़र देखा है जब लंगूर एक वृक्ष से दूसरे पर कूदते हैं और जब दूरी ज्यादा पाते हैं तो बीच में से ही लौटकर अपनी पुरानी जगह पर आ जाते है। यह अद्भुत मंजर यहीं पर देखा है।

पर्वतों के दृश्य की जो कल्पना लेडी चेल्सफोर्ड ने की है वे तो दिखाई नहीं देते अथच दूर लक्कड़ बाज़ार के ऊपर कंकरीट का जंगल अवश्य दिखाई देता है। हो सकता है तब ये इमारतें न बनी हों पर अब सब कुछ गड़बड़ हो आया हैं और 'चेडविक फाल' जो कभी सारा वर्ष सजीव रहता था अब केवल बरसातों में रवां होता है अन्यथा मात्र सूखा जंगल है।

छुट्टियों में बच्चे जब इधर आये तो 'चेडविक फाल' को देखने के लिए तरसते रहे पर उन्हें एक बूंद पानी भी देखने को नहीं मिला। यह शायद सभी स्थानों की नियति है।

चेडविक भवन के बारे में मेरे कुछ पुराने अनुभव भी जुड़े हैं। एक मेरे ही सहयोगी ने बड़ी दिलचस्प बात बताई कि एक बार एक मंत्री महोदय चेडविक भवन को इसलिए देखने आए कि कभी गान्धी जी यहां पधारे थे और वे गान्धी जी के अनन्य भक्त थे। हमारे एक पूर्व निदेशक भी मंत्री महोदय के साथ अन्य अफसरों के संग हो लिए थे कि किसी ने कहा कि आप कुछ बोलते क्यों नहीं ! तब तक मंत्री महोदय ने अपना सामान्य ज्ञाण दर्शाया,'सुना है गान्धी जी यहां पर भी अपनी बकरी के साथ आये थे।' उस समय हमारे केन्द्र निदेशक महोदय को पता नहीं क्या सूझी कि झट से पास पड़ी हुई एक रस्सी उठाकर बोले,' हां और इस रस्सी से वे अपनी बकरी को बांधते थे।' तो सभी मन ही में ही मुस्कुराने लगे।

■■■

वाईल्ड फलॉवर हॉल

मध्यकालीन शिमला तथा उसके आसपास के स्मारकों में एक स्मारक वाईल्ड फलावर भवन का भी है। यह भवन महासु पर्वतीय श्रृंखलाओं पर स्थित है। यह अनेक वर्षो तक श्री बाट्टेन की वैयक्तिक जयदाद रहा है, जो लॉर्ड लिट्टन के वैयक्तिक सचिव थे।

लेडी डफरिन ने अपने पति के वॉयसराय होने पर जिंदगी का निचोड़ लिखा है–'हमें आठ मील तक घुड़सवारी करनी पड़ती थी कि हम वाईल्ड फलावर हॉल पहुंचते। यह 'कण्ट्रीविला' शिमला से एक हज़ार फुट ऊंचा था। यह एक पहाड़ी के उन्नत शिखर पर स्थित है और चीड़ के खुशबूदार वृक्षों के बीच टिका है। पर्वतीय दृश्य इस स्थान से अति अद्भुत लगते हैं।' उसी समय लार्ड किचनर जो कि ब्रिटिश आर्मी के कमाण्डर–इन–चीफ थे, शिमला पहुंचे और पहला कार्य 'वाइल्ड फलावर हाल' की 'लीज' को अपने हाथ में लेने का उन्होंने किया। और उन्होंने हज़ारों रुपये खर्च कर दिए इसके सुधार के लिए। उसने घास के मैदान तैयार करवाये और अनेक गुलाब के बगीचे लगवाये। जब वह भारत छोड़ गया तो 'वाईल्ड फलॉवर हाल' गोल्डस्टेन परिवार द्वार श्रीमती होट्ज को बेच दिया गया। एक पुरानी इमारत गिराकर इसे यह नई इमारत बनाई गई थी जो मैदान से आने वाले पर्यटकों के लिए और शिमला के लोगों के लिए जो सप्ताहांत गुजारने के लिए वहां आने चाहते थे के लिए।

'वाईल्ड फलॉवर' एक पुराना भवन था, महासु पर्वतीय श्रृंखलाओं पर स्थापित और शिमला से लगभग छः मील दूर। जब कमाण्डर किचनर ने यह भवन खरीदा तो इसमें अनेक सुधारों के साथ अनेक फूलों को भी अपने लॉन में सुशोभित किया। उसके बारे में मशहूर था कि यदि कोई मुश्किल से मुश्किल काम भी उससे करवाना हो तो उसके बगीचे की प्रशंसा कर दो। अपने लॉन के रख–रखाव के लिए वह स्वयं तो लगता ही था अथच अपने सभी नौकरों, बटलरों और मालियों को भी लगा देता था। उसकी सबसे बड़ी शिकायत यह थी कि ये पौधों और झाड़ियां बढ़ा होने में इतना संमय क्यों लेते हैं।

वाईल्ड फलॉवर हाल तक हिन्दोस्तान–तिब्बत रोड से होते हुए संजोली का टन्नल पार कर जाया जाता था। इस टन्नल को मेजर ब्रिग्गस ने 1850 ई0 में बनवाना शुरू किया था और 1851 की सर्दियों में सम्पन्न हुआ था। यह टन्नल 560 फुट लम्बा है और ठोस चट्टानों को काटकर बनाया गया है और इसे बनाने वाले दुर्भाग्यवश कैदी ही थे। दस्तावेजों के अनुसार इसका उत्खनन करते समय अनेक हज़ार कैदी और मजदूर लगाए गए थे। टन्नल की छत को अनेक कंक्रीट के शहतीरों से सहारा दिया गया था और बन जाने पर भीतर सफेदी की गई थी ताकि पूरी तरह से रोशन रहे पर ऐसा हुआ नहीं। दुपहर को भी यहां अन्धेरा रहता था। सन्ध्या के समय इसे अनेक रोशन लालटेनों से आलोकित किया जाता था जो सारी रात जलती रहतीं थीं।

शिमला से मशोबरा तक के ठीक आधे रास्ते पर, इस टन्नल से लगभग आधा मील दूर, टोल–टैक्स का कार्यालय था जहां हर यात्री, रिक्शे, टांगे, घोड़े, खच्चर, भैंसे, बैल, बकरी नीज यह कि जो भी इस टन्नल से गुजरता था उसे टैक्स देना पड़ता था। टैक्स तीन पैसे से छः आने प्रति प्राणि होता था। यह चुंगीघर हर वर्ष निलाम होता था। 1925 ई0 में इसकी निलामी दस हजार तक गई थी जो उन दिनों बहुत पैसा होता था–वर्तमान में लाखों में पड़ती है।

केवल टन्नल ही नहीं अथच मशोबरा तक सड़क कैदियों की सहायता से बनवाई गई थी। इस ओर अपनी पुस्तक,'रिमिनिसेंसिज ऑव अ' बेंगाल सिविलियन' जो 1886 ई0 में प्रकाशित हुई थी एडवर्ड्स से लिखा है–

'कैदियों को कर्नल कैनेडी के आदेशानुसार कण्ट्री साईड में गवर्नर जनरल के नए भवन तक सड़क बनाने हेतू लगाया गया था। उनकी सहायता से ही कुछ महिनों में ही ठोस चट्टानों को काटकर दो सौ फुट से भी लम्बा टन्नल बनवाया गया था। इस टन्नल की चौडाई इतनी थी कि दो घुड़सवार मज़े से एक साथ गुजर सकते

थे। मेरी अपनी जानकारी के अनुसार यह पहला टन्नल था जो भारत में पब्लिक के लिए बनाया गया था। सब से बड़ी दिलचस्प बात यह थी कि किसी भी कैदी अथवा मजदूर को इस कार्य दौरान चोट नहीं आई अथच कैदियों ने प्रसन्नचित्त होकर इसकी खुदाई की थी जैसे उनके लिए यह सुखद कार्य था—जेल की सीलन भरी, अन्धेरी कोठरियों से ज्यादा सुखद तथा खुली हवा लिए हुए।'

लेकिन इस टन्नल के बन जाने के बाद जनरल किचनर के साथ एक हादसा हो गुजरा—

शिमला से वह जब वाईल्ड फलॉवर हॉल टन्नल से होकर जा रहा था तो सामने से एक मजदूर अपने को बचाता हुआ एक ओर हो लिया। भीतर अन्धेरा था। किचनर का घोड़ा मजदूर को देखकर थोड़ा विदक गया और किचनर का पांव शहतीर के साथ फंस कर टूट गया। घुटने की दोनों हड्डियां टूट गई थीं। जनरल किचनर तड़पता हुआ वहां पड़ा रहा। मज़दूरों को जब पता चला कि 'जंगी लॉट साहब है 'तो वे डर के मारे भाग लिए। काफी देर के बाद जेन, एक युरोपवासी ,रिकशा और कुल्ली लेकर वहां पहुंचा और उसे बड़ी कठिनाई से स्नोडॅन पहुंचाया गया जहां कर्नल टेट, मेजर क्लार्क तथा ग्रीन, जो कि शिमला के सिवल सर्जन थे, तुरंत कार्य में जुट गए थे। इस घटना के बाद इस टन्नल को लगभग दुगुना चौड़ा कर दिया गया और लगभग अस्सी हज़ार रुपये खर्च कर बिजली की रौशनी की व्यवस्था की गई थी।

एडवर्ड जे0 बक्क ने 'शिमला पास्ट एण्ड प्रैजंट' में अपने अनुभवों और संस्मरणों का वर्णन किया है जो उन्होंने जनरल किचनर के साथ से अर्जित किए थे— किचनर, 'एक ऐसा व्यक्ति था जो कर्मनिष्ठ था.. ... उसने सैकड़ों पौंड 'वाईल्ड फलॉवर हाल के लॉन पर खर्च कर दिए थे, बगीचे की टरेसिज़ को संवारने में ,लेकिन भवन के लिए एक धेला भी वह खर्च नहीं करता था। जब एक कार्य सम्पन्न हो जाता था तो वह थोड़ा ठहर कर अपने कार्य की मन ही मन समीक्षा करता था ओर एक बार फिर दूसरे कार्य में जुट जाता था। वह किसी भी कार्य में असफल होना नहीं जानता था।

बगीचे तथा लॉन को संवारते समय इसके नौकर चाकर भी उसके साथ होते थे। पर उसके अंग्रेज बटलर ने यह कहते हुए इस्तीफा दे दिया था कि यह कार्य उसकी नौकरी का हिस्सा नहीं है। पर देसीय नौकर हर समय, हर प्रकार के कार्य में उसका साथ देते थे।

वस्तुतः लार्ड कर्ज़न और जनरल किचनर में अस्तित्व कां विवाद उठा खड़ा हुआ था कि बड़ा कौन है। लॉर्ड कर्ज़न वॉयसराय के रूप में इम्पीरियल राज्य का प्रतिनिधि था तो जनरल किचनर भारत में ब्रिटिश आर्मी का कमाण्डर–इन–चीफ। एक समय ऐसा था जब गर्वनर जनरल और कमाण्डर इन चीफ एक ही होता था। बाद में जब ये दो अलग ओहदे दो वजूदों में बंट गए तब भी कार्य सुचारू रूप से चलता रहा था। पर जनरल किचनर स्वाभिमानी तो था ही किसी सीमा तक अभिमानी और अपने आप को वायसराय से ऊपर समझता था। अनेक युद्धों में सफलता पाकर उसका सर घमण्ड से और ऊंचा हो आया था। जब वायसरीगल लॉज में वायसराय का आवास बना तो किचनर ने पहले तो कमाण्डर–इन–चीफ के आवास गृह स्नोडॅन को सुधार के नाम से पूरी तरह बदल डाला और वहां नित्य बाल रूम नृत्य और पार्टियां होनें लगीं। बाद में किचनर ने स्वयं 'वाईल्ड फलावर हॉल' खरीद कर वायसराय के निवास स्थान से भी भव्य इसे बनाना चाहा। इस भवन में जो फर्नीचर लगाया गया वह 'फ्रेन्च एन्टीक' था और रानी मेरी की याद ताज़ा कर देता था जिसे 'फ्रेन्च रेवोल्यूशन' में मार डाला गया था।

रिज से लगभग 9 किलोमीटर दूर 'वाईल्ड फलॉवर हॉल 7400 फुट की ऊंचाई पर स्थित है जो वायसरीगल लॉज से लगभग 200 फुट ऊंचा है। 1916 ई0 में किचनर इंग्लैंड में इहलिला त्याग गया पर उसका बनाया हुआ यह भवन आज भी अमर है और एक स्तरीय होटल के तौर पर जाना जाता है। कुल ग्यारा काटेज हैं जिनमें फेमिली सुइट्स डबल बेड तथा सिंगल बेड रूम हैं। सभी करीने से सज्जित हैं और विशाल लॉन में सिल्वर ओक के इलावा अनेक अनुपलब्ध पौधे एवम् वृक्ष हैं जो जनरल किचनर के शोक को ताज़ा कर देतें है।

■■■

रिट्रीट, मशोबरा

रिट्रीट का शाब्दिक अर्थ है पीछे मुड़ना, पीछे हटना, रिटायर होना, वैयक्तिक विराम आदि। वस्तुतः 'रिट्रीट' नामक जिस भवन की हम बात करने जा रहें है वह निश्चय ही एकांत–प्रिय लोगों के लिए–वैयक्तिक कार्यों की पूर्ती अथवा विश्राम–स्थल के तौर पर लिया जा सकता हैं जहां कोई भी, किसी भी प्रकार का खलल न पड़े।

रिट्रीट मशोबरा में स्थित अति रमणीय स्थल पर निर्मित एक ऐसा भवन है जहां आजकल भारत के राष्ट्पति यदा–कदा अपनी छुट्टियां बिताने आते हैं।

'रिट्रीट कभी, 1847 ई0 के आसपास बंगाल के सिविल सर्वेंट विलियम एडवर्ड की जयदाद थी। बाद में वे शिमला हिल स्टेट्स के सुपरिनटेंड बने और फिर उच्च न्यायालय के न्यायाधीश होकर आगरा चले गए।

1850 ई0 तक इस भवन को 'ओकलैंड' की संज्ञा से नवाजा जाता था क्योंकि यह भवन तथा इससे जुड़ी हुई जमीन को घेरे ओक के वृक्षों का जंगल था। उन दिनों यह एक मंजिला इमारत थी और उत्तर दिशा में एक विशाल वरामदा था जहां से हिम मण्डित शिखरों को देखा जा सकता था। वर्तमान में स्थित लॉन तथा करीने से सज़े बगीचों की बहार नहीं थी।

एडवर्ड ने इस भवन को लॉर्ड विलियम हे को बेच दिया था और उसने दूसरी मंजिल चढ़ाई थी। इसके बाद यह इमारत सर एडवर्ड बक्क के हाथ लगी जिसने इसके बारे में सन् 1904 में लिखा–

'मेरा परिचय 'रिट्रीट' के साथ मेई 1869 ई0 से है जब मैं जंगलों से गुजरता हुआ यहां पहुंचा था। यह हेमंत की ऋतु थी। ओक के वृक्ष उस समय हेमंत के रंगीन चोगे से सजे मधु ऋतु की प्रतीक्षा कर रहे थे– और जब मैं इस घर के सामने बैठा, दृश्य के सौन्दर्य से अंधमस्त था, मैंने कस्म खाई कि जब भी आईदा मेरी किस्मत मुझे शिमला लाई तो ये जंगल मेरे होंगें। भाग्य मुझे 1881 ई0 में यहां खींच लाया और एक माह के भीतर ये जंगल मेरे थे। तब यह घर 'लाटी साहिब की कोठी' कहलाता था। कुछ दिनों बाद मुझे पता चला कि लाटी' का अर्थ था 'लार्ड विलियम हे' जिन्होंने इस कोठी को अनेक वर्षो तक अपना घर बना रखा था जब तक वे शिमला हिल स्टेट्स के कमीशनर रहे। यद्यपि यह घर उन्होंने नहीं बनाया था। इसे एक डॉक्टर ने तैयार किया था। लेकिन यह घर उनके नाम पर था। इस घर और इसके आस–पास के जंगल कोटी के राजा ने दिए थे। लॉर्ड विलियम हेय की विदाई पर इसकी मलकीयत अनेक हाथों से होकर गुजरी। अनेक विशिष्ट व्यक्तियों द्वारा इसे किराए पर लिया गया जिनमें से एक कमान्डर–इन–चीफ सर विलियम मैन्सफील्ड भी थे और बाद में सर डायटरिच ब्रैडिस, इन्सपेक्टर जनरल फारेस्ट ने इस भवन को किराए पर लिया था। 1881 ई0 में इसकी मलकीयत लियोनेल बर्कले, जो कि एक सरकारी मुलाज़िम था, उसकी विधवा के नाम थी। जब मैं 1881 ई0 में यहां पहुंचा उसने मुझे 15000 रुपये में बेचने की बात कही। कोटी का राजा जो इसकी जमीन का मात्र एक सौ रुपये सालाना किराया लेता था इसे खरीदने के लिए तैयार था लेकिन इससे पहले कि वह सामने आता मैंने इसे खरीद लिया था। फिर एक झंझट सामने आया कि इसकी सीमा कैसे निर्धारित की जाए इस अवसर पर लाटी साहब का चौकीदार काम आया। उसे जब अपनी जगह पर नौकरी रहने का आश्वासन दिया गया तो उसने उन पुरानी बुर्जियों को, जो सीमा बनातीं थीं और मिट्टी में दब गईं थीं, ढूंढ निकाला। नक्शा तैयार किया गया और यह पाया गया कि यह भवन तथा इसके साथ लगती 300 एकड़ धरती इस जयदाद के साथ संलग्न थी। वह चौकीदार सारी उम्र दयानतदारी से अपना कार्य करता रहा।'

मौलिक दस्तावेजों में कुछ शर्तें दर्ज थी कि 'शिमला तथा मशोबरा से आने वाले दो मार्गो को स्थानीय लोगों की सुविधा के लिए महासु पहाड़ी तक जोड़ दिया जाए तथा उन्हें कोटी स्टेट के वासियों के लिए खोल दिया जाए तथा कोई भी पेड़ राजा कोटी की अनुमति के बिना नहीं काटा जाए और कोई भी पशु इसकी सीमा में काटा नहीं जाए।'

इस जयदाद का पुनः निरिक्षण कर एक बार फ्रेश डीड तैयार की गई। इस डीड में बाकी की दो शर्तें तो वही रहीं अथच जमीन का किराया 200 रुपये सालाना कर दिया गया इस शर्त पर कि कुछ पेड़ काटने की अनुमति दी जाए। हां एक नई शर्त इसमें शुमार कर दी गई कि राजा को समय से पहले खाली कराने का अधिकार होगा। लेकिन इमारत का निरीक्षण करने पर पता चला कि यह सुरक्षित नहीं थी। इसकी नींव जवाब दे रही थी और दीवारों में दरारें पड़ गई थीं परिणामतः कैंची के दो फाड़ों की तरह उनके बीच दरारें बड़ी होतीं चलीं गई थीं– लगता था कि शीघ्र ही सम्भाला नहीं गया तो नीचे आ पड़ेगी और। अतः वृक्ष काट कर उनके स्तम्भों से छत को सहारा दिया गया तथा नींव को ठोस पत्थरों से दुबारा भरा गया और इन्हें आगे पीछे से दीवारों से सहारा दिया गया। इमारत में भी अनेक सुधार किए गए–एक नया हाल कमरा बनाया गया जिसका प्रवेश द्वार अलग था। बिलियर्ड का कमरा और 'ग्रीन हॉउस' शुमार किए गए। ऊपर वाला बड़ा हाल कमरा जो कभी इस्तेमाल में नहीं आता था–उसके चार कमरे बना दिए गए।, बिलियर्ड के कमरे के ऊपर एक अन्य कमरा बनाया गया। इसका लाभ यह हुआ कि इस भवन को दो हिस्सों में बांटा जा सकता था–नीचे की मंजिल और ऊपर की मंजिल दोनों मंजिलों में रिहायश अपने आप में मुकम्मल थी। परिणामतः ऊपर की मंजिल किराए पर दे दी जाती थी और निचली मंजिल में मालिक खुद रहते। ऊपरली मंजिल में सर अलबर्ट तथा उनका परिवार चार वर्ष तक रहा और उनके बाद चार ही वर्ष तक सर फ्रडेरिक राबर्ट्स तथा उनका परिवार रहा। सर राबर्ट्स ने अपने संस्मरणों 'फार्टी वन ईयर्स इन इण्डिया' में 1862 ई0 का जिक्र करते हुए लिखा है–'नये वायसराय लार्ड कैन्निंग कलकत्ता में रहते थे लेकिन सर हयूज रोज़ वहां काफी रह चुके थे। अतः वे इस वर्ष पहाड़ पर आये और बार्नस कोर्ट में अपना आसन जमाया।......... हम ज्यादातर मशोबरा में रहते थे जो पर्वतीय क्षेत्र में एक खूबसूरत स्थल था– शिमला से छः मील दूर, जहां चीफ का घर था और हमारा सौभाग्य था कि जब वह उसे इस्तेमाल नहीं कर रहा होता हमारे लिए छोड़ देता था।'

1864 ई0 में अपने संस्मरणों में सर राबर्ट्स ने आगे फिर लिखा है–'सर हयूज रोज़ एक अच्छे मित्र साबित हुए, उन्होंने मशोबरा में अपने घर को मेरी पत्नी के हवाले कर दिया इस प्रकार उसे एक सेहत अफजा मुकाम मिल गया जिसे वह जरूरत मुताबिक इस्तेमाल करती रहती थी। यद्यपि मैं कमाण्डर–इन–चीफ बनकर शिमला आ चुका था तथापि मेरी पत्नी सोचती थी कि शिमला के शोर–शराबे से 'रिट्रीट' में कभी कभी लौटना अच्छा लगेगा।'

सर एडवर्ड बक्क लिखतें हैं–'मै 'रिट्रीट' को अक्सर सप्ताह के अंत में इस्तेमाल करता था। हां व्यवसाय के दिनों में ज्यादा भी ठहर लेता था क्योंकि यह एकांत में स्थित ऐसा भवन था जो ढेर सारी आक्सीजन देता था और जो कि शिमला के भीड़–भाड़ वाले इलाके तथा उसके धूल धुसरित बाज़ारों से अनेक तरह से अच्छा था। यहां तक कि कार्यालयी बैठकों के लिए भी रिट्रीट जैसा सुन्दर और कोई स्थान नहीं हो सकता था।'

एडवर्ड आगे लिखते हैं– 'मै तथा मेरे किराएदार 1896 ई0 तक रिट्रीट में रहे। 1896 ई0 में लार्ड एलगिन मेरे किरायेदार होकर रहे। चूंकि अब मैं रिटायर होने वाला था अतः सरकार ने चाहा कि वायसराय की रिहायश के लिए यह भवन सरकार को दे दिया जाए। कोटी का राजा किसी भी प्रकार से इस स्थान को समय से पहले खाली करवाने के अधिकार को छोड़ना नहीं चाहता था। अतः सरकार को यह भवन तथा इससे लगी जगह बेची

नहीं गई अपितु मुस्तकिल लीज़ पर दे दी गई। जिसमें थोड़ा परिवर्तन कर वॉयसराय के रहने योग्य बनाया गया इससे पहले मार्ग लाने का प्रयास किया गया। एस्टेट में 1896 ई0 तक लगभग दस मील लम्बाई के मार्ग तैयार हो चुके थे। विशेष पौधे नारकण्डा तथा हाट्टू से लाए गए– जब मैंने यह भवन छोड़ा उस समय तक मैपल की चार किस्में, सिल्वर फर, हेजल नट ट्री और रिगांल बांस के वृक्ष आदि........अनेक अंग्रेजी पौधे भी मंगवाये गए जो अति सफल हुए जिन्हें बाद में शिमला में हेज के तौर पर इस्तेमाल किया गया। मशोबरा ग्रांऊड को भी पैदावार में प्रयोग करने के लिए इस्तेमाल किया गया जिसमें युरोपीय फल और सब्जियां लगाई गईं'.......

'अनेक वर्षों तक जब मैं रिट्रीट का मालिक रहा लोगों को पिकनिक के लिए इन जंगलों में आमंत्रित करता रहा। सीपी मेले के दौरान मेले में जमा होने वालों को नाशता भी करवाता रहा। इनमें एक पिकनिक–'पिक्कल्स कोर्ट–मार्शल' के नाम से चर्चित हुई। इसमें सर विलियम मैंसफील्ड कमाण्डर–इन–चीफ द्वारा कैप्टेन ई0 एस0 जरविस के विरुद्ध इलजाम लगाया गया कि उसने रिट्रीट में महामहिम के दैनिक उपयोग में आने वाली चीजों, वाईन तथा दूसरी स्टोर की चीजों में हेर फेर करने का अपराध किया है इस जांच में ब्रिगेडियर जनरल ब्रांइड अध्यक्ष थे तथा सात कर्नल, चार ले0 कर्नल, तीन मेजर सदस्य थे। कैप्टेन डब्ल्यू के0 एल्ले जो बाद में ले0जनरल भी हुआ, इस जांच की पैरवी कर रहा था। कैप्टेन के विरुद्ध इलजाम था कि उसने एक सौ शेरी की बोतलें, 61 शैंपेंन की बोतलें, 88 क्लेंट बीयर की बोतलों के साथ–साथ दैनिक इस्तेमाल में आनी वाली चीजों में एक अचार की बोतल भी थी,को अनाधिकारिक तौर पर इस्तेमाल किया था। उस पर अवज्ञा का भी इलजाम था। उसने इसके विरोध में आवाज उठाई और उसकी पैरवी की विलियम टेलर ने। वह अन्य अपराधिक मामलों से तो वरी हो गया पर अवज्ञा के लिए उसे अपनी नौकरी छोड़नी पड़ी। उसे 1800 पौऊंड बकाया राशि देकर विदा किया गया। यह कोर्ट मार्शल चर्चा का विषय बन गया और इसने वायसराय के रुतबे को भी ठेस पहुंचाई। और इसे शिमला, भारत जहां तक कि इंग्लैण्ड में भी समाचार पत्रों में खूब उछाला गया। ओर व्यंग्य से इसे 'पिक्कल्स कोर्ट मार्शल' की संज्ञा से जाना गया।

एक अन्य घटना की ओर संकेत करते एडवर्ड लिखते हैं कि जब 'रिट्रीट' में लॉर्ड राबर्टस रहते थे एडवर्ड के मेहमान वायसराय लॉर्ड डफ़फरिन थे। उस पार्टी में कैवलेरी के कर्नल और उसकी पत्नी भी शुमार थे। पार्टी के बाद कर्नल की पत्नी एकदम बीमार हो गई तो लेडी रार्बट ने सलाह दी कि डॉक्टर को बुलाना चाहिए। टेलीफोन या वायरलैस का कोई प्रावधान नहीं था। कर्नल का अपनी अस्वस्थ पत्नी के साथ रहना जरूरी था अतः जनरल एडवर्ड ने शिमला जाने की पेशकश की। रात्रि हो चुकी थी घुड़सवारी करने का खतरा न मोल लेकर वे खच्चर पर शिमला रवाना हो गए। पर पीछे लेडी कर्नल की हालत और बिगड़ गई तो स्वयं वॉयसराय डफ़फरिन भी खच्चर पर सवार होकर हड़बड़ी में शिमला रवाना हो गए। डॉक्टर के आने तक लेडी कर्नल सम्भल गई थी और इलाज से तुरंत ठीक हो गई। यह एक ऐसा अवसर था जब एक महिला के लिए चिंतित वॉयसराय और कमाण्डर–इन–चीफ खच्चरों पर सवार होकर रिट्रीट से शिमला पहुंचे थे।

वॉयसराय की सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए रिट्रीट की ओर जाती सड़क पब्लिक के लिए बंद कर दी गई और लॉर्ड मिंटों ने तो रिट्रीट के आस–पास के जंगलों तक को सील कर दिया था। परिणामतः अनेक प्रकार के विरोध हुए। सारा शिमला रोष में जाग उठा। सबसे पहले कोटी के राणा में जबर्दस्त विरोध किया कि इस जयदाद का मालिक होने के नाते उसकी जमीन–जयदाद में दखल किया गया है। जो सड़क आम रियाया के लिए गत साठ वर्ष से खुली पड़ी थी उसे बंद कैसे किया जा सकता हैं। शिमला हॉऊस प्रापराईटर्स़ ऐसोसिएशन, पंजाब ट्रेडर्स एसोसिएशन और जहां तक कि सभी मशोबरा और महासु निवासियों ने हस्ताक्षर कर इसके विरोध की मुहिम चलाई। सरकारी कर्मचारियों, बैंक के कर्मचारियों, होटल के कर्मचारियों

नीज़ यह कि सभी ने एक जुट होकर इस आदेश के विरोध में मुहिम में भाग लिया। परिणामतः सरकार को झुकना पड़ा। लार्ड हार्डिंग, जो इस घटना के लगभग एक माह बाद वॉयसराय बन कर आया ने दो आदेश दिए पहला यह था कि एक सड़क रियाया के लिए खोल दी जाए और उन लोगों को, जिन्हें इस आदेश से नुक्सान हुआ था भरपाई की जाए और बाद में सरकार की ओर से उनसे क्षमा मांगी गई।

1905 ई0में कर्नल ए0एच0एम0एंडवर्ड जो कि 'रिट्रीट' के मालिक विलियम एडवर्ड का बेटा था लार्ड कर्ज़न का मिलीटेरी सचिव बनकर आया। उसने इस भवन और इससे लगती ज़मीन का काफी सुधार किया।

1924 ई0 में लेडी रॉबर्टस शिमला आई और अपने आपको 'रिट्रीट' देखने के लिए रोक नहीं सकी जिसे वह इतनी अच्छी तरह जानती थी। बाद में, स्वतंत्रत भारत में यह भवन राष्ट्पति की आरामगाह बना और वर्तमान तक यह राष्ट्पति की आरामगाह का फर्ज निबाह रहा है। इसका चार्ज सुरक्षा सचिव के पास है।

■■■

अलेक्जेंडर कोर्ट्ज का बंगला और दुलर्भ वृक्ष

अर्ल ऑव डफ्फरिन शिमला के इतिहास के साथ जुड़े 14वें वायसराय थे। इन्हें लॉर्ड डफ्फरिन के नाम से भी जाना जाता है। लॉर्ड डफ्फरिन का कार्यकाल, 13 दिसम्बर 1884 ई0 से 9 दिसम्बर, 1888 ई0 तक अति घटनाओं से परिपूर्ण रहा। इन्हीं के समय वायसराय भवन पीटर–हॉफ से 'वायसरीगल लॉज' में स्थानातरण हुआ। यद्यपि 'वायसरीगल लॉज' की नींव लार्ड रिपॅन के समय ही पड़ गई थी तथापि उन्होंने इसके निर्माण में इतनी दिलचस्पी नहीं दर्शाई जितनी दिलचस्पी लार्ड डफ्फरिन, यदि यह कहा जाए कि लेडी डफ्फरिन ने दर्शाई थी तो गलत नहीं होगा। लेडी डफ्फरिन द्वारा लिखी गईं डायरियों तथा रोजनामचों में पीटरहॉफ, जो कि 'वायसरीगल लॉज' के वजूद में आने से पहले वायसरायों की रिहायशगाह थी, के प्रति लेडी डफ्फरिन के उद्‌गार साफ झलकते हैं कि वह इस छोटे भवन से सन्तुष्ट नहीं थी अथच शीघ्र अति शीघ्र 'वायसरीगल लॉज' के भवन के निर्माण के लिए लार्ड डफ्फरिन को प्रेरित ही नहीं करती थी अपितु उकसाती रहती थी।

लेडी डफ्फरिन अति शौकीन और घुमक्कड़ महिला थी जो अपने रुतबे के अनुसार रहना और मनोरंजन चाहती थी। उन दिनों 'पीटर हॉफ' में खूब पार्टियों का आयोजन रहता था जो बाद में 'वायसरीगल लॉज' की शोभा बनने लगीं थीं। मई और जून के गर्म महिनों में डफ्फरिन परिवार मशोबरा और 'वाईल्ड फलावर हॉल' में चला जाता था।

'हमें शिमला से लगभग आठ मील तक घुड़सवारी करनी पड़ती थी 'वाइल्ड फलॉवर हॉल' पहुंचने के लिए। यह ग्रामप्रान्तर में बना भवन शिमला से लगभग एक हज़ार फुट ऊंचा था। यह एक पहाड़ी के शिखर पर स्थापित था जहां चीड़ के जंगलों में खुशबू तैरती रहती थी। यहां से हिमालय का दृश्य अति मनोहारी लगता था।'

केवल डफ्फरिन परिवार ही नहीं अपितु इनके नौकर–चाकर तथा दूसरे अहलकार भी शौकीन तबीयत के थे और प्राकृतिक परिवेश में रहना पसंद करते थे। लार्ड डफ्फरिन का व्यक्तिगत दर्जी अलेग्जेंडर कोर्ट्ज अति महत्वाकांक्षी व्यक्ति था। जब वह लार्ड डफ्फरिन के साथ मशोबरा आया तो उसे सारा परिवेश अति भा गया। मशोबरा से लगभग दो तीन किलोमीटर दूर ढालानों में स्थित एंकातिक वन–प्रान्तर के एक हिस्से को उसने राजा कोटी से ओने–पोने में खरीद लिया। यह अनेक हेक्टेयर जगह थी जहां देवदार, ओक के वृक्षों का घना जंगल था। यह 1887 ई0 का वर्ष था जब कोर्ट्ज ने यहां पर अपने रहने के लिए 'हट' बनाई और उसी वर्ष इण्गलैंण्ड से उसने अनेक पौधों की खेप लाई। इनमें सौ से ज्यादा सेब की किस्में थीं जिनमें रेड–फलेश, रेड डेलीशियस, येलो न्यूटन, ग्रीन शाईनिंग आदि विशेष पौधे थे। सेब के पौधों के इलावा इंगलिश ओक की अनेक किस्में इण्गलैंड से लाकर रोपीं गईं। 'अलेग्जेंडर कोर्ट्ज' भारत में मात्र तीन वर्ष रहे–1887 ई0 से 1890 ई0 तक जबकि इन सेब के पौधों ने अभी फूलना भी शुरू नहीं किया था कि वे भारत छोड़कर इण्गलैंण्ड चले गए और हमारे लिए यह जयदाद छोड़ गए जिसे स्थानीय सरकार ने अन्ततः खरीदकर यहां प्रादेशिक फल अनुसंधान केन्द्र स्थापित कर लिया था। तब तक ये सेब के पौधे खूब फल देने लगे थे। पर अनुसंधान के बढ़ते चरणों के कारण यहां नए पौधे लगाए गए और पुराने सेब के पौधे काट लिए गए पर सौभाग्य से उनकी नज़र से एक पौधा बच गया जो अब 117 वर्ष की आयु में भी फल दे रहा है। यह 'येलो न्यूटन' किस्म का पौधा है जो कि अमरीका, आस्ट्रेलिया और युरोपीय देशों में अति चर्चित है। अक्तूबर में इसके फल पकते हैं और इन फलों की खूबी यह है कि इन्हें छः माह तक सुरक्षित रखा जा सकता है। जब हम वहां पहुंचे तो देखा वह फलों से ढका था।

इन सेब के पेड़ों के इलावा 'इंगलिश ओक' जिसे 'युरोपियन ओक' भी कहा जाता है, 'टिलिया युरोपिया' परिवार से सम्बंधित एक अन्य घने झोंप वाला पेड़ भी नीचे की तराई में स्थित है जो अपनी छाया और ठण्डक के लिए प्रसिद्ध है। ये दोनों पेड़ भारत में अनुपलब्ध हैं। 'इंगलिश ओंक' युरोपियन समुदायों विशेषकर इंगलैंड की परम्परावादी परिवारों के लिए श्रद्धा का केन्द्र है। जिस प्रकार हम भारतीय पीपल की पूजा करते हैं और उसे श्रद्धा से देखते हैं उसी प्रकार युरोपीय वासी इस पेड़ के प्रति नतमस्तक हो जाते हैं। इसका कारण बताते हुए संस्थान के प्रभारी निदेशक श्री भारद्वाज जी ने हमें बताया कि पीपल की तरह ही यह समुचित आक्सीजन छोड़ता है जो जीवनदायिनी है। इसके पत्ते झड़कर खाद के रूप में प्रयोग में लाए जाते हैं। इस वृक्ष में अद्भुत प्रतिरोद्ध की क्षमता है। उन्होंने एक उदाहरण दिया कि सफाई वालों ने एक बार सारे इलाके के पत्तों को इकत्रित कर जला दिया जिससे अनेक वृक्षों की डालें तथा पत्तों को आंच लगी और वे जल कर राख हो गए पर इस वृक्ष का आंच भी कुछ बिगाड़ नहीं सकी। दूसरी ओर नीचे के परिसर में लगे वृक्ष 'तिलिया युरोपिया' की ओर संकेत करते हुए भारद्वाज जी ने हमें बताया कि इस वृक्ष की छाया में आप ठण्डक पाएंगे। गर्मियों में, विशेषकर चिलचिलाती धूप में, व्यक्ति जब इसके नीचे पल भर के लिए खड़ा होकर सांस खींचता है तो त्राण पाता है। इसकी घनी छाया उसे राहत देती है जब हम उसके नीचे खड़े हुए तो सचमुच ठण्डक महसूस करने लगे थे। आज हम पानी को लेकर अनेक योजनायें बना रहे हैं–पानी के संरक्षण के लिए बहुत प्रचार हो रहा है– 'कनजर्वेशन ऑव वॉटर'–लेकिन आज से 117 वर्ष पहले ही इस शख्स ने इस ओर प्रयास जारी कर दिया था। उसने अपने फार्म में, निचले स्तर पर तीन जल–स्रोत बनवाये थे जिनमें अंडरग्रांउड नालियों द्वारा वर्षा का पानी जमा होता रहता था। आज भी वे नालिया तथा पानी के 'टैंक' स्थित हैं पर उनकी सम्भाल न होने से पानी जमा नहीं होता–नालियां बंद पड़ीं हैं और उनके प्रबन्ध तथा देख–रेख की और कोई ध्यान नहीं दिया जाता। प्रभारी निदेशक ने इसकी ओर अपनी मजबूरी बताई कि न ही पैसा है न ही व्यक्ति। दुःखद स्थिति है कि वैयक्तिक तौर पर कोट्ज़ ने क्या कुछ किया था पर अब अनेक सुविधाओं के रहते इस स्थान की देख रेख करना सम्भव नहीं है।

इस संस्थान में एक अति अद्भुत पौधा भी लगा है जिसे :फॉसिल प्लांट' के नाम से जाना जाता है। ऐसी मान्यता है कि यह पौधा 15 करोड़ वर्ष पहले वजूद में आया था जब पृथ्वी पर बड़े जीवों– 'डायनोसोर' का राज्य था। यह बहुत कम बढ़ता है पर बहुत दिन जीता है। 'जिन्क्गोबिलोंबा नामक यह पेड़ 'जिनकोगेसी' परिवार से सम्बंधित है और अति लाभदायक है।

संस्थान में एक ही पेड़ पर 'ग्राफिटंग' कर पचास से सत्तर किस्म के सेब एक ही पौधे पर उगाए गए हैं। एक पेड़ पर 61 किस्म के पौधों की 'ग्राफिटंग' की गई है।

'कोर्टज हट' निचले धरातल पर स्थित है जो धज्जी दीवारों पर आधारित है। कभी स्लेट की छत रही होगी पर अब धुसरित टिन छत स्थित है। भारद्वाज साहब ने हमें बताया कि इसको अपने सम्पूर्ण वजूद के साथ सुरक्षित रखा जाएगा।

■■■

शिमला से भी व्यवस्थित और सुन्दर था चैल

यद्यपि शिमला अपने नैसर्गिक सौन्दर्य,स्वास्थ्यवर्धक परिवेश तथा देवदारों, फर वृक्षों आदि के भरे–पूरे जंगलों के कारण विश्व भर में प्रसिद्ध है जहां गर्मियों में तो देशीय पर्यटकों की भीड़ रहती ही है पर सर्दियों में भी बर्फ गिरते देखने के लिए मैदानों से लोग चले आते हैं। पर कभी इस नैसर्गिक स्थल का न केवल मुकाबला करती अपितु सुख–सुविधाओं से लैस, स्वार्गिक सौंदर्य से अप्लावित थी चैल की स्वास्थ्यवर्धक प्राकृतिक स्थली।

चैल 7054 फुट की ऊंचाई पर स्थित एक ऐसा स्वास्थ्यवर्धक और नैसर्गिक सौन्दर्य से लैस स्थल है जिसे महाराजा भूपिन्द्र सिंह, जो कि तत्कालीन शक्तिशाली रियास्त पटियाला के सम्राट थे, ने डिज़ायन किया था। राजा भूपिन्द्र सिंह तथा उनके बेटे राजा यादवेन्द्र सिंह, दोनों ही क्रिकेट के बहुत अच्छे खिलाड़ी थे कि अनेक बार इन्होंने भारत और इंग्लैण्ड में एम0एम0सी0 के खिलाफ भारतीय टीम को लीड किया था। पागलपन की सीमा तक था उनका क्रिकेट के प्रति शौक कि उन्होंने संसार की सर्वोच्च क्रिकेट ग्राऊंड और पिच 7054 फुट की ऊंचाई पर स्थापित की। इस खेल के मैदान के चारों ओर देवदार के ऊंचे पेड़ सीमा रेखा बनाते दीखते हैं।

महाराजा भूपिन्द्र सिंह साहसी, दूरदर्शी और शौकीन तबीयत के थे। अपने चुनौतिपूर्ण रवैये तथा व्यवहार कुशलता के कारण वह ब्रिटिश शासकों के विश्वास पात्र बन गए थे। प्रथम विश्व युद्ध के समय अपनी बहादुरी और शौर्य से उन्होंने ब्रिटेन के सम्राट जार्ज पंचम के सुरक्षा घेरे में अपना स्थान बना लिया था। उद्दण्ड और साहसी तो थे ही पर अपने शारीरिक सौष्ठव, घुड़सवारी में निपुणता और सशक्त खिलाड़ी के रूप में महाराजा भूपिन्द्र सिंह ने शिमला के अंग्रेज समाज में अपना विशेष स्थान बना लिया था परिणामस्वरूप हर मुख्य कार्यक्रम, पार्टी, मनोरंजन के लिए समागम आदि में महाराजा पटियाला आकर्षण का केन्द्र रहते थे। यही कारण था कि धीरे–धीरे वह वायसराय के मुख्य अधिकारियों–कमाण्डर–इन–चीफ तक उनसे ईर्ष्या करते थे। चैल कैंथल स्टेट का हिस्सा था जिसे अमर सिंह थापा ने 1814 ई0 में जीत लिया था और कालान्तर में यह एस्टेट ब्रिटिश राज्य की हो गई। महाराजा भूपिन्द्र सिंह को ब्रिटिश साम्राज्य से यह 'एस्टेट' मिली थी– यह निश्चय नहीं किया जा सकता कि उन्होंने इसे अंग्रेजों से खरीदा था या उनकी राज के प्रति सेवाओं को देखते हुए यह 'एस्टेट' उन्हें दी गई थी भेंट स्वरूप। पर ऐसा लगता नहीं। अंग्रेजों ने कभी भी किसी को अकारण कोई चीज भेंट नहीं दी थी। कही न कहीं निहित में उनका स्वार्थ होता था। अतः इस बात में बल है कि महाराजा भूपिन्द्र सिंह ने इसे खरीदा था।

महाराजा भूपिन्द्र सिंह अंग्रेजों की ईर्ष्या से दोचीदा रहे। अनेक अंग्रेज अहलकार उन्हें अपनी प्रगति में बाध ा मानते थे अतः उनके प्रति उनकी ईर्ष्या प्रत्यक्ष रूप से प्रकट होने लगी। ब्रिटिश भारतीय सेना के कमाण्डर–इन–चीफ, लार्ड किचनर की उन दिनों तत्कालीन वायसराय लार्ड कर्जन से बिल्कुल नहीं बनती थी फलस्वरूप 'वाईल्ड फलॉवर हाल' सामने आया। यद्यपि यह वास्तुकला का अन्यतम नमूना था पर इसके निर्माण के पीछे लार्ड किचनर की मानसिकता थी कि वह वायसराय लार्ड कर्जन को नीचा दिखाना चाहता था। महाराजा भूपिन्द्र सिंह और लार्ड कर्जन की आपस में खूब गाढ़ी छनती थी फलस्वरूप लार्ड किचपर उन्हें भी टेढ़ी आंख से देखने लगा था। खट्टे–मीठे सम्बन्धों में शिमला की माल पर हुए एक स्कैंडल ने आग में घी का असर किया। इस बीच लार्ड कर्जन ने अपने पद से 1905 ई0 में इस्तिफा दे दिया था परिणामतः अब सत्ता लार्ड किचनर के हाथ आ चुकी थी। लार्ड किचपर ने महाराजा भूपिन्द्र सिंह की शिमला में आने में परोक्ष में रोक लगा दी थी। महाराजा अपने धुन के पक्के थे। उन्होंने शिमला से भी सुन्दर नैसर्गिक वातास से घिरी, घने वनों से आच्छादित

एक ऐसी सौन्दर्य स्थली कां स्वप्न संजोया था जो सर्वसुविधा सम्पन्न हो। वनप्रान्तर में रजत शिखरों से घिरी यह सौन्दर्य स्थली चैल के रूप में सामने आई। चैल एक ऊंचे पठार पर स्थित है जहां से सतलुज की घाटी का मनोरम दृश्य आल्हादित करता है तो दूसरी ओर रात्रि के समय यहां से कसौली और शिमला की टिमटिमाती रौशनियों का संसार देखा जा सकता है। तो तीसरी ओर रजत मंडित हिमालयी श्रृंखलाओं को खुली धूप वाले दिन निहारा जा सकता है। चैल वस्तुतः पर्वतों की रानी के तौर पर सामने आई थी। हर मौसम में इसके यहां प्रवास किया जा सकता है–गर्मियों में इसका सुहावना मौसम पर्यटकों को अपनी ओर खींचता है तो पतझड़ में सुनहरी लबादा ओड़े फरदार वृक्ष और फलदार पौधे अपनी छटा बिखेरते हुए झरते पत्तों के माध्यम से शांत संगीत की स्वर लहरियां सारे वातास में मुखरित कर जाते हैं। सर्दियों में सारे क्षेत्र में बर्फ की सफेद, दूधिया चादर बिछ जाती है जो शांत चांदनी रातों में अति तिलस्मी और रहस्यमयी लगती है बर्फ के शौकीन पर्यटक दिसम्बर माह में, विशेषकर नव वर्ष के स्वागत में यहां खिंचे चले आते हैं। सर्दियों का आलम अप्रैल तक छाया रहता है जब देवदार और बांज के जंगलों में से बुरांस के वृक्ष फूलने लगते हैं और चारों ओर अपनी छटा तो विखेरते ही हैं अथच अनेक वनौषधियां और फूल महक कर सारे वातावरण को सुगन्ध से आच्छादित कर देते हैं। चरागाहें रंगीन कालीनों से सज जातीं हैं– अनेक फूल इतराते से डोलने लगते हैं। इस खुशनुमा वातावरण को अपने पूरे वजूद के साथ आत्मसात करने, भीड़ से दूर, नये जोड़े खिंचे चले आते हैं और इन नैसर्गिक वादियों में मदहोश से विचरते रहते हैं।

वस्तुतः चैल तीन पहाड़ियों पर बसा है। राजमहल राजगढ़ पहाड़ी पर स्थित है। इस महल को महाराजा भूपिन्द्र सिंह के बेटे राजा यादवेन्द्र सिंह ने बनवाया था। राजा यादवेन्द्र सिंह बड़े दूरदर्शी एवम् लोकप्रिय शासक थे। उन्होंने अनेक स्वप्न संजोए थे उनमें से एक था एक ऐसे महल का निर्माण करना जिसका जोड़ न मिल सके। इसके निर्माण में उनका व्यक्तिगत योगदान रहा है। अवधारणा यह है कि इसके निर्माण के लिए बेश कीमती पत्थर जबलपुर की खादानों से मंगवाये गए थे और महल बन जाने पर इसे सजाने का कार्य किसी अंग्रेज़ को सौंपा गया था। कालीन और मख़मली पर्दे विदेशों से मंगवाये गए थे तो फर्नीचर अखरोट और टीक की लकड़ी से अति कलात्मक बनाया गया था।

स्वतंत्रता के बाद पटियाला रियास्त उन कुछेक रियास्तों में एक थी जिसके शासकों ने भारत गणराज्य में विलय की सर्वप्रथम घोषणा की थी। यादवेन्द्र सिंह भारतीय गणराज्य में एक सर्वसम्मत अहलकार के तौर पर जाने जाते रहे। उन्हें विदेशों में भारतीय राजदूत के रूप में तैनात किया गया। इधर हिमाचल प्रदेश संघीय रियासत के वजूद में आने पर अनेक रजवाड़े धीरे–धीरे इसमें विलय हो गए थे। श्री वाई0एस0परमार पहले मुख्यमंत्री के तौर पर चयनित हुए तो उन्होंने इस नई पर्वतीय रियासत के विकास के लिए अनेक प्रयास किए। इसे पर्यटन के मानचित्र में लाने के लिए उनका एक प्रयास यह भी था कि रजवाड़ों की व्यक्तिगत सम्पत्ति जो पर्यटन का केन्द्र थी को रियासत का अंग बना लिया जाए चुनाचे उनका ध्यान इस महल की ओर भी गया। राजा यादवेन्द्र और परमार अच्छे मित्रों में से थे। परमार साहब की सलाह पर राजा यादवेन्द्र सिंह बिना किसी पैसे के इस महल तथा इसके साथ लगी कई एकड़ भूमि और अहलकारों के लिए बनाई गई 'पाईन काटेजेस' नवनिर्मित रियासत को हस्तान्तरित करने को तैयार थे पर परमार साहब बहुत दूरदर्शी थे। कहीं इसका अर्थ–राजनैतिक हल्कों में कुछ और न लगाया जाए अतः बीस लाख 'टोकन मॅनी' देकर महल तथा उसके साथ लगी जमीन 'काटेजिस' राज्य के लिए खरीद लीं। शाही सज्जा से सजा यह महल 'चैल पैलेस होटल' में बदल दिया गया। और इसे पर्यटन निगम के हवाले कर दिया गया।

इस होटल में खुले हाल, गलियारे और महलों के अनुरूप लॅाबी तथा लौंज है। लौंज एक खुला हाल है

जहां होटल का 'रिसैप्शन' कक्ष है। भीतर बैठकें, मैनेजर का प्रकोष्ठ तथा बार है जहां ऐशो–आराम के सब सामान उपलब्ध हैं। लगभग नौ पारिवारिक सूईट ग्राऊंड मंजिल में है तो अत्यधिक सज्जित महाराजा और महारानी सुईट्स तीसरे माले पर उसी प्रकार रखे गए हैं जैसे पहले थे–वही फर्नीचर है हां पर्दो का कपड़ा बदल दिया गया है। पाईन काटेजिस जो कभी महाराजा के सुरक्षा स्टॉफ के लिए नियत थे भी सुविधाजनक रिहायश के लिए चर्चित हैं। वे भी अब पर्यटकों के लिए उपलब्ध हैं। बाहर एक विशद लॅान पुष्पित घास से आप्लावित है। वसंत में गुनगुणी धूप का आनन्द उठाते पर्यटक यहां विचरते रहते हैं।

चैल कालका से 86 किलोमीटर दूर है और सड़क मार्ग के साथ जुड़ा है, जहां कण्डाघाट से होकर पहुंचा जा सकता है। जबकि शिमला से 45 किलोमीटर दूर है। मैदानों की ओर से चैल तक पहुंच कालका से कण्डाघाट होकर ही ठीक रहती है। कण्डाघाट से एक मार्ग चैल की ओर जाता है जो 29 किलोमीटर दूर पड़ता है। यद्यपि कण्डाघाट से बसों का प्रबन्ध है तथापि अपनी गाड़ी से यह यात्रा अति सुविधाजनक और समयानुसार सम्पन्न की जा सकती है। यात्रा का उपयुक्त समय या तो सितम्बर–अक्तूबर के माह हैं या अप्रैल–मई जब वातावरण खूब खुशनुमा होता है।

■■■

क्यारीघाट बंगला

महाराजा पटियाला, भूपिन्द्र सिंह अपने आप में एक बहुत महत्वपूर्ण व्यक्ति थे।महाराजा तथा शक्तिशाली राज्याधिकारी से इतर वह एक कुशल घुड़सवार, क्रिकेट के अनन्य खिलाड़ी और साहसी जांबाज थे कि वह उन कुछेक भारतीय मरजीवड़ों में से एक थे जिसे जॉर्ज पंचम के सुरक्षा गार्डो में विशेष स्थान हासिल करने का गौरव प्राप्त हुआ। वह अंग्रेजों की 'हाई सोसाईटी' के एक गौरवशाली इतिहास थे कि कोई भी सामाजिक अनुष्ठान उनके बिना अधूरा समझा जाता था। यह लार्ड कर्ज़न का समय था 29.11.1902 ई0 के रोज़ जब जनरल किचनर ब्रिटिश कमाण्डर–इन–चीफ के अहम ओहदे पर तैनात होकर आया तो महत्वाकांक्षा वश वॉयसराय लॉर्ड कर्ज़न से अपने को श्रेष्ठ मानने के कारण ब्रिटिश अम्पायर में दरार आनी शुरु हो गई थी। लॉर्ड कर्जन के जितने भी करीबी लोग थे वे सभी जनरल किचनर की नफरत का वायस बने। इसी नफरत की भट्टी में पटियाला के महाराजा को एक षडयंत्र के तहत जब आंच की जलन से दोचीदा होना पड़ा तो महाराजा भूपिन्द्र सिंह ने शिमला सदा के लिए त्याग दिया पर मन ही मन कस्म खाई कि शिमला से भी श्रेष्ठ ऐसा स्थान बनाएगें जिसे देशीय रियास्तों के रजवाड़े और विदेशी पर्यटक देखते रह जायें अतः चायल का जन्म हुआ जो आज भी उसी स्वार्गिक अनुभूति से ओतप्रोत है जैसे पहले था। चायल में व्यक्ति महीनों रहकर भी थकता नहीं अपितु इसके नैसर्गिक वातावरण में रच बस जाता है।

चायल ही नहीं महाराजा भूपिन्द्र सिंह एक शोकीन तबीयत के महाराजा थे– कहते हैं उनकी अनेक पत्नियां और उप पत्नियां थीं। घुड़सवारी और क्रिकेट के इलावा उन्हें शिकार करने का बहुत शोक था जिसके लिए उन्होंने वन–प्रान्तर के पास अनेक रैन–बसेरे बनाए हुए थे। चूंकि गर्मियों में वे पंजाब की तपती दुपहर को त्यागकर पर्वतीय क्षेत्र के सुरमयी और स्निग्ध वातास में रच बस जाना चाहते थे अतः उनके अनेक महल–चौबारे और शाही भवन इस क्षेत्र में स्थापित हो चुके थे। यह सारा पर्वतीय क्षेत्र–मैदानों से होकर शिमला की पहाड़ियों तक का पटियाला राज्य की जयदाद था–कुछ अंशों को छोड़कर जो राजा कैंथल के अधीन था अतः अपने क्षेत्र में स्थान स्थान पर पटियाला राज्य के शाही महल और विश्रामगृह थे जो हर प्रकार की सुख–सुविधा से लैस थे।

इन महलों में 360 कमरों से युक्त कण्डाघाट का भवन अति चर्चित रहा है जो बाद में, हिमाचल रियास्त के गठन पर, पुलिस लाईन को सौंप दिया गया था पर आज कल एक स्कूल चलता है वहां। वह शाही ठाठ–बाठ तो नहीं रहा तथापि भग्नावशेष बोलते हैं कि कभी यहां इमारत बुलंद थी। कण्डाघाट से लगभग सात–आठ किलोमीटर शिमला की ओर आते हुए मुख्य मार्ग पर वृक्षों के झोंप में छुपा एक अति रमणीय विश्रामगृह है जो आज भी अपने खुले लॉन, महकते फूलों तथा करीने से तराशी गई क्यारियों से सज्जित है। लॉन में घुसते ही खुल जा सम सम की तरह एक बैरकनुमा हट नमूदार होती है ढलुवां टीन की सुर्ख छत लिए हुए। एक मंजिला यह इमारत लगभग एक सौ बीस वर्ष पूरे कर चुकी है पर अभी भी जवान है। कतार में सजे लगभग एक ही माप के कमरे आधुनिक सुख सुविधा से लैस है। कुल छः प्रकोष्ठों का सेट है। दायें पार्श्व में एक खुला हालनुमा प्रकोष्ठ है जो आज भी धातु के बने बड़े बड़े चार राजसी लैम्पशेडों से सज्जित है। इन रिहायशी प्रकोष्ठों के पीछे कतार में आठ छोटे दरबाजों वाले छोटे छोटे प्रकोष्ठ हैं जो कभी शाही घुड़साल थे।

ऐसी मान्यता है कि गर्मियों में जब महाराजा भूपिन्द्र सिंह शिकार को निकलते तो उनका विश्रामालय यहीं होला था। अनेक बार रात्रि वास भी यहीं करते। मुख्य, बड़ा हालनुमा प्रकोष्ठ बैठक और खाने

पीने की सुविधायें लिए था जबकि तीन मुख्य प्रकोष्ठ महाराजा और उनके विशेष दरबारियों या यदि महिला साथ हो तो उनके लिए सुरक्षित रखे जाते थे। बाकी के तीन प्रकोष्ठ दूसरे अहलकारों के लिए होते थे। अर्न्य सुरक्षा अधिकारी तथा सेवादार लॉन में एक तरफ छोलदारियां लगाकर गुजर करते थे।

स्वतंत्रता के बाद रजवाडे समाप्त हो गए तो उनके वैयक्तिक कुछेक महलों को छोड़कर बाकी जयदाद राज्य का हिस्सा बन गई। तो इसे लोक निर्माण विभाग ने अपना विश्राम स्थल बना लिया। पहले राजाओं–महाराजाओं का विश्रामालय था अब नौकरशाही का विश्राम स्थल बन गया। महाराजा पटियाला के रहते इस विश्रामगृह में वेशक कीमती फर्नीचर था, झाड़–फानूस थे और सज्जा का सामान था जो कालान्तर में पता नहीं किस किस के घर जा पहुंचा। बात सत्ता के गलियारों तक पहुंची परं इस आपादापी में कोई भी कसूर बार नहीं मिला। सन् 1971 ई0 में यह भवन अंततः हिमाचल पर्यटन निगम को सौंप दिया गया। एक बार फिर इसे सुधारा और निखारा गया। प्रमुख हालनुमा कमरा बॉर तथा रेस्तरां में बदल दिया गया तथा बाकी के छः प्रकोष्ठ विश्राम के लिए रखे गए। शाही किचन को रेस्तरां का किचन बना दिया गया और पार्श्व में आठ छोटे प्रकोष्ठ जो घोड़ों के बांधने के लिए होते थे अब इस विश्राम स्थल के कर्मचारियों की रिहायशगाह हो गए। क्या विडम्बना है कि कभी एक कमरे में एक घोड़ा बांधा जाता था अब उसी कमरे में एक परिवार अपना गुजर करता हैं

बाहर रोडसाईड, लॉन के आरम्भ होने से पहले एक फास्ट–फूड जंक्शन बनाया गया है उन लोगों के लिए जो शीघ्रता में होते हैं और भागते भागते एक कप–कॉफी या कुछ स्नैक्स लेना चाहें।

कमरों का किराया छः सौ रुपये प्रति कमरा है और खाने–पीने की सुविधा है।

इस सारे विश्रामालय की व्यवस्था देखता एक युवा मैनेजर, योगेश कश्यप, सौम्य व मुखर व्यक्तित्व रखे हैं और उसकी हर बात में प्रोफेशनल टच झलकता है। यही कारण है कि क्यारीघाट बंगला निगम के उन इने गिने विश्रामालयों में एक है जो निगम को हर वर्ष लाखों की आमदनी देता है।

श्री कश्यप के अनुसार गर्मियों में यहां खूब रश रहता है और दूर दराज से लोग,विशेषतया पंजाब तथा हरियाणा से गुनगुनी दुपहर बिताने यहां आते हैं और अनेक बार मेदानों में पड़ने वाली गर्मी से बचने के लिए और अपनी रात को रंगीन करने भी रात्रि भर यहीं ठहर जाते हैं। अनेक बार गर्मियों में इतना रश हो जाता है कि कई दिनों पहले ही बुकिंग हो जाती है और अनेक लोगों को प्रतीक्षा में ही अनेक दिन बिताने पड़ते हैं। क्यों न हो सारा वातावरण ही बड़ा नैसर्गिक है।

■■■

बड़ोग का रेलवे स्टेशन

अगस्त माह में बरसात अंतिम सांस लेना शुरु कर देती है–या यह समझो कि अपने चरम पर पहुंच कर दम तोड़ देती है– पर इस बार–2003 में ऐसा कुछ आश्चर्यजनक घटा है कि बरसात मध्य अगस्त तक पहुंचती भी अपने पूरे यौवन पर हैं। धुंध के लिहाफ लिपेटे कब, किस समय वादियां रिमझिम फूहारों से नहानी शुरु कर दें कुछ कहा नहीं जा सकता। कालका–शिमला रेल लाईन के सौ वर्ष पूरे हो गए हैं और हमने यह बीड़ा उठाया था कि हम इस पर एक दस्तावेजी रूपक राष्ट्रीय स्तर पर प्रसारित करेंगे। इस सिलसिले में प्रारम्भिक कार्य करने,जिसे चलित भाषा में 'स्पेडवर्क' का नाम दिया जाता है, पर हमें अनेक आश्चर्यजनक तथ्य मिले जिनमें से सबसे ज्यादा कौतुहलपूर्ण सूचना यह थी कि इस रेलवे लाईन का सर्वे करने वाले और पुलों के निर्माण तथा सुरंगों को बनाने वाले सर्वश्रेष्ठ इंजिनीयर बरोग एक सुलझा हुआ अंग्रेज अधिकारी था जिसके कन्धों पर यह भार लाद दिया गया था कि वह कालका से शिमला तक रेल की पटरी बिछाए और समय दिया गया था पांच वर्ष। बरोग साहब ने तन्मय होकर इस कार्य को सफलता की चरम सीमा तक पहुंचाने में कोई कसर नहीं रखी। पर उनके भाग्य में यह सुख नहीं था। कालका से शिमला तक की इस यात्रा में छोटे–मोटे पुलों और सुंरगों का निर्माण करते उन्होंने लगभग आधा सफर तय कर लिया था और 32 सुरंगों तथा अनेक पुलों का निर्माण कर चुके थे। पर 33सवीं सुरंग सब से लम्बी सुरंग थी–1144 मीटर लम्बी। चुनाचे सर्वे कर दोनों ओर से कार्य सम्पन्न कर शीघ्र ही निपटा लिया जाए ऐसा सोच कर वे अपने काम में जुट गये।पर जब दोनों ओर से सुरंग के मिलने का समय आया तो पता चला कि दोनों सिरों में लगभग 200 मीटर का अन्तर था। इतना पैसा खर्च हुआ पर परिणाम शून्य। रेल कम्पनी ने नर्मी बरतते हुए बरोग पर एक रुपया जुर्माना कर दिया पर बरोग को इस जुर्माने की चिंता नहीं थी अपितु उस साख की जो वह खो चुका था। वह उसकी ताक न लगा सका और उसने आत्म हत्या कर ली। दुःख की बात थी पर रेलवे लाईन का क्या होगा ! इसकी चिंता अंग्रेजों को सताए हुए थी। उन्हें किसी ने बताया कि हिन्दोस्तान–तिब्बत सड़क के निर्माण में भलकू नामक एक फक्कड़ किस्म के मेट ने आनन फानन में कितने ही सर्वे किए और उन्हें सर–अंजाम दिया। उसका एक भी सर्वे गलत नहीं हुआ, एक भी पुल या सुरंग तकनीकी दृष्टि से कम नहीं थी। उसे बुलवाया गया और कार्य शुरू हुआ। बड़ोग रेलवे स्टेशन के पास यह 33सवीं सुरंग के बाहर एक सूचना पट लगा है जिसमें यह सारी सूचनायें हमें उपलब्ध हुईं। और इसमें इजाफा किया बड़ोग स्टेशन के सहायक स्टेशन मास्टर ने। उन्होंने हमें बताया कि इस सुरंग को बाद में भलकू ने अपने अति निम्न स्तर के औजारों– एक डण्डा और कम्पास की सहायता से सर्वे कर पूरा किया। और यह रिकार्ड समय में पूरी हुई थी। सुरंग पूरी होने पर भलकू ने अंग्रेज अहलकारों से प्रार्थना की थी कि इस स्टेशन का नाम बड़ोग, बरोग साहब के नाम पर रखा जाए। उसकी बात को मानते हुए इसका नाम बड़ोग रखा गया। और वह स्थान जहां बरोग साहब ने सुरंग खोदी थी, वर्तमान बड़ोग की सुरंग से लगभग एक डेढ़ किलोमीटर दूर उपरी सतह पर स्थित है– उसके पास की बस्ती को भी बड़ोग की संज्ञा से जाना जाता है।

बड़ोग स्टेशन वस्तुतः दो मुख्य कारणों से बनाया गया था–पहला कारण था कि यह स्थान कालका और शिमला के बीच लगभग आधी दूरी तय कर लेता है। अंग्रेज अहलकारों की नाजुक मिजाज मेमें और बच्चे थकान से दोचीदा हो जाते थे अतः उनके विश्राम हेतु यहां विश्राामालय के साथ भोजन की भी व्यवस्था की जाती थी। रेल गाड़ी यहां पर तब तक ठहर जाती थी जब तक वे अपने आराम से और खाने पीने से फारिग न हो जायें।

दूसरा बड़ा कारण था इसका नैसर्गिक सौन्दर्य। गर्मियों में अपनी जलवायु और सुरमयी वातास के लिए यह प्रसिद्ध है तो बरसातों में धुंध के लिहाफ लिए नीचे की वादी कहीं ठहर जाती है। बड़ा अद्‌भुत मंजर होता है जब तह–दर–तह धुंध के कारवां चलते, भागते, वृक्षों के शिखरों को छूकर नीचे उतर जाएं और आपके आस–पास पल भर ठिठक जायें कि आप उन्हें अपने हाथों से लील सकें।

एकान्त वातावरण में बना यह पर्वतीय रेलवे स्टेशन अपने शिल्प के लिए जाना जाता है। पर्वतीय शैली में बनीं कोठियों का आकार लिए अनेक छोटी–मोटी पिरामिडल ढालुआं छतों के सहारे इसे और सौन्दर्य प्रदान किया गया है। कुछ लोग इसे गोथिक शिल्प की इमारत कहते हैं–गोथिक स्थापत्य चैटू के निर्माण में इस्तेमाल होता था जिसे एक विशेष तकनीक से बनाया जाता था– जैसे पाश्चात्य देशों में चर्च तथा कॉस्लों का निर्माण हुआ पर यह विशुद्ध पर्वतीय तकनीक से बना स्टेशन है जैसे अनेक घर अथवा कोठियां हमें पर्वतीय क्षेत्रों में मिल जाएंगी। इनकी ढालुआं छतें इस बात की द्योतक थीं कि यहां बर्फ़ पड़ती है। हो सकता है कभी, पिछली सदी में यहां बर्फ पड़ती हो। बहरहाल यह एक सुन्दर छोटा सा स्टेशन है जहां रहने के लिए कमरे उपलब्ध है और मांग पर खाना भी मिल जाता है। साधारण कमरे सुव्यवस्थित हैं जिनका किराया प्रति कमरा एक सौ रुपये है। एक अलग से हटनुमा रिहायशी आवास भी है जहां पूरा परिवार रह सकता हैं इसमें सभी सुविधायें उपलब्ध हैं। सबसे ऊपर है इसका नैसर्गिक सौन्दर्य जो पर्यटकों को बांध देता है।

■■■

अभी भी नैसर्गिक सौन्दर्य की नगरी है, कसौली

चिलचिलाती धूप से बचने के लिए मैदानों में रहने वाले पहाड़ों की ओर भागने लगते हैं। अमीर लोगों के लिए पहाड़ का अर्थ है वे इने गिने स्थल जो सदियों से अपनी ओर पर्यटकों को आकर्षित करते रहें हैं–मसूरी,शिमला, डलहौजी,दार्जलिंग, गुलमर्ग, पहलगाम आदि। कारण अनेक हैं कि यहां सितारा आवासीय सुविधा, गाड़ियों के लिए स्थान, उचित खाना आदि मुहैय्या रहता है। पर यह सभी कुछ इतना मंहगा है कि आम आदमी के लिए उसकी शक्ति के बाहर है। एक बात और ध्यान देने के योग्य है कि इन स्थानों की पर्वतीय संस्कृति और परम्परायें लुप्त प्रायः हो चुकी हैं– ये सभी स्थल अब लगभग महानगरीय परिवेश से भीगने लगे हैं। महानगरों से पर्यटकों की संख्या में इजाफा होने लगा है परिणामस्वरूप वैसा ही लिबास, वैसा ही खान पान हर ओर दिखाई देता है। जहां तक कि दूकानों, रेस्त्राओं तथा चाय खानों में अब राष्ट्रीय ही नहीं अन्तर्राष्ट्रीय खान–पान झलकने लगा है। चाय में बलैक टी, मिंट टी, मसाला टी तो खाने में चाईनीज और इन्टरकांटिनेंटल डिशिज़ स्वतः ही इन रेस्त्राओं में प्रवेश कर गई है और भारतीय खाद्य–पदार्थ धीरे धीरे लुप्त होने शुरु हो गए है। हां चाट की मांग उसी प्रकार है पर इसमें भी इसके परोसने में नवीनता लाने का प्रयास किया जा रहा है। स्थानीय संस्कृति एवम् परम्परायें जिन्हें देखने और उनमें रच–बस जाने के लिए लोग, विशेषतया बुद्धिजीवी इन पर्वतों पर चले आते थे पर अब तो इनका पर्वतीय स्वरूप भी नष्ट होता जा रहा है क्योंकि चारों ओर जिधर नजर जाती है बहुमंजलीय होटल, रेस्त्रां बनते जा रहे हैं– पर्वतों की हरियाली और शांति विलुप्त होती जा रही है। पर इन चर्चित एवम् व्यापक तौर पर प्रचारित पर्वतीय स्थलों से इतर अभी भी ऐसे स्थान हैं जिनमें मौलिकता दृष्टिगोचर होती है। अपनी परम्पराओं और भौगोलिक परिवेश को इन्होंने सम्भालकर रखा है–अल्मोड़ा,कौसानी, रानीखेत, चैल, भरमौह्‌र, पन्चैरी, कसौली आदि अनेक ऐसे पर्यटक स्थल हैं जो अभी इस प्रदूषण से बचे हैं और इन्होंने अपनी मौलिकता को बनाए रखा है।

कसौली अपनी अनेक विशेषताओं के कारण इन सभी से अलग अपना एक विशिष्ट स्थान रखती है। कमोवेश लगभग डेढ़ सौ साल का इसका परिवेश वैसा ही रहा है हां–कुछ दूकानें लोअर माल पर अवश्य खुल आई हैं पर ऊपरी माल को उसी प्रकार संजोकर रखा गया है। इसका श्रेय पहले तो अंग्रेजों को जाता है जिन्होंने बहुत करीने से इसे बसाया और सजाया और बाद में उनके भारत छोड़कर चले जाने पर सैनिक छावनी हो जाने से यहां कसौली में होटल निर्माण और बड़ी बड़ी बिल्डिंगों के निर्माण में रोक लगा दी गई ताकि इसके वातास को किसी भी प्रकार की क्षति न पहुंचे। हटनुमा, पर्वतीय परिवेश में घुलती, इमारतें आज भी उसी प्रकार शोभित हैं।इन हटनुमा इमारतों के परिवेश को बनाने में अंग्रेजों की दूरदर्शिता की प्रशंसा किए बिना नहीं रहा जा सकता।

सतह समुद्र से लगभग छः हजार फुट की ऊंचाई पर स्थित यह शांत पर्वतीय नगरी अपनी खामोशी को मुखरित करती सही मायने में पर्वतीय नगरी के नाम को सार्थक करती है। अप्पर माल वस्तुतः माल के स्वरूप को सटीक तौर पर इन्गित करता हैं जहां प्रसार भारती के ट्रांसमीटरों के साथ–साथ अनेक कलात्मक हटनुमा कोठियां सड़क के दोनों ओर स्थित हैं। इनमें से सड़क के किनारे ही स्थित है कसौली कलब। कभी यह कलब अपनी रौनक के लिए प्रसिद्ध था। अंग्रेज तथा सैन्य अधिकारी अक्सर अपनी सन्ध्यायें रंगीन करने जहां आते थे। पुरानी इमारत तो जलकर राख हो गई है पर नई इमारत को वैसा ही स्वरूप देने का प्रयास किया गया है। एक रास्ता थोड़ा नीचे की ओर चला गया है जहां अंग्रेजों के समय का विश्रामघर परिधि घर अर्थात सर्किट

हाऊस आज भी वैसे ही अपने गौरव को लिए स्थित हैं यह हटनुमा इमारत लगभग 1860 ई0 के आस पास वजूद में आई थी जब यहां अक्सर अंग्रेज अहलकारों के परिवार आने लग पड़े थे तो एक सुव्यवस्थित विश्राामालय की जरूरत पड़ी। इस दुमंजिला इमारत में नीचे दो सुइट्स हैं और ऊपर तीन। कुल पांच 'सुइट्स' का रहने का प्रबन्ध है। ये सुईट्स बहुत सुन्दर ढंग से सज्जित हैं। पुराना फर्नीचर अभी तक वैसी ही चमक रखता है जैसा अंग्रेज़ों के समय रखा गया था। इसके साथ लगती एक एनैक्सी है जो बाद में वजूद में आई थी। इसमें भी चार–पांच अवासीय प्रकोष्ठ हैं। सामने पूरी घाटी का मनोरम दृश्य मन को लुभाता है। यहां ठहरने और खाने–पीने की व्यवस्था है।

परिधि घर से थोड़ा नीचे बाईं ओर अवकाश प्राप्त राज्यपाल श्रीं बी0 के0 नेहरू जी की कोठी है जो टीन की ढालुआं छत लिए पर्वतीय हटनुमा शैली में बनी है। श्री बी0के0नेहरू तो नहीं रहे– उनके परिवारजन गर्मियों में आते हैं।

ऊपर माल पर एक बार फिर आने पर मुख्य मार्ग से एक रास्ता प्राईवेट एस्टेट की ओर चला गया है जो एक मंजिला सुन्दर कोठी के सामने जाकर चुकता है। बाहर गैलरी में बैठने के लिए आराम कुर्सियां पड़ीं थीं और चारों ओर गमलों में पौधे फूलों को महका रहे थे। तीन स्तरों पर बनी यह कोठी चर्चित रचनाकार और स्तम्भ लेखक खुशवंत सिंह की है।

आगे नीचे की ओर, लोअर माल की तरफ जाते दाईं ओर किसी मेजर महिला की कोठी है जिसके साथ एक अन्य कोठी अंग्रेजों के समय की है जो लगभग सौ वर्ष पूरा कर चुकी है। सामने उपर एक पठार पर प्रसार भारती के आकाशवाणी और दूरदर्शन के दो रिले केन्द्र स्थित हैं। आकाशवाणी का ट्रांसमीटर 10 किलोवाट का है जो राष्ट्रीय प्रसारण को साढ़े छः बजे सांय से प्रातः सवा छः बजे तक सारी रात्रि रिले करता था जिसकी अति सुनवाई थी पर अब एक ही तरह के कार्यक्रमों के प्रसारण के कारण सुनवाई में फर्क पड़ा है। दूरदर्शन का ट्रांसमीटर भी दस किलोवॉट शक्ति का है जो दूरदर्शन केन्द्र शिमला और राष्ट्रीय प्रसारणों के कार्यक्रमों को रिले करता है।

थोड़ा नीचे बस अड्डे की ओर जाने पर कसौली का पुराना चर्च, काईस्टचर्च है जिसकी स्थापना लगभग उसी समय हुई थी जब कसौली को बसाया गया था। अक्सर रविवार की पूजा के लिए तथा समागम के लिए चर्च का बड़ा महत्व रहता है। अक्सर यहीं पर सभी अंग्रेज और दूसरे पाश्चात्य परिवार एक दूसरे को मिलते थे। चर्च ठोस पत्थरों की चिनाई से गोथिक शैली में बना है। सामने एक ऊंची भीत्ति है और पीछे एक खुला हाल है जहां 'प्रेयर' आदि हुआ करतीं थीं। थोड़ा ऊपर जाने पर सैंट्रल रिसर्च इंस्टीच्यूट की इमारत हैं जहां चेचक हैजा, टॉयफायड और हकलान के टीके तथा दवाईयां बनती है। इसकी स्थापना प्रसिद्ध वैज्ञानिक डा0 सेंपल ने 1906 ई0 को मई माह में की थी।

कसौली का सर्व चर्चित स्कूल लारेंस सनॉवर स्कूल भी यही पर कसौली से लगभग दो–तीन किलोमीटर दूर सनॉवर नामक स्थान पर है। इसका निर्माण सन् 1847 ई0 में सर हेनरी लारेंस ने किया था। आज भी यह कुछेक अति मान्यताप्राप्त स्कूलों में से एक है। यह आवासीय स्कूल है। इस स्कूल का जिक्र अनेक साहित्यिक कृतियों में हुआ है। हिन्दी के चर्चित कथाकार और नाटककार मोहन राकेश भी इस स्कूल के साथ कुछ अरसे तक जुड़े रहे थे।

आईये अब इसके इतिहास के बारे में जानें। कसौली अपनी जलवायु और नैसर्गिक सौन्दर्य के लिए अंग्रेजों के आकर्षण का कारण बना। अंग्रेज मैदानों की गर्मियां बदार्शत नहीं कर सके अतः पर्वतीय क्षेत्रों में

उन्होंने उपयुक्त स्थान तलाशने शुरु किए परिणामस्वरूप मसूरी, दार्जलिंग, डलहौली, मकलोडगंज आदि लगभग छः हज़ार फुट की ऊंचाई पर ये स्थान उनके आकर्षण का केन्द्र बन गए। जिस प्रकार सौहलवीं शताब्दी में कश्मीर के नैसर्गिक सौन्दर्य से प्रभावित मुगल शहनशाहों ने वहां अनेक प्रकार की सुविधायें बरसाईं–इनमें से मुगल रोड विशेष प्रसिद्ध हुई जो आगरा से चलकर पंजाब के नूरमहल सराय से होती हुई राजौरी–पुंछ क्षेत्र में चिंगस, नूरी छम्ब आदि को पार करती हुई कश्मीर में शुपेंय्या के स्थान पर जाकर प्रवेश करती है। इसी प्रकार जहां भी अंग्रेज़ गए उन्होंने अपनी सुख–सुविधा के लिए सर्वप्रथम सड़कों का निर्माण किया और बस्तियां बसाईं। कसौली चूंकि पंजाब के बिल्कुल पास थी और प्राकृतिक सौन्दर्य से अप्लावित थी अतः इसकी ओर उनका ध्यान जाना स्वाभाविक था अनेक अंग्रेजों ने 19सवीं शताब्दी में यहां पदार्पण किया लेकिन सर्वप्रथम सर हेनरी लारेंस ने 1848 में अपनी कोठी यहां पर बनाई जिसका नाम उन्होंने 'सन्नी साईड' रखा। अंग्रेजों ने इसे अति उपयुक्त मानते हुए कसौली और उसके आसपास का इलाका मात्र पांच हजार में बघाट राज्य़ से खरीद लिया। इस खरीद में सर हैनरी लारेंस का बहुत बड़ा हाथ था चूंकि वह 1840 ई0 में यहां आ चुका था और इसके सौन्दर्य का बखान तत्कालीन वाईसराय को तफसील के साथ किया था अतः कुछ ले देकर 1842 में इसे खरीद लिया गया। इसकी खरीद के साथ ही अनेक अंग्रेज अधिकारी इस ओर आकर्षित हुए।

कसौली का स्वतंत्रता संग्राम में अच्छा खासा योगदान रहा। कसौली को खरीदने के बाद यहां पर अंग्रेजों ने एक छावनी बनाई जिससे अनेक सैनिक अधिकारी यहां पर आकर बसने का सोचने लगे थे। छावनी की सत्ता एक अंग्रेज सैनिक अधिकारी जो कि कैप्टेन रैंक का था, के हाथ में थी।1857 में जब सारे देश में विद्रोह की चिंगारी भड़की तो कसौली भी अछूता नहीं रहा। यहां भारतीय सैनिकों ने विद्रोह कर दिया प्रणामतः अंग्रेज अधिकारी अपने माल असबाब की सुरक्षा के लिए तत्कालीन अंग्रेजों के भक्त राजाओं की शरण में जा पहुंचे। कुछ लोग सपाटू और डगसाई की ब्रिटिश छावनियों में प्रस्थान कर गए और बाकी कोटी, धामी, मशोबरा आदि देसीय रियास्तों की शरण में जा पहुंचे। उस समय कैप्टेन बलैककाल यहां तैनात था। वह भी इस विद्रोह की ताक न लगा सका अतः वह कुछ अंग्रेज परिवारों के साथ शिमला की ओर भागा। भारतीय सैनिकों ने छावनी का असला और खजाना आदि अपने हवाले कर जतोग की ओर प्रस्थान किया लेकिन देसीय राजाओं से कोई सहायता न मिलने पर यह क्रांति बैठ गई। बहुत से लोगों को पकड़ लिया गया और अनेक फांसी पर चढ़ा दिए गए। यदि जरा भी सहायता इन क्रांतिकारियों को इन रजवाड़ों से मिलती तो क्रांति का यह हश्र न होता लेकिन अपने स्वार्थ के कारण इन रजवाड़ों ने इस क्रांति को दबाने में पूरा सहयोग अंग्रेजों को दिया।

कसौली एक अति संवेदनशील स्थल था जहां से, मंकी–पुंआयट से कालका और चण्डीगढ़ ठीक मौसम के दिन दिखते हैं। आज यह एक सफल पर्यटन स्थल है। इसके पास एक हनुमान मंदिर है जहां ऐसी धारणा है कि हनुमान ने लक्ष्मण की मूर्छा पर संजीवनी बूटी लाते विश्राम किया था। उनके पदचिन्ह बताये जाते हैं।

कसौली के पर्यावरण को बचाने के लिए अनेक संस्थाओं ने अपना योगदान दिया है पर अब इसे बचाने का बीड़ा यहां की छावनी के अहलकारों ने अपने हाथ में लिया है। सिविल इमारतों को भी सेना अपने अधिकार में लेना चाहती है पर यह कोई विकल्प नहीं हुआ। जो स्थल कभी श्रेष्ठ रचनाकारों का घर रहा हो उसे केवल सेना के हवाले कर देना कहां तक उचित है?

■■■

पर्वत सुन्दरी डलहौजी

अंग्रेजों द्वारा बसाये गए कुछेक प्रसिद्ध पर्वतीय कस्बों में मसूरी, शिमला, दार्जलिंग और डलहौजी का विशेष स्थान रहा है। यद्यपि कालान्तर में शिमला, हिमाचल की राजधानी हो जाने से, खूब विस्तार पा गया और पर्यटन नगरी के रूप में भारत में ही नहीं अथच विश्व के मानचित्र पर इसने अपना नाम अंकित कर दिया। डलहौली, कहीं पर भी अपनी सुरम्यता और प्राकृतिक सौन्दर्य की सम्पदा लिए हुए शिमला से पीछे नहीं था लेकिन राजनैतिक प्रश्रय से जितना विकास शिमला का हुआ डलहौज़ी उसका मुकाबिला नहीं कर सकता था। एक बार, ब्रिटिश इण्डिया काल में शिमला की बढती आबादी को देखकर यह निश्चय भी किया गया था कि पंजाब की राजधानी डलहोजी 'शिफट' कर दी जाए। इस ओर प्रयास भी हुए पर कोई लाभ नहीं–शिमला से अहलकार जाना नहीं चाहते थे बावजूद इसके कि डलहोजी का नव विकसित कस्बा अभी अछूता था और पर्यटन के तौर पर तो ये लोग वहां जाना पसंद करते थे पर वहां जाकर बसना नहीं चाहते थे।

डलहोजी अपने अछूते प्राकृतिक सौन्दर्य के लिए अंग्रेजों के मानस पटल पर अंकित हो चुका था। सर्वप्रथम ईस्ट इण्डिया कम्पनी के पंजाब के मुख्य अभियंता कर्नल नेपियर को डलहोजी का स्थान अति भाया था। यह 1834–35 का वर्ष था जब उसने अपने अधिकारियों को एक प्रस्ताव भेजा कि यहां पर रोगी सैनिकों के उपचार हेतु सेनीटेरियम बनाया जा सकता है। देवदार और फर के वृक्षों से ढका पश्चमी धौलाधार श्रृंखला में यह अति उपयुक्त स्थान था। कुछ देर बाद प्रसिद्ध अंग्रेज घुम्मकड़ विगने, 1838 ई0 में यहां से गुजरते हुए चम्बा पहुंचा। उसने भी इसके नैसर्गिक सौन्दर्य की चर्चा की। अतः सत्ता के गलियारों में हलचल होना शुरु हो गई। पंजाब और शिमला से दो पार्टियां उपयुक्त स्थान के चयन के लिए वहां रवाना हुई। बहुत सोच समझकर सर्वसम्मती से एक पठार चुना गया जहां वर्तमान कस्बा स्थित है। यह 1854 ई0 का वर्ष था जब इसका नामकरण किया गया यद्यपि 1850 ई0 के आस पास ही यहां कुछ भवनों का निर्माण शुरु हो चुका था और एक अस्थाई कार्यालय, गर्मियों में पंजाब सरकार का भी स्थापित किया जा चुका था। उन दिनों ईस्ट इण्डिया कम्पनी के गर्वनर जनरल लार्ड डलहौजी एक सशक्त प्रशासक के तौर पर चर्चित हो चुके थे। जैसे कि परम्परा है अक्सर सर्वोच्च सत्ताधीश के नाम से ही भवनों,गली–कूचों, बाग–बगीचों और मार्गों को संज्ञहित किया जाता रहा है अतः इसका नाम भी डलहौजी ही रखा गया। लार्ड–डलहोजी सन् 1848 ई0 से सन 1856 ई0 तक भारत में कम्पनी के गर्वनर जनरल रहे। पर विडम्बना यह है कि वह कभी डलहोजी नहीं आए। 1856 ई0 में भारत में अंग्रेजों के विरोध में फूट रहे ज्वालामूखी, जिसका विस्फोट अगले ही वर्ष 1857 ई0 में स्वतंत्रता संग्राम के रूप में सामने आया ,के पेशे नज़र लार्ड डलहोजी को इंगलैंड की साम्राझी ने वापिस बुलाने का आदेश दे दिया था। पर इस पठार का नाम डलहोजी के तौर पर ही चर्चित हो आया था। धीरे धीरे इस पठार के आसपास अनेक ब्रिटिश अहलकारों ने, अत्यंत स्वास्थ्यप्रद पर्वतीय स्थल जानकर ,यहां अपनी कोठियां बनानी शुरू कर दीं थीं। चूंकि पंजाब के यह अत्यंत नजदीक था, पठानकोट से मुश्किल से अस्सी किलोमीटर दूर स्थित था, और आने–जाने के लिए मार्ग प्रशस्त हो चुके थे–मात्र पचास किलोमीटर का मार्ग अभी खच्चर मार्ग था जिस पर सर्वे होना शुरू हो चुका था ताकि घोड़ा–गाड़ी के लिए इस मार्ग को खुला किया जा सके।

डलहौजी धौलाधार की पांच श्रृंखलाओं से घिरा पठार है जो अनेक फरदार वृक्षों–देवदार ,ओक, कचीड़ आदि से सज्जित हैं। इनमें बकरोटा, कठलाग तथा दाई कुण्ड विशेष तौर पर चर्चित हैं। बकरोटा, तेरह और पोतराई श्रृखलाओं को घेरे वर्तुलाकार मार्ग प्रशस्त हैं जिनमें से अप्पर बकरोटा की सड़क सबसे लम्बी और अच्छी

है। यहां से एक ओर तो पंजाब के फैले मैदान दिखाई देते हैं तो दूसरी ओर हिम–मण्डित शिखर मन को आल्हादित करते हैं।

बाद में ,डलहोजी के नैसर्गिक सौन्दर्य से प्रभावित होकर अनेक विद्वानों, लेखकों, स्वतंत्रता सेनानियों एवम् राजनेताओं ने यहां पर प्रवास किया। कवीन्द्र रबीन्द्र अपनी बाल्यावस्था में ,12–13,वर्ष की आयु में,अपने पिता महर्षि देवेन्द्रनाथ टेगोर के साथ डलहोजी पधारे थे। वे कुछ समय के लिए स्नोडाऊन–जो पहले झण्डेवाली कोठी कहलाती थी, बकरोटा में ठहरे थे। वे अपने इस छोटे प्रवास के प्रति अक्सर आतुर रहते। सन् 1912 ई0 में, 51 वर्ष की आयु में जब कवि ने अपनी आत्मकथा ,जीवन स्मृति ,लिखी तो इस प्रवास के बारे में अति संवेदनशील शब्दों में अंकित किया उन्होंने इसमें उल्लेख किया है–पृ0 45–47 पर। इस संस्मरण से हमें पता चलता है कि अप्रैल, 1873 ई0 में किशोर रवीन्द्र नाथ को लेकर उनके पिता महर्षि देवेन्द्रनाथ, अपने मित्र, किशोर मोहन चैटर्जी के साथ अमृतसर से पठानकोट होते हुए डलहोजी पहुंचे थे जहां उन्होंने बकरोटा की पहाड़ियों पर वास किया था। इसकी चर्चा महर्षि देवेन्द्र नाथ द्वारा कलकत्ता के प्रसिद्ध ब्रहमसमाजी राजनारायण को 25 अप्रैल, 1873 ई0 में लिखे पत्र में की गई है।

बकरोटा में रवीन्द्र नाथ ठाकुर इस पहाड़ी के शिखर पर स्थित एक कुटीर में रहे जो देवदार के जंगलों से घिरी थी और रवीन्द्र नाथ अक्सर इन जंगलों में विचरण किया करते थे। रवीन्द्रनाथ ने लिखा है कि वहां मई माह में भी खूब ठण्ड होती थी। जहां तक कि कहीं कहीं पर बर्फ के फाहे भी देखने को मिल जाते थे जो पूरी तरह से पिघले नहीं थे। इसके वातास का कवितामय चित्रण करते हुए रवीन्द्रनाथ ठाकुर लिखते हैं–'पर्वत का छोर लम्बे मनोहारी देवदार के वृक्षों से ढका था। फूलों को बसंत ने खिला दिया था–ऐसा मनोरम दृश्य मैंने पहले कभी नहीं देखा था। ऐसे फूलों के प्रथम बार दर्शन हो रहे थे जिनका नाम भी मैं नहीं जानता था। छोटे छोटे झरने ऐसे नर्तन कर रहे थे जैसे कि आश्रम में ,भक्ति में लीन साधुओं के चरणों में छोटी छोटी कन्यायें कीड़ारत हों।' अपनी दिनचर्या और पिता के कठोर अनुशासन की ओर संकेत करते हुए रबीन्द्र नाथ लिखते हैं– 'अरूणोदय से पूर्व ही पिता जी मुझे संस्कृत व्याकरण पढ़ाने हेतु जगा देते थे। संस्कृत पाठ समाप्त होने के पश्चात, पिताजी तथा मैं दूध पीते थे और बाद में पिता जी उपनिषदों से श्लोकोच्चारण करते तथा मैं मंत्र मुग्ध होकर उन्हें सुनता रहता था। फिर हम प्रातः कालीन भ्रमण पर निकल पड़ते थे।'

घर वापसी पर ,बेटा पिता से एक घण्टे तक अंग्रेजी का अध्ययन करता था फिर ठण्डे पानी से स्नान किया जाता। दोपहर बाद और सांयकालीन समय पाठ पढ़ाए जाते। दोपहर को किशोर रवीन्द्रनाथ कभी कभी झपकी ले लेता था।

ऐसा लगता है कि अप्रैल–मई–जून 1873 ई0 में, लगभग तीन माह तक रवीन्द्रनाथ डलहोजी में ठहरे थे। किसी भी पर्वतीय क्षेत्र में यह उनकी पहली यात्रा थी।

'जीवन स्मृति' में उन्होंने यह उल्लेख किया है कि उन्हें डलहोजी में पहली बार स्वतंत्रता का अहसास हुआ था। कलकत्ता के घर तथा स्कूल के नीरस जीवन से कुछ सप्ताह दूर रहते हुए उन्हें न केवल अत्यधिक प्रसन्नता हुई अपितु यह समय उनके बाल्यकाल तथा प्रारम्भिक शिक्षा के लिए एक बहुमूल्य अनुभव सिद्ध हुआ।

कवीन्द्र रवीन्द्र द्वारा बाद में रचित कविता 'हसीरपथ्य' में डलहोजी के प्रवास, पहाड़ियों में भ्रमण और बाल्यकाल की मधुर स्मृतियों का जिक मिलता है। डलहोजी प्रवास के दौरान कविमना किशोर रवीन्द्रनाथ ठाकुर पर प्रकृति ने ऐसी अमिट छाप छोड़ी के बाद में शान्तिनिकेतन के रूप में खुले शिक्षा संस्थान का आग़ाज हुआ। 28 भादों ,बंगला सम्वत 1377, तदानुसार सन् 1910 ई0 में भोलपुर से पद्मिनी मोहन सेनगुप्त को भेजे एक पत्र द्वारा दो पृष्ठों में जीवनवृत्त प्रकाशनार्थ भेजा था। इसमें उन्होंने लिखा–'मेरी माता की मृत्यु से दो या तीन

वर्ष पूर्व, मेरे पिता मुझे अमृतसर होते हुए डलहोजी ले गए जब कि मैं 11–12 वर्ष का था। बाहिरी स्थान से यह मेरा पहला परिचय था। निस्संदेह इस यात्रा ने मेरे परवर्ती लेखन को अत्याधिक प्रभावित किया। पिता जी के हिमालय में तीन माह के ठहराव के दौरान, मैंने अंग्रेजी, संस्कृत और ज्योतिष विद्यायें सीखीं। उन तीन महीनों में स्कूल के बंधनों से मुक्त और प्रकृति के सम्पर्क में रहते हुए मुक्त आनन्द लेने के बाद मेरे कलकत्ता लौटने पर मुझे औपचारिक पठन के सभी बन्धनों ने जकड़ लिया।'

'अब, इस प्रौढ़ावस्था में मैंने इस शिक्षा संस्थान अर्थात शांति निकेतन में विश्वभारती विश्वविद्यालय की स्थापना छात्र जीवन के आचरण की क्षतिपूर्ति के लिए की। मेरे पास बचने का कोई दूसरा रास्ता नहीं रहा। साथ ही मैं सतर्क भी था कि विश्वभारती का वातावरण अध्ययन प्रणाली पर्याप्त आकर्षक हो जिससे कि संस्थान के छात्रों को स्कूल से भागने की रुचि ही न हो।'

महान स्वतंत्रता सेनानी और आजाद हिन्द सेना के संस्थापक सुभाष चन्द्र बोस दूसरे बंगाली थे जिन्होंने डलहोजी के नैसर्गिक सौन्दर्य को अति पसंद किया था। उनका डलहोजी में आना 1937 ई0 में हुआ। वस्तुतः निरंतर प्रवास तथा भ्रमण ने उनके स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव छोड़ा था। डलहोजी में रहकर वे स्वास्थ्य लाभ करना चाहते थे और साथ ही एकांतिक वास के दौरान अध्ययन, मनन के साथ साथ स्वतंत्रता संग्राम की गतिविधियों को उत्तरी भारत में तेज करना चाहते थे। डलहोजी में वे मेहर होटल में ठहरे थे परन्तु लाहौर से आकर डलहोजी बसे कान्ग्रेस के नेता डॉ0 धर्मवीर को जब उनके आगमन के बारे में पता चला तो वे सुभाष चन्द्र को अपने भवन 'कायनैंस' ले गए। डॉ0 धर्मवीर की अंग्रेज पत्नी भी कांग्रेस की सदस्या थी। अक्सर यहीं पर स्वतंत्रता संग्राम में संलिप्त क्रांतिकारी और अन्य लोग उनसे मिलने और दिशा पाने आते रहे। प्रातः वे लम्बे भ्रमण पर निकल जाते और वापिसी पर एक प्राकृतिक जल स्रोत ,जिसे अभी बांधा नहीं गया था, के पास ठहर कर जलग्रहण करते और कुछ समय ध्यान में बिता कर वापिस लौट आते थे। बाद में इस जलस्रोत को बांधकर बावड़ी का रूप दे दिया गया और इसका नाम रखा गया सुभाष बाउली। यह बावड़ी कस्बे के मुख्य चौक, गान्ध ी चौक से लगभग एक किलोमीटर दूर आज भी पर्यटकों के आकर्षण का केन्द्र और पूज्य स्थल है। नेता जी सुभाष चन्द्र बोस लगभग तीन माह तक डलहोजी में रहे कि अचानक अंग्रेजों को उनके वहां होने का पता चल गया अतः पुलिस की गतिविधियां तेज हो गई थीं जिन्हें देखते हुए नेता जी अचानक एक दिन वहां से लुप्त हो गए।

डलहोजी के साथ एक अन्य स्वतंत्रता सेनानी का नाम जुड़ा है। प्रसिद्ध स्वतंत्रता सेनानी सरदार अजीतसिंह आजीवन स्वतंत्रता पाने के लिए देश की आजादी के लिए लड़ते रहे। चालीस वर्ष तक उन्होंने बनवास भोगा और वृद्धावस्था में चैन की सांस लेने के लिए डलहोजी चले आए और यहां स्प्रिंग नामक होटल में ठहरे। विडम्बना देखें जब उक्त होटल में शतरंज की बाजी लगाते 14 अगस्त 1947 को रेडियो से भारत के स्वतंत्र होने की खबर सुनी तो खुशी से झूम उठे पर साथ ही एक बुरी खबर सुनी कि देश का बटवारा हो गया है। इस खबर की वह ताक नहीं लगा पाये और ऐसे सदमे में चले गए कि 15 अगस्त 1947 ई0 को अर्थात दूसरे रोज, भारत के स्वतंत्रता दिवस पर, जिसके लिए वे आजीवन संघर्षरत रहे ,एक दिन भी स्वतंत्र भारत में नही जिए अथच यह दिवस उनका काल बनकर आया। उन्हें डलहोजी चौक से लगभग तीन किलोमीटर दूर पंजपुल्ल के पास लेजाकर उसी रोज अंतिम संस्कार कर दिया गया। बाद में वहां उनकी समाधि बना दी गई।

स्वतंत्रता के साथ ही डलहोजी पर कुठाराघात हुआ। अंग्रेज भारत छोड़ने लगे थे। शिमला, मसूरी, डलहोजी जैसी उनके द्वारा स्थापित ऐश्वर्य नगरियां उजड़ने लगी। शिमला चूंकि देश की गर्मियों की राजधानी था उसे कुछ फर्क नहीं पड़ा पर मसूरी और डलहोजी बुरी तरह से प्रभावित हुए। यहां अधिकतर अंग्रेज ही भवन

बनाकर रहते थे और गर्मियां बीताने आते थे। अब ये कोठियां भूतह लगने लगीं थीं और बाज़ार खाली–खाली। उन दिनों गर्मियों में अक्सर जालंधर के सांसद, रायज़ादा हंसराज डलहोजी में आया करते थे। वस्तुतः वे नगर परिषद के सक्रिय सदस्य और सामाजिक कारकुन भी थे। उन्हें डलहोजी का इस प्रकार बिखरना अच्छा नहीं लगा। चुनाचे किसी तरह उन्होंने भारत के प्रथम प्रधानमंत्री को डलहोजी लाने की योजना बनाई ताकि वे इसके प्राकृतिक सौन्दर्य से प्रभावित होकर इसे फिर से जीवंत कर पायें। चुनाचे 1954 ई0 में जब इस कस्बे की सौवीं वर्षगांठ मनाई जा रही थी रायज़ादा हंस राज पंडित नेहरू को डलहोजी लाने में सफल हो गए। पंडित नेहरू डलहोजी की प्राकृतिक संपदा और वातास से इतना अभिभूत हुए कि उन्होंने इसे पहाड़ों की रानी की संज्ञा दे डाली परिणामतः वहां विकास के सौपान तय किए जाने लगे और इस हिमालयी शहजादी को देखने पर्यटकों का सैलाब उमड़ पड़ा। एक बार फिर यह कस्बा जीवंत हो आया। बाद में पंजाब रियास्त के विभाजन के साथ हिमाचल प्रदेश वजूद में आया और एक नवम्बर 1966 ई0 में इसे चम्बा के साथ मिला दिया। आज यह चम्बा जिले की नयाबत है। अभी हाल ही में इसकी 150वीं वर्षगांठ खूब धूम–धाम से मनाई गई।

डलहौजी अब अच्छे मार्गों से मुख्य मार्ग से जुड़ा है। पठानकोट कांगड़ा राष्ट्रीय मार्ग से चक्की मोड या डलहोजी मोड़ पर धार मार्ग द्वारा मिलता है। इस मोड़ से डलहोजी लगभग सत्तर किलोमीटर दूर है–पठारों, घने जंगलों, पर्वतों से होते जैसे विश्व के शिखर पर हम पहुंच जाते हैं। एक अन्य मार्ग कांगड़ा से गग्गल होते हुए द्रमण के स्थान से राष्ट्रीय मार्ग से अलग होकर ऊपर ऊंचाई की ओर चढ़ने लगता है। कच्चे घरोंदों, ग्राम–प्रान्त से होता हुआ यह मार्ग ऊंचाई की ओर उन्मुख होता हुआ–दो राहे पर पलभर ठहर जाता है–एक रास्ता जोत की ओर अग्रसर होकर चम्बा पहुंचता है तो दूसरा खजियार को एक ओर कर आगे बढ़ता हैं

डलहोजी के आसपास बहुत अच्छे दर्शनीय स्थान हैं जिनमें काला–टोप, खजियार, जोत, चमेरा झील आदि लिए जा सकते हैं। कालाटोप डलहोजी के मुख्य चौक से साढ़े आठ किलोमीटर दूर ट्रेकिंग का अच्छा मार्ग है। अब जीप का मार्ग इसे डलहोजी से जोड़ता है। यह चोटी लगभग आठ हज़ार फुट ऊंची है। वन आश्रालय विश्राम तथा रात्रि काटने के लिए काफी है। जबकि खजियार एक प्राकृतिक छोटी सी कटोरी की तरह झील है जो देवदारों के घने जंगलों से घिरी है। छः हज़ार फुट से ज्यादा ऊंचा यह पर्यटन स्थल अक्सर धुंधा में लिपटा रहता है। छोटे झीलनुमा ताल में एक द्वीप सा तैरता रहता है। इसके किनारे स्थानीय देवता खज्जी नाग का प्रसिद्ध मंदिर है। इस मंदिर में मेई के माह में एक बड़ा मेला लगता है। चम्बा चोआडी मार्ग का सर्वोच्च स्थल जोत कहलाता है जो साढ़े आठ हज़ार फुट से भी ज्यादा ऊंचा है जो डलहोजी से लगभग 25 किलोमीटर दूर है। गर्मियों में इसे घेरे बुरांस के फूलों के वृक्ष जब फूलते हैं तो लगता है कि सारे जंगल में आग लग गई है। गर्मियों में भी यहां खूब ठण्ड होता है और सारा वर्ष खूब हवा चलती रहती है।

डलहोजी से चम्बा मार्ग पर, 30 किलोमीटर दूर एक सुन्दर झील स्थित है जहां पानी की खेलें आयोजित की जातीं हैं।

डलहोजी कस्बे के आस–पास अनेक गिरजाघर हैं जिनमें सेंट एन्ड्रियु का चर्च, सेट पैट्रिक चर्च ,सेंट फ्रैंसिस चर्च ,सेट जॉह्न चर्च आदि प्रसिद्ध हैं। इस प्रकार डलहोजी में समय बिताना कोई मुश्किल नहीं अनेक दर्शनीय स्थल हैं।अक्सर पर्यटक यहीं से खजियार से होकर चम्बा की ओर निकलते हैं। अनेक साहसी पर्यटक खजियार ट्रैकिंग करते हुए पहुंचते हैं।

क.सेंट फ्रैंसिस चर्च ,डलहोजी

डलहौजी का कस्बा एक सौ 51 वर्ष पहले वजूद में आया था। वस्तुतः बीमार ब्रिटिश सैनिकों के लिए एक

सेनीटेरियम के निर्माण के लिए किसी उपयुक्त पर्वतीय स्थल की खोज लगभग 1850 ई0 में शुरू हुई और अगले वर्ष यानि कि 1851 ई0 में दाईकुंड का पर्वतीय पठार अति उपयुक्त माना गया जो फरदार वृक्षों से घिरा था। लेकिन इसके पहले कि यह सेनीटेरियम वजूद में आए, ब्रिटिश अहलकारों को यह स्थान इतना भा गया कि उन्होंने यहां पर गर्मियों में रहने के लिए आवास बनाने शुरू कर दिए परिणामतः अनेक बंगले वजूद में आए। यह इस कस्बे का पहला स्वरूप था। यह स्थान चम्बा के राजा से ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने खरीद लिया था और चम्बा के राजा द्वारा दिए जाने वाले सालाना 12000/– रुपये के टैक्स को कम कर दस हज़ार सालाना कर दिया था। सर डोनाल्ड मक लीड की सिफारिश पर इस स्थान का नाम 1854 ई0 में तत्कालीन ब्रिटिश इण्डिया के गवर्नर जनरल लार्ड डलहौजी के नाम अनुरूप डलहौजी रखा गया। तत्कालीन ब्रिटिश सेना की अनेक टुकड़ियां यहां लाईं गईं। लाहौर से ब्रिटिश इन्फैंटरी रेजीमेंट के अहलकारों के लिए क्वाटर बनाए गए पर ज्यादातर सैनिक बैरकों में रहने लगे थे जबकि शादी–शुदा जोड़ों को टैंटों की रिहायश मिली। इस प्रकार डलहौजी एक सैनिक छावनी की तरह फलने–फूलने लगा। सरकार द्वारा लगभग एक हजार एकड़ जगह इस कस्बे के लिए निर्धारित कर ली गई थी। इस कस्बे का मुख्य भाग बलुन था जो बलुन छावनी के रूप में प्रसिद्ध हुआ। यह छावनी सन 1868 में स्थापित हुई। अनेक दिक्कतों को देखते हुए, विशेषकर अंग्रेज अहलकार बेतरतीब तरीके से बंगले बना रहे थे, परिणामतः ब्रिटिश इण्डिया सरकार ने 1856 ई0 में केप्टन फागन को डलहोजी भेजा ताकि वह मुआयना कर रिपोर्ट दे कि इसका विकास कैसे किया जा सके। उसने सर्वे कर सरकार को रिपोर्ट दी कि बिना तरतीब के बंगले बन रहे हैं। परिणामतः कस्बे का स्वरूप बहुत गड़बड़ा गया है। सबसे बड़ी बात यह थी कि उच्च ब्रिटिश अधिकारी उपयुक्त स्थान पर अपने बंगले बना रहे थे। कैप्टन फागन इस योग्य नहीं था कि उन्हें रोक सके अतः सरकार ने एक नियमावली प्रसारित की जिस में कुछ स्थान बोली के साथ लिए जा सकते थे। 1861 ई0 में 400 प्लाट बोली पर दिए गए। अब इस कस्बे को तरतीब दी जा रही थी। इन लोगों विशेषकर अंग्रेज परिवारों के लिए पहला चर्च 1863 ई0 में वजूद में आया। अनेक समस्याओं और कस्बे की सफाई तथा तरतीब देने के लिए 1867 ई0 में नगर निगम की स्थापना की गई। इसके दूसरे वर्ष ही बलुन छावनी स्थापित की गई। सैनिक परिवारों के स्वास्थ्य को ध्यान में रखते हुए सैनिक हस्पताल सन् 1871 ई0 में स्थापित किया गया। अब तक डलहौजी एक स्वास्थ्य केन्द्र तथा प्राकृतिक नैसर्गिक केन्द्र के रूप में चर्चित हो चुका था। परिणामतः अनेक चर्चित चिंतक, साहित्यकार, देश भक्त इस ओर उन्मुख हुए। सन् 1873 ई0 में अपनी शैशव अवस्था में भविष्य के श्रेष्ठ कवि एवम् चिंतक रवीन्द्रनाथ ठाकुर का भी आगमन डलहौज़ी में हुआ। और एक दशक के बाद प्रसिद्ध साहित्यकार तथा नोबल पुरस्कार विजेता, रूदयार्ड किपलिंग भी डलहौजी आए। और उसी वर्ष डलहोज़ी का दूसरा चर्च सेंट फ्रैंसिस चर्च वजूद में आया।

सेंट फेंसिस चर्च 1894 ई0 में कस्बे के मुख्य चौक सुभाष चौक में स्थापित किया गया जो कि बस अड्डे से आध किलोमीटर दूर है। यह चर्च स्थापत्य का अद्‌भुत नमूना था। काष्ठ शिल्प और खुले गलियारों और शीशे की खिड़कियों से युक्त यह चर्च अपनी एक मिसाल था।

यह चर्च पांच एकड़ भूमि में फैला है जिसमें एक बहुत सुन्दर बागीचा भी लगा है।

इस चर्च को बनाने में लाहौर से आए एक खास तबके का बहुत महत्वपूर्ण योगदान रहा है। कम्पुचनी तबके के फादर 1861 ई0 में लाहौर से यहां आए और अपना घर यहां बनाया। लगभग 33 वर्ष तक वहां रहने के बाद सरकार की ओर से, उनके प्रयास से एक चर्च स्थापित करने के लिए जगह दी गई। पांच एकड़ भूमि इस चर्च के निर्माण के लिए अलग रख दी गई थी। उन लोगों ने स्थानीय मिस्त्रियों की सहायता से स्थानीय पत्थर, लकड़ी से नितांत पाश्चात्य शैली में चर्च का निर्माण करवाया। पाथरी, बकलोह आदि से ही सामान लाया गया

था। फादर एवन के अनुसार जब वे पुराने स्थानीय मिस्त्रियों से मिले तो उन्होंने इस ओर उनका ध्यान खींचा कि यह चर्च उन्हीं के बाप–दादाओं द्वारा स्थानीय इमारती सामान से बनाया गया था।

अलबत्ता ये मूर्तियां बाहिर से लाई गईं थीं। उन दिनों ये मूर्तियां बाहिर से आसानी से लाईं जा सकतीं थीं। कोई ऐसे सख्त कानून भी नहीं थे। वैसे भी ऐसे स्वरूप की मूर्तियां बनाना यहां के शिल्पियों के बस में नहीं था–बिल्कुल उसी तरह जैसे भारतीय परिवेश में विकसित परिवेश को पाश्चात्य शिल्पि उभारने में सक्षम नहीं होते।

चर्च में ढुकते ही बाईं ओर अनेक मूर्तियों को स्थापित पाते हैं। ये मूर्तियां भी तभी की हैं जब यह चर्च वजूद में आया। इनका स्वरूप और बनावट इस ओर संकेत करती है कि ये आयरिश मूर्ति शिल्प की तकनीक और शैली में बनाई गईं हैं। इन्हें गत चार वर्ष पहले डलहौजी की 150 वीं वर्षगांठ को देखते हुए एक बार फिर संवारा गया। वस्तुतः ये मूर्तियां प्रभु यीशु मसीह की जीवनी का एक अटूट अंश है और उन दिनों की यादें ताज़ा कर देतीं हैं जब प्रभु यीशु मसीह को अनेक प्रकार की यातनायें देकर क्रास पर चढ़ाकर सूली दे दी गई थी। इसे चौदह मुकाम की संज्ञा से जाना जाता है–यानिकि वह चौदह स्थान जहां यीशु को यातनायें दीं गईं। खासकर रोजों के दिनों में जिसे पादरी लोग लेंजन सीज़न कहते हैं में क्रिश्चियन लोग विशेष विधि से प्रार्थना करते हैं।

चर्च की देख–सम्भाल तथा इसका प्रबन्ध कम्पुचिन जमात या आर्डर करता है। इस मत के अनेक गिरजाघर विश्वभर में स्थित हैं। अवल तो स्थानीय लोगों के दान से इस की देख–रेख की जाती है पर यदि और पैसा चाहिए तो कम्पुचिन चर्च सोसाईटी इसे पूरा करती है। ब्रिटिश इण्डिया के समय तो क्रिश्चियन लोग ज्यादा थे–ज्यादातर अंग्रेज लोगों का ही यहां वास था अतः कभी पैसे की कमी नहीं आई–उन दिनों भी जब इसका निर्माण हो रहा था पर बाद में, देश की आज़ादी के बाद अनेक ब्रिटिश लोग यहां से चले गए और धीरे धीरे पंजाब तथा आस–पास के लोग, व्यवसाई यहां पर बस गए जो अधिकतर हिन्दू धर्मावलम्बी थे अतः दान कम होता चला गया। हिन्दू भी यद्यपि बीच–बीच में विशेष सभाओं पर चर्च में आते हैं और यथायोग्य दान भी देते हैं पर निरंतरता समाप्त हो जाने से इस ओर दिक्कत आना स्वाभाविक थी।

फादर एवन इस ओर ध्यान दिलाते हुए कहते हैं कि यह पर्यटन स्थल हैं और एक तरह से प्राचीन धार्मिक स्थल भी। ऊंचाई पर होने से पर्यटक इसे देखने और इसके खुले बगीचे में पल भर सांस लेने और प्राकृतिक छटा को निहारने चले आते हैं। सरकार की ओर से कोई योगदान नहीं मिलता। हां अधिकारियों को या नगर–निगम के अहलकारों को जब सफाई, पानी आदि के लिए कहा जाए तो वे जरूर मदद करते हैं पर अन्य कोई योगदान हमें नहीं मिलता। वे यह कहकर किनारा कर लेते हैं कि यह निजी जयदाद है सार्वजानिक नहीं अतः सरकार इसमें कोई आर्थिक योगदान नहीं दे सकती।

फादर एवन ने बड़ी मेहनत से इसे सजाया संवारा है। इसका बगीचा देखने लायक है। फादर एवन का यह कहना है चूंकि यह पर्यटन स्थल है और डलहौजी में देखने लायक और कोई खास स्थान नहीं अतः इसे और विकसित करने के लिए जल संग्रहण कर एक सरोवर बनाने की जरूरत है जिसमें मछली पालन के साथ–साथ बतखों को भी पाला जाए तो पर्यटक पलभर ठिठक कर उन्हें अठखेलियां करते देखकर प्रसन्न होंगे। केवल पर्यटक ही नहीं अपितु यहां के स्थानीय निवासी भी सैर करने और इन्हें देखने आ सकते हैं।

यह स्थान सर्वप्रथम विकसित हुआ था। ठीक सुभाष चौक में स्थित यह चर्च अपने परिवेश के नैसर्गिक सौन्दर्य के कारण आकर्षक का केन्द्र रहा हो पांच एकड़ के परिसर में चर्च है, फादर के रहने के लिए निवास स्थान हैं और कभी सेमीनरी यहीं चलाई जाती थी और पीछे एक सौ वर्ष पुराना स्कूल है जो कभी महिलाओं

के लिए कालेज था। उत्तरी भारत में उन दिनों महिलाओं की पढ़ाई के लिए कालेज नहीं होता था तो एस.सी. जे.एम. सोसाईटी की सिस्टरें यहां आईं–यह 'सीसटर्स ऑव चेरिटी ऑव जेसस एण्ड मैरी' नाम से अति प्रसिद्ध संस्था रही है जिसमें अनेक देशों की सिस्टर सेवारत हैं। उन दिनों ब्रिटेन तथा बेल्जीयम से ये सिस्टरें आईं थीं और उन्होंने महिलाओं के लिए कालेज स्थापित किया था। पर अब मात्र यह चर्च है और कन्वेंट स्कूल है। चर्च परिसर के दोनों ओर सड़क है। इस चर्च के बनने के बाद ही इस ओर का विकास शुरू हुआ–सड़कों का निर्माण हुआ–लोगों की सुविधाओं के लिए दूकानें बनी और धीरे धीरे दूसरे संस्थान भी विकसित हुए।

पुराना चर्च होने से इसका फर्नीचर एंटिक वैल्यु रखता है। इसके स्टोर में पड़े टूटे–फूटे फर्नीचर से अभी भी प्राचीन वैभव झांकता नज़र आता हैं

अक्सर प्रकोष्ठों को सर्दियों में गर्म रखने के लिए बुखारियां बनाई गई है। पर इधर इनका उपयोग खत्म हो गया है क्योंकि अब बिजली से चलने वाले हिटर, बलोअर आदि का प्रचलन हो आया है। इनका दोहरा लाभ यह है कि लकड़ी जलने से एक तो लकड़ी का ह्रास होता था दूसरे पर्यावरण प्रदूषित होता था– जितना मर्जी साज सम्भालकर इन बुखारियों को मगाया जाता फिर धूएं को रोका नहीं जा सकता था। पर अब बिजली की सुविधा ने सब कुछ आसान कर दिया है।

एक सौ ग्यारह वर्ष पुराना यह चर्च हमारी विरासत का अटूट हिस्सा है–इसकी सांभ–सम्भाल हमारा सांझा दायित्व है–मात्र सरकार की ओर न देखकर हमें भी अपना योगदान करना चाहिए।

सेंट जॉह्न चर्च

डलहौज़ी का कस्बा बहुत पुराना नहीं है–मात्र डेढ़ सौ वर्ष पहले यह वजूद में आया था। यह भी एक दिलचस्प बात है कि यह कस्बे के तौर पर कभी भी तैयार नहीं किया गया था न ही इसे इस रूप में बनाने की बात उस समय थी जो आज वर्तमान स्वरूप लिए हुए है। वस्तुतः ब्रिटिश सेना के लिए चम्बा की पहाड़ियों में एक अदद सेनीटेरियम बनाने के लिए जगह की तलाश शुरू हुई थी। यह खोज दाईकुंड पर्वतीय सतह पर जाकर खतम हुई जो कि सतह समुद्र से 7500 फुट ऊंची थी। इस प्रकार यह प्रथम चरण था जब इस कस्बे की नींव रखी गई। सैनीटेरियम तो बाद में बना पहले ब्रिटिश सेना में उच्च पदों पर नियुक्त सेना अधिकारियों ने सुन्दर और प्राकृतिक तौर पर नैसर्गिक स्वास्थ्य प्रद स्थान देखकर अपने बंगलें बनाने शुरु कर दिए थे–इस प्रकार–बंगलों का गांव वजूद में आ गया था

इसे किस नाम से पुकारा जाए यह समस्या सामने थी। यह 1854–55 का वर्ष था। उन दिनों ब्रिटिश–भारत का वायसराय लार्ड डलहौज़ी था अतः अपनी स्वामी भक्ति का परिचय देते हुए इन ब्रिटिश सेना अधिकारियों ने सर्वसम्मति से इस नए गांव का नाम डलहौजी रखा। धीरे धीरे इसका विकास होने लगा। कहीं बेतरतीब बंगलों का संसार न फैल जाए–एक कन्ट्रोल बोर्ड की स्थापना की गई। यह 1856 ई0 का वर्ष था जब कैप्टेन फागन को ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा इसके विकास सम्प्रेषण तथा यातायात के साधनों के प्रबन्धन में लगाया चुनाचे सन 1859 की एक नियमावली के अन्तर्गत जंगलों की सुरक्षा, सफाई आदि को प्रचारित किया गया।

यद्यपि नाम तो वायसराय का था पर यह विडम्बना है कि वह कभी भी इस कस्बे में आये ही नहीं। अगले वर्ष जल वितरण की व्यवस्था भी सुनिश्चित कर दी गई। 1861 ई0 में अनेक मंहगे स्थानों की बोली लगाकर इसका राजस्व बढ़ाया गया। अब यह छोटा सा गांव धीरे धीरे करवट लेने लगा था और एक भव्य कस्बे के रूप में अपना वजूद पा चुका था।

जब ब्रिटिश सेना अधिकारी यहां रसने–बसने लगें तो उनके साथ, उनका परिवार, नौकर–चाकर,व्यवसाई,शिल्पि, कामगर आदि भी बसते गए परिणामतः आस्था स्थलों की आवश्यकता सामने आई। शिल्पियों, कामगरों तथा स्थानीय नौकर–चाकरों में बहुत से हिन्दू मलम्बलम्बी थे जो अनेक देवी–देवताओं में आस्था रखते थे अतः अनेक छोटे–छोटे आस्था स्थल बावडियों के फलकों पर, वृहद् वृक्षों की छाया तले, पहाड़ियों की ऊंचाइयों पर अपने आप ही उभर आए थे। दूसरी ओर अंग्रेज, उनके परिवार के सदस्य आदि ईसाई थे और हर रविवार ब्रिटेन में गिरजाघरों में सामूहिक प्रार्थनाओं का प्रचलन था।

वस्तुतः ये आस्था स्थल एक ओर तो आस्था के केन्द्र थे और दूसरी और सामाजिक दीर्घाओं में अपना वर्चस्व स्थापित करने के लिए अनेक परिवार इन आस्था स्थलों का भरपूर लाभ उठाते थे। अतः चर्च वजूद में आए। यह 1861 ई0 का वर्ष था जब कस्बे में उपयुक्त स्थान चुन कर चर्च का बनाने का स्वप्न लिया गया। पहले हर रविवार को वहां पर ब्रिटिश सेना अधिकारियों तथा दूसरे अहलकारों के परिवार उस स्थान पर मिलने लगे और चर्च की परिकल्पना की गई जो 1863 ई0 में जाकर साकार हुई।

यह चर्च गोथिक शैली में बनी अद्‌भुत इमारत है जिसमें स्थानीय पत्थर और लकड़ी का ही इस्तेमाल हुआ है। वस्तुतः शैली तो पाश्चात्य है दीवारें, छत, दरवाजे, खिड़कियां उसी शिल्प को अंगीकार कर बनाई गईं हैं–प्रवेश द्वार और खिडकियों के पाषाण ढांचे कमानीदार हैं और उनमें फिट होते लकड़ी के फ्रेम भी ऊपर जाकर कमानीदार हो जाते हैं। छत ढालुआं आकार लिए है जो दीवारों के साथ क्रास बनाती प्रतीत होती है और ठीक गोथिक शैली में निर्मित है लेकिन छत को ढकती स्लेटों का प्रयोग अद्‌भुत स्वरूप लिए है जिसे मात्र स्थानीय मिस्त्री ही लगा पाते थे।

इसी प्रकार देवदार और दूसरे फरदार वृक्षों की लकडी बहुतायत में इस्तेमाल हुई है और पत्थर स्थानीय ही है। पाश्चात्य शैली में स्थानीय इमारती सामान का अद्‌भुत प्रयोग हुआ है। इस ओर अवकाश प्राप्त बिशॅप कैंडल इस ओर संकेत करते हुए कहते हैं कि अनेक स्थानीय मिस्त्री इस ओर संकेत करते हैं कि इनके बाप दादाओं के समय यह चर्च बना था। और पत्थर तथा लकड़ी के स्थान स्थान से ढोकर यहां लाते थे और पत्थरों को तराशकर लगाते थे।

चर्च का मुख्य हाल इतना खुला है कि उसमें एक समय पर डेढ़ सौ से दो सौ तक लोग बैठ सकते हैं। वेदिका के ऊपर रंगीन शीशे की खिड़कियों में अनेक रंगी शीशों को रूप देकर बाईबल की अनेक कथायें रचीं गईं हैं। भीतर प्रकाश होने से रंगीन छब्बों में रौशनियां बाहर प्रांगण में बिखर कर अपना रंगीन स्वप्निल संसार बनातीं हैं।पीछे एक अन्य कमरा वेस्ट्री कहलाता है जिसमें फादर लोग तैयार होकर सभा को सम्बोधित करते हैं या सामूहिक गान तैयार करते हैं। इसी प्रकोष्ठ में मसीह भजनों की पुस्तकें भी रखी गईं हैं और एक ओर एक तिजोरी पड़ी है जिसमें लोगों द्वारा दिया गया चंदा जमा रहता है।

चर्च के पार्श्व में एक अन्य भवन है लो कभी स्कूल के लिए निर्मित किया गया था पर अब पादरी लोग उसमें रहते हैं।

सेंट जॉह्न चर्च कस्बे के ठीक बीच में, गान्धी चौक में स्थित है जो बस अड्डे से अढ़ाई किलोमीटर दूरी पर है। बाहर प्रांगण में साफ–सुथरा लॉन है जहां कलात्मक बैंच रखे गए हैं।

हर रविवार को यहां प्रार्थना सभा होती है जिसमें स्थानीय तथा बाहर से आए लोग भाग लेते हैं। रविवार के रोज़ खूब रौनक रहती है जब लोग हल्की सर्दियों में इन कलात्मक बैंचों पर बैठे धूप सेकते बतियाते रहते हैं और वातावरण का आनन्द लेते हैं।

इस चर्च की सबसे बड़ी खूबी यह है कि भीतर का तापमान सख्त गर्मियों में भी यकसां रखा जाता है।

इस ओर संकेत करते हुए सिस्टर जेन केलर कहतीं हैं कि अक्सर गर्मियों में या बरसातों में उमस के कारण भीतर दम घुटने लगता था अतः प्राकृतिक हवा की आवा-जावी के लिए गलियारों में लकड़ी के फर्श के नीचे रोशनदानों और हवाघरों का प्रबन्ध किया गया। बाहर की हवा इन सुराखों से भीतर ढुक कर श्रद्धालुओं को राहक पहुंचाती है। यह प्रक्रिया अभी भी निरंतरता लिए हुए है।

बिशॅप कैंडेल ने बिशप होने की प्रक्रिया पर रोशनी डालते हुए कहा कि बिशॅप का चयन होता है और उस पर अनेक तरह की जिम्मेदारियां आयत होतीं हैं।

इस चर्च में अनेक वस्तुएं, इतनी पुरानी और सहेज कर रखी गईं हैं कि वे अब तक, डेढ़ सौ साल के करीब पुरानी होने पर भी नई दीखतीं हैं-इनमें कुछ बर्तने, बेल, मूर्तियां आदि तो हैं ही अथच पुराने,सौ साल से भी ज्यादा उम्र के कई राज़नामचे तथा रजिस्टर हैं जिनमें तत्कालीन घटनाओं, उपघटनाओं, पूजाओं, प्रार्थनाओं आदि के ब्योरे लिखे हैं जो अपने आप में दस्तावेज हैं। एक 1865 ई0 को शुरू किया गया बरियल रिजिस्टर है जिसमें दफन किए जाने वाले असामयिक मृतकों के ब्योरे दर्ज हैं तो एक अन्य रजिस्टर में शादी-व्याह के ब्योरे दर्ज हैं। इस ओर सिस्टर जेन केलर संकेत करते हुए कहती हैं कि अनेक बार पर्यटक अपने दादा-दादी, पड़दादा-पड़दादी के व्याह के ब्योरे पढ़ने चले आते हैं। शुरू शुरू में पादरी लाहौर से आए थे। उन्होंने तो इन रोज-नामचों में स्टीक ब्योरे दिए हैं कि कब प्रार्थना सभा हुई-उसमें कौन-कौन विशेष अतिथि शामिल थे, कौन-कौन से भजन या मसीही गीत गाए गए आदि।

बिशॅप इस बार पर थोड़ा चिंतित हैं कि इसकी देखभाल खास कर स्लेट की छत बार बार मरम्मत मांगती है पर सरकार की ओर से कोई आर्थिक योगदान नहीं मिला। हां जी.एस.पी.जी. एक विदेशी संस्था से जरूर हमें आर्थिक सहयोग मिला और यह छत ठीक की गई अन्यथा अब तक गिर गई होती। वे मानते हैं कि मंत्री आशा जी ने अपने फंड्स में कुछ पैसे हमारे एक अन्य चर्च-एन्ड्रियु चर्च के सुधार के लिए दिए थे।

ये आस्था स्थल-विशेषकर सौ वर्ष से ऊपर के ये अद्‌भुत भवन हमारी विरासत हैं इन्हें संभालने की जरूरत है, संवारने की जरूरत है-केवल सरकार ही नहीं अथच हम सभी का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि इसकी सम्भाल में हम अपना योगदान दें।

■■■

शिमला के आसपास के प्राचीन भवन व आस्थास्थल

क. काली बाड़ी, शिमला

यद्यपि शिमला में अनेक देवस्थल हैं और इन धर्मस्थलों ने शिमला को घेरे पर्वत श्रृंखलाओं पर अपना वर्चस्व स्थापित किया हुआ है। मसलन जाखू के शिखर पर हनुमान मन्दिर स्थित है तो तारा देवी पर्वत शिखर पर तारा देवी का शक्ति–स्थल है तो प्रास्पेक्ट्स हिल के शिखर पर कामना देवी विराजमान है। इनके अलावा और भी देवस्थल आस पास स्थित है लेकिन नगर के ठीक बीच में, मालरोड के ठीक ऊपर स्थित है काली बाडी–अर्थात मां काली का घर। वस्तुतः यह शब्द बंगाली है–चूंकि इस मंदिर के निर्माण में बंगालियों का ही ज्यादा योगदान रहा है अतः उन्होंने ही इसका नामकरण भी किया हैं।

काली बाड़ी का इतिहास पूरी तरह से कुहरे में छिपा है–मात्र किवदंतियों के सहारे ही इसका इतिहास बुना जाता रहा है। सर्वमान्य तथ्य यह है कि जब सन् 1830–31 में शिमला में एक सर्वे टीम आई थी ताकि रेलवे और सड़कों का निर्माण हो सके तो इस टीम के साथ बहुत से बंगाली भी थे। उन्होंने अपनी आस्था के अनुसार वर्तमान रेलवे स्टेशन के पास एक अस्थाई काष्ठ मंदिर का भी निर्माण किया था जिसमें महाकाली की पाषाण प्रतिमा स्थापित की गई थी और नित्य उसकी पूजा की जाती थी। यही प्रतिमा कालीबाड़ी के वर्तमान मंदिर में स्थापित की गई थी जिसे बाद में एक अन्य सुन्दर प्रतिमा से बदल दिया गया था।

एक अन्य कथा के अनुसार श्यामला हिल पर एक सिद्ध तांत्रिक रहता था जो महाकाली का उपासक था। उसके पास एक महाकाली का सिद्ध यंत्र भी था जिसे उसने एक छोटे से मंदिर में मां काली के स्थान के पास स्थापित कर रखा था। वह नित्य उसकी पूजा करता था। सर्वे के लिए आये बंगाली परिवारों ने चाहा था वह सिद्ध तांत्रिक पुजारी के तौर पर उनके बनाए गए महाकाली के मंदिर में पुजारी रहे। वे उस तांत्रिक को बहुत सम्मान देते थे। पर तांत्रिक श्यामला हिल पर स्थित अपने छोटे देवालय को छोड़ना नहीं चाहता था।

कालान्तर में जब वह स्वर्ग सिधार गया तो उसका शिष्य पुजारी के तौर पर वर्तमान काली बाड़ी में आने को तैयार हो गया। उसने सिद्ध यंत्र भी काली बाड़ी में आकर स्थापित कर दिया। इस प्रकार कालीबाड़ी का यह मंदिर वजूद में आया।

एडवर्ड जे बक्क 'शिमला पॉस्ट तथा प्रेसेंट' के लेखक ने एक अन्य कथा की ओर हमारा ध्यान खींचा है– ''रोथनी कॉस्ल के निर्माण से पहले वहां एक मंदिर स्थित था जिसमें एक अनगढ़ प्रस्तर प्रतिमा महाकाली की स्थापित थी। एक रोज़ वहां एक अंग्रेज साहब अपने कारिन्दों के साथ पहुंचा। स्थान उपयुक्त जानकर उसने मंदिर में स्थापित मूर्ति को नीचे जंगल में फेंक दिया और अपने कारिंदों को वहां रसोई बनाने को कहा। कारिंदे अधिकतर हिन्दू थे–उन्होंने उसे समझाने की कोशिश की कि यह धर्मस्थल है इसके साथ छेड़खानी करना ठीक नहीं पर वह नहीं माना अतः उनको अपने साहब का आदेश पालन करना पड़ा। रात्रि के समय साहब को एक भयंकर स्वप्न में दो भालाधारी उसे मारते दिखाई दिए तो वह चिल्लाकर उठ बैठा और उस भयंकर स्वप्न की बात अपने अहलकारों से कही तो उन्होंने समझाया कि अभी तो स्वप्न है हमें लगता है कि हम जीवित नहीं जा सकेंगे। परिणामतः उक्त साहब ने उस मूर्ति को वहां लाकर सम्मान से प्रतिष्ठाापित कर क्षमा मांगी। वह प्रतिमा ही सर्वप्रथम कालीबाड़ी में स्थापित की गई थी।

एडवर्ड बक्क के अनुसार पहली मूर्ति लगभग चार फुट ऊंची थी पर कालान्तर में जयपुर से नई और कलात्मक मूर्ति बनवा कर लाई गई जो पहली मूर्ति से छोटे आकार की थी। पहली वाली मूर्ति को गर्भगृह के

एक कोने लगा दिया गया और उसके स्थान पर नई कलात्मक मूर्ति को 1870 ई. के आस पास स्थापित किया गया।

इस मंदिर में धातु की सात घण्टिया लगीं थीं जो श्रद्धालुओं द्वारा बजाने पर मंगल ध्वनि की गूंज दूर दूर तक ले जातीं थीं। इस मन्दिर के आधार के पास एक तोप लगी थी जो दुपहर के समय चलाई जाती थी। इन निरंतर बजती घण्टियों की आवाज और तोप के चलाए जाने से होने वाली आवाज से स्थानीय परिवेश में रहने वाले लोगों, कार्यालयों में कार्यरत कर्मियों तथा कैंटोनमैंट के लोगों के साथ–साथ स्थानीय होटल वालों को बहुत असुविधा होती थी। अन्ततः सन् 1902 ई. कें वर्ष एक अहलकार की प्रार्थना पर ब्रिटिश सरकार ने उक्त तोप को वहां से उठा दिया और मंदिर में घंटियों का आकार छोटा कर दिया गया।

कुछ लोग इस मन्दिर के निर्माण का श्रेय कालीचरण नामक एक ब्रम्हचारी को देते हैं। हो सकता है कि उसने इसके निर्माण में अपना विशेष योगदान दिया हो।

मन्दिर तीन मालों के विशाल भवन के उपर बना है। मण्डप वृहद् हाल है जिसे सभागार के तौर पर भी इस्तेमाल किया जाता है गर्भगृह इस हाल के भीतर पूर्वोत्तर दिशा में उच्च मंच पर बना है जिस पर महाकाली की कलात्मक मूर्ति स्थापित है। मंदिर का शिल्प यद्यपि सामान्य है–कोन में उपर उठता हुआ तथापि यह शिल्प कलकत्ता के दक्षिणेश्वर काली मंदिर की याद ताज़ा कर देता है।

इसके खुले आंगन से शिमला का तीन ओर का दृश्य अति शोभनीय लगता है। पूर्वोत्तर में नीचे अनाडेल का मैदान दिखाई देता है तो दक्षिण की ओर पहले कैन्ट फिर नीचे की पहाड़ियों को देखा जा सकता है। सामने तारा देवी की पहाड़ी भी दिख जाती है और शिमला नगर का विस्तार दक्षिण पूर्व और पश्चिमोत्तर दिशा में पूरी तरह से दिख जाता है।

मंदिर में दो बार पूजा की जाती है। रात्रि की आरती विशेष तौर पर आकर्षण का कारण है। इस आरती में अभी भी एक सदी पुराने वाद्य यंत्र बजाए जाते हैं जो इस आरती का पर्याय बन चुके हैं। स्वामी राम कृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द और मां शारदा के विशेष दिनों पर पर्व की सी रौनक होती है। मुख्य पर्व शारदीय नवरात्रों में होता है जब दुर्गा पूजा की जाती है। मां दुर्गा की कलात्मक मूर्ति बनाई जाती है जिसकी नवरात्रों में पूजा की जाती है और दसवें रोज इसे तारादेवी में स्थित सरोवर में प्रवाहित कर दिया जाता है।

महाकाली मंदिर के सामने शिवमंदिर भी स्थापित है। मान्यता है कि शिव और शक्ति एक दूसरे के पूरक हैं और सृजन पुरूष शक्ति और मातृ शक्ति के बिना सम्भव नहीं। शिव मंदिर में शिवरात्रि के रोज पर्व सा माहौल होता है जब श्रद्धालु दूर–दराज इलाकों से यहां अपने श्रद्धा सुमन चढ़ाने आते हैं।

महाकाली मंदिर के साथ लगा एक सभागार भी है जहां अनेक कार्यकम सरंजाम दिए जाते हैं। शिमला नगर में गेयटी थिएटर के बाद 'काली बाड़ी हॉल' ही नगर के कार्यक्रमों को स्थान देता है। यहां पर गीत–संगीत, सामाजिक और धार्मिक अनुष्ठान आयोजित किए जाते हैं। माल के पास होने से यहां अक्सर भीड़ रहती है और जो पर्यटक माल पर घूमने आते हैं वे कालीबाड़ी में मां काली के दर्शन करने अवश्य आते हैं।

कालीबाड़ी के विशाल भवन में तीन मालो में निर्मित अतिथि गृह भी है जिसमें 22 सूइट हैं जिनमें हर प्रकार की सुविधा है। 12 दूसरे कमरे हैं जिनमें सामान्य सुविधायें उपलब्ध हैं। एक डॉरमैटरी भी है जिसमें बेड लगे हैं। इस अतिथि भवन की सुविधा सभी पर्यटकों के लिए उपलब्ध है–'फर्स्ट कम फर्स्ट सर्व' के आधार पर।

ख. कामना देवी

शिमला का नगर तीन चोटियों से घिरा है–'प्रॉस्पेक्ट हिल', तारादेवी शिखर तथा जाखू। ये तीनों ही

चोटियां देवी देवताओं के श्रद्धास्थलों से पवित्र हो आई हैं। तारा देवी के शिखर पर तारा देवी का शक्तिस्थल है तो जाखू की चोटी पर प्रसिद्ध हनुमान मंदिर है तो 'प्रास्पेक्ट हिल' के शिखर पर कामना देवी का शक्तिस्थल है। 'प्रास्पेक्ट हिल' अंग्रेजों द्वारा दिया गया नाम था क्योंकि यहां से नगर के विंहगम दृश्य का आनन्द लिया जा सकता है। यह शिखर सतह समुद्र से 7135 फुट ऊंचा हैं कभी यह क्षेत्र सघन जंगलों से घिरा था और इसका शिखर दुर्गा के मंदिर से सज्जित था। आस–पास के क्षेत्रों से लोग यहां उसकी पूजा हेतु आते थे। कुछ परिवारों की यह कुल देवी भी थी। सावन के माह में यहां एक मेला लगता था जब यहां खूब रौनक रहती और श्रद्धालु वहां जाकर पूजा कर मन वांछित फल पाते।

कालान्तर में यहां नया मंदिर बनाया गया जो सन् 1932 ई. में वजूद में आया जब एक खुला हाल तथा भीतर गर्भगृह बनाया गया। वर्तमान पुजारी पंडित सत्य प्रकाश का कहना है कि इस मंदिर का भवन उनके पड़दादा, पंडित धज्जू राम ने बनवाया था लेकिन उसके बारे में अन्य लोग विश्वास के साथ कुछ नहीं कह सकते।

लेकिन यह सत्य है कि पंडित सत्य प्रकाश के परिवार के बुजुर्ग इस मंदिर के पीढ़ी दर पीढ़ी पुजारी रहे हैं। पंडित सत्यप्रकाश के पड़दादा पंडित धज्जू राम के बाद उनका बेटा अर्थात पंडित सत्यप्रकाश के दादा पंडित देवो दयाल और उनके बाद उनके बेटे अर्थात पंडित सत्यप्रकाश के पिता पंडित सीता राम और वर्तमान में पंडित सत्यप्रकाश स्वयं पुजारी हैं। पंडित सत्य प्रकाश, जिनकी वयस इस समय 85 वर्ष है, के अनुसार नवरात्रों में यहां भंडारे का आयोजन किया जाता है। पहले यहां पर लोग पिकनिक मनाने और सैर सपाटे के लिए भी आते थे पर अब केवल धार्मिक अनुष्ठानों के लिए ही यहां आते हैं।

मंदिर के भवन का निर्माण सुर्ख ईटों की सहायता से किया गया है। ढालुआं छत ठीक बीच में ऊपर कोन बनाती हुई पिरामिड स्वरूप ले लेती है। देवी की प्रतिमा गर्भगृह के ठीक केन्द्र में स्थापित है, जो कि दक्षिण दिशा की भीत्ति के साथ स्थित है और उत्तर दिशा की ओर इसका मुख है। प्रतिमा सिन्दूर से सुर्ख कर दी गई है। हनुमान की प्रतिमा जैसे होती है पर केवल उसकी आंखें चमकती हुई दिखाई दे जातीं हैं।
देवी मन वांछित फल देने के लिए प्रसिद्ध है। पुजारी ने हमें अनेक उदाहरण देकर बताया कि अनेक श्रद्धालुओं का मन वांछित फल मिला है जिसे उनके लिए पाना मुश्किल था। यही देवी हर श्रद्धालु की कामना पूरी करती है जो मन से इसकी पूजा करता है अतः इसका नाम कामना देवी पड़ गया। इस मंदिर के ठीक पीछे एक अन्य पवित्र स्थान एक अन्य देवता के लिए सुरक्षित है। एक सूचना पट्ट के अनुसार ठियोग का देवता चिखड़ेश्वर जब भी यहां आते हैं इस स्थान पर विश्राम करते हैं।

इस मंदिर के पार्श्व से नगर का विहंगम दृश्य मन को अल्हादित कर देता है। कभी यह शिखर प्रेमी युगलों का आश्रयस्थल था जो नगर के कोलाहल से दूर इस नैसर्गिक स्थल पर अपनी प्रेमलीला रचाते थे पर अब कामना देवी सभी की कामनायें पूरी करती हैं।

ग. हनुमान मंन्दिर, जाखू

आरम्भ में, शिमला नगर के विकास के पहले ही यह मंदिर स्थित था। यह मंदिर 8300 फुट सतह समुन्द्र से ऊपर स्थित था जहां एक फकीर रहता था। 1837 ई0 में जेराल्ड ने इस मंदिर के बारे में लिखा है–'जाखू में यह मंदिर स्थित है जहां एक फकीर राहगीरों को पानी पिलाता है। इस देवस्थल पर अक्सर यात्री तथा पर्यटक आना चाहते हैं। जहां यात्री तथा पर्यटक बन्दरों को फल तथा बिस्कुट चढाते हैं। अक्सर फकीर अपने पीले वस्त्रों से अलंकृत, यात्रियों और पर्यटकों का स्वागत करता है। वह अक्सर बन्दरों का आहवान 'आ जाओ', 'आ जाओ' की आवाज

देकर करता है। अक्सर वह इन बन्दरों को उनके रूतबे, राजा,रानी और कोतवाल के नाम से पुकारता है। जो उसके पास आकर इकट्ठा हो जाते हैं और उसके दिए गए खाने को, उसके हाथ से, ले जाते हैं। राजा, जोकि इस समुदाय का सरदार है, अपने समुदाय को पूरे अनुशासन में बान्धे रखता है। वह इस समुदाय के युवावर्ग को, जो उसकी पत्नियों पर आंख गड़ाए रखता हो ,पूरी तरह से अनुशासित रखता है। एक बार एक बन्दर इस अनुशासन से बाहर कूद कर जब उसके पास आया तो कूदने में अपना सन्तुलन खो बैठा और धरती पर जा गिरा, तो फकीर इस घटना से अति चिंतित हो आया और इस घटना के लिए अपने को कसूरबार मानते हुए यात्रियों से क्षमा मांगने लगा। 'चालीस वर्ष से ऐसी कोई घटना नहीं हुई--यह दृष्ट बुद्धि का परिणाम है। इन बन्दरों ने अनेक विदेशी पर्यटकों को प्रभावित किया है। रूदयार्ड किपलिंग तो इनके प्रति इतने आकर्षित थे कि उन्होंने एक मुक्तक तक इन पर लिख डाला–

वह कलाकार चालाक बंदर था

जो सदा पेलिटी के यहां दूसरे की बंदरियां पर आंख रखता था

ये बन्दर सर्दियों में गर्म इलाकों, कालका आदि की ओर प्रवास कर जाते हैं।

जाखू के मंदिर तथा इसके फकीर के साथ जुड़ी एक अति दिलचस्प घटना की ओर एम0 हीर्न ने संकेत किए हैं। हीर्न 'ऑक्टोजिनेरियन' के नाम से शिमला टाईम्स में निरन्तर कॉलम लिखा करते थे। उन्होंने 26 जून 1924 के अंक में लिखा था कि 'डी टुस्सेट नामक एक एंगलो इंडियन लार्ड ने मायो के वाईसराय काल में रिज पर एक भवन बनवाया था। वह अक्सर गर्व से कहा करता था कि वह अवध के अंतिम सुलतान के नाई का पोता था। वह अनेक तरह के काम जानता था–घर बनाना, घर की चौकीदारी करना, ठेकेदारी करना, छायांकण करना आदि। वह एक छोटे कद का व्यक्ति था। अंग्रेजी खूब धड़ल्ले से बोल लेता था और शिमला राईफलस में उसे नौकरी पर रख लिया गया था। उसका चार्ली नामक एक बेटा जाखू के बंदरों के साथ ही रहता था। मुझे याद है जब चार्ली एक बालक था और अभी योगी नहीं बना था, वस्तुतः अपने पिता की मृत्यु के बाद उसने योगी का चोला पहना था। ईसाई धर्म त्याग कर हिन्दू योगी हो जाने पर इसाई समाज में उसकी खूब भत्सर्ना हुई थी। कुछ उच्च पद पर पहुंचे हुए अंग्रेज अधिकारियों ने उसे वापिस इसाई बनने के लिए प्रोत्साहित भी किया था। उसे अदालत में साठ रूपये माहवारी पर एक नौकरी भी दी गई थी। निचली अदालत के जज श्री जॉर्ज रियाल ने चार्ली को वापिस अपने समुदाय में आने के लि[illegible] भी किया था। तब वह सन्यासियों द्वारा दी गई पीली पोषाक पहने था। जॉर्ज ने उसे बहुत समझाया थ पर [illegible]सने एक नहीं सुनी। यह बात तय थी कि उसने योगी का चोला किसी के कहने पर नहीं अथच अपने मन से पहना था। उसने अंग्रेजी में छपवा कर एक इश्तिहार स्थान स्थान पर बांटा था जिस पर छपा था कि यदि भारत में गौ हत्या बंद कर दी जाए तो सारे इलाके में अमन और चैन का जीवन फैल जाएगा।

चार्ली तत्कालीन अति चर्चित स्कूल 'विशॅप कॉट्टन स्कूल' का छात्र था कि अचानक उसने इसाई धर्म छोड दिया और जाखू के धर्मस्थान पर रह रहे फकीर का शिष्य बन गया। इसके लिए उसे अनेक प्रकार की कठिनाईयों और परीक्षाओं में से गुजरना पड़ा। वह दो वर्ष तक एक वृक्ष के नीचे साधनारत रहा था जहां बंदरों को छोड़कर उसका कोई साथी नहीं था। या बीच बीच में उसे खाना पहुंचाने के लिए एक चाकर आता था। जब वह इस परीक्षा में उतीर्ण हो आया तो उसे योगी का चोला पहना दिया गया था। चूंकि वह सर पर चीते की खाल की पगड़ी पहनता था अतः 'चीता फकीर' के रूप से वह जाना जाता था। बीस साल पहले वह अक्सर घूमता–फिरता दिखाई देता था पर धीरे धीरे उसने भौतिक जगत से अपना नाता तोड़ दिया था और अपने आप को अनाडेल के नीचे बने एक मंदिर में बंद कर लिया था। वह किसी को पहचानता नहीं था और युरोपीय मूल

के लोगों से मिलता नहीं था।

लाहौर के सरकारी कालेज में प्राकृतिक विज्ञान के प्रौफेसर जॉह्न सी0 ओमन ने अपनी पुस्तक 'मिस्टिक एस्टिक्स एण्ड सेंट्स ऑव इण्डिया' जो 1894 ई0 में प्रकाशित हुई थी में 'चीता योगी' की तस्वीर छापी थी। उसके बारे में जॉह्न ने लिखा था–'कुछ वर्ष पहले मैंने शिमला में चार्ल्स दे रूस्सट के साथ साक्षात्कार किया था जो कि शालीन फ्रांसीसी समुदाय से सम्बंधित युवक था। यद्यपि वह इसाई के तौर पर पाला गया था और उसकी शिक्षा 'बिशॅप कॉट्टन' स्कूल में हुई थी पर उसने किशोरावस्था में ही साधु का चोला पहन लिया था। वह अक्सर अपने साथी साधुओं का प्रशंसक था और उसने मुझे विशवास दिलाया था कि वह मुझे उन साधुओं के साथ मिलाएगा जो चमत्कारिक शक्तियां रखते हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि स्थानीय लोग उसे उच्चतम सम्मान देते हैं। वह अपने इस जीवन से पूरी तरह सन्तुष्ट है और कल की उसे कोई फिक्र और चिंता नहीं।' इ0 एम0 हीरन ने 1924 ई0 के जून माह में लिखा था कि 'चार्ली अभी जीवित है और राजा दलजीत सिंह द्वारा दी गई 'स्ट्रॉबरी हिल एस्टेट' में बने एक छोटे प्रकोष्ठ में रहता है। वह जॉह्न सी0 ओमन द्वारा लिखित ब्योरों को सत्य मानते हुए कहता है कि वह शुद्ध फ्रांसीसी समुदाय से सम्बंधित है। वह अंग्रेजी खूब अच्छी तरह बोलता है। 1919–22 ई0 में उसने अपने साथी साधुओं को गांधी–आन्दोलन को त्यागने की सलाह दी थी। वह निश्चय ही 'ब्रिटिश इण्डिया' के हक में था पर फिर भी उसे स्थानीय लोग खूब सम्मान देते थे। वह इस समय लगभग सत्तर वर्ष की आयु रखता है। स्थानीय लोग उसे बाबा मस्तराम के तौर पर याद करते हैं।

पहले जाखू तक रिज से चढ़ाई कर लगभग डेढ़ किलोमीटर पैदल जाना पड़ता था पर अब मंदिर के पास तक सड़क चली गई है और मंदिर का भवन भी खूब बड़ा और शोभामय हो आया है।
एक किवदंती के अनुसार लक्ष्मण की मूर्छा हटाने हेतु हिमालय से संजीवनी लाते हुए हनुमान जी ने, यहां, जाखू की चोटी पर पल भर विश्राम किया था अतः यहां पर उन्ही की याद में एक प्राचीन मंदिर स्थापित किया गया था। कालान्तर में, शिमला के वजूद में आने पर इसका महत्व बढ़ा। आजकल अक्सर पर्यटक यहां आकर दर्शन अवश्य करते हैं। नए जोड़े विवाह सूत्र में बन्ध जाने के बाद यहां सन्तान सुख पाने के लिए आते हैं।
जाखू की चोटी से शिमला तथा आस–पास का विहंगम दृश्य पर्यटकों को अभिभूत कर देता है। आज भी उसी प्रकार बानर सेना चारों ओर चौकसी रखे रहती है। वे बिना हिचक आपके पास आकर आपके हाथ से प्रसाद खाकर सन्तुष्ट हो जाते हैं। अनेक बार तो कुछ न मिलने पर वे आपकी जेबे भी टटोल लेते हैं। उन्हें किसी किस्म की हिचक नहीं होती।

2004 ई0 के मई–जून माह में यहां एक रोग फैल गया था जिसके कारण अनेक बन्दर निढाल हो आए थे। एक डॉक्टर के अनुसार यह आन्त्रशोध का रोग था ज़िसकी चपेट में बीसियों बंदर आकर मर गए तो व्यवस्था जागी थी और इन्हें टीके लगाने का प्रबन्ध किया गया।

घ. तारादेवी एक ऐतिहासिक शक्तिस्थल है

शिमला से लगभग आठ किलोमीटर दूर, एक ऊंचे पठार पर स्थित है तारादेवी का प्रसिद्ध शक्तिस्थल। इसकी ऊंचाई सतह समुंद्र से लगभग साढ़े छः हज़ार फुट है। इस पहाड़ी पर से आस–पास का विहंगम दृश्य दृष्टिगोचर होता है। चूंकि यह मंदिर पहाड़ी की चोटी पर स्थित है और उसके आस–पास कोई अन्य पहाड़ी दूर–दराज तक नहीं है अतः सूर्य की पहली किरण यहां पड़ती है। मंदिर तक पहुंचने के लिए पैदल मार्ग तारादेवी ठहराव से ऊपर की ओर पगडण्डी के रूप में जाता है। आधे घंटे में ऊपर पहुंचा जा सकता है। अब तो सड़क भी पक्की हो गई है और नित्य बसें मंदिर तक जातीं हैं। रविवार को यातायात का विशेष प्रबन्ध रहता

है। भण्डारा होता है। बस ठहराव पर, मंदिर की ओर जातीं सीढ़ियों के शुरु होने से पहले दो तीन दुकानें प्रशाद की हैं।

मंदिर में नित्य दो समय आरती होती है और मान्यता है कि श्रद्धा और विश्वास से मनौती मांगने पर इच्छा पूरी होती है। वस्तुतः तारादेवी दस विधाओं में एक महत्वपूर्ण शक्ति स्वरूपा है। एक श्लोक के अनुसार तांत्रिकों की गुप्त विद्याओं में, इन दस विद्याओं की पूजा अर्चना करने पर ही सिद्धि प्राप्त होती है–

काली तारा महाविद्या षोड्सी भुवनेश्वरी
भैरवी छिन्नमस्ता च विद्या धूमावती तथा
मातंगी सिद्ध विद्या च कथिता बगलामुखी
एता दस महाविद्या सर्वतन्त्रेश गोपिता।

तारादेवी के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में अनेक किवदंतियों का विश्लेषण किया जा सकता है। एक धारणा के अनुसार लगभग दो सौ वर्ष हो गए स्थानीय सेन वंशीय राजा यहां शिकार खेलने आया। अनेक विद्वान इसे भूपेन्द्र सेन के नाम से जानते हैं जो स्थानीय रजवाड़े जुनगा का शासक था। यहां तब घना जंगल था। शिकार तो नहीं मिला पर बसेरे में पहुंच कर सोते समय राजा को स्वप्न में दर्शन देकर यह आदेश दिया कि यह एक पवित्र स्थान है जहां मेरा वास है। अतः यहां शिकार खेलना तथा पशु वध करना वर्जित है। यदि यहां पर मेरा मंदिर स्थापित किया जाए और हिंसा को बंद कर दिया जाए तो वह न केवल राजा की अथच शाही परिवार की भी रक्षा करेगी। मान्यता है कि राजा भूपेन्द्र सेन प्रातः जागते ही अपनी राजधानी लौट गया और उसने उस स्थान के आस–पास की लगभग पांच सौ बीघा जमीन राजा ने मंदिर के नाम दान पर तुरंत वहां मंदिर बनाने का आदेश दिया। चूंकि दस–महाशक्तियों में एक 'तारा' के रूप में देवी ने राजा को स्वप्न में दर्शन दिया था अतः इसका नाम तारादेवी शक्तिस्थल रखा गया। राजा ने प्रयास से एक सुन्दर मंदिर का निर्माण पर्वतीय शैली के अनुरूप यहां करवाया। मान्यता है कि इस मंदिर के निर्माण के बाद राजा उसका परिवार और उसका राज्य खूब वैभवशाली हो आया था। कालान्तर में अपना समय पूरा कर जब राजा की मृत्यु हुई तो उसका बेटा, राजकुमार नाबालिग था। राजा को शक्तिहीन तथा बिना राजा के जानकर पड़ोस के राजा सिरमौर ने हमला कर दिया तो जुनगा की रानी ने मां से रक्षा की प्रार्थना की कि वह उनकी रक्षा करे। कहते हैं रानी स्वयं माता का झण्डा लेकर सिरमौर की सेना से लड़ी और सिरमौर का राजा मारा गया। यह मात्र किवदंती है–शायद देवी के महत्व को दर्शाने के लिए ऐसी धारणा बनाई गई थी–पर इतिहास में ऐसा कोई संदर्भ नहीं मिलता कि कभी सिरमौर का कोई राजा जुनगा की रानी द्वारा मारा गया हो। सिरमौर एक शक्तिशाली राज्य रहा है जबकि जुनगा मात्र एक रजवाड़ा या जागीर था। बहरहाल महत्व प्रदान करने के लिए ऐसी कहानियां रच लीं जातीं है। इस शक्तिस्थल के भवन का निर्माण आज से लगभग दो सौ वर्ष पहले हुआ था। कालान्तर में जीर्ण शीर्ण हुए भवन का पुनः उद्धार किया गया और अभी कुछ वर्ष पहले इसे वर्तमान स्वरूप दिया गया है।
मंदिर की गतिविधियों को गति देने के लिए एक ट्रस्ट काम करता है जिसके सदस्यों का चयन लोगों द्वारा किया जाता है पर इस पर सरकारी प्रभाव है। ट्रस्ट बनने के बाद निश्चय ही प्रगति हुई है। अनेक प्रकोष्ठों का निर्माण हुआ है व हो रहा है। हर रविवार को भण्डारा लगता है और श्रद्धालु इस भण्डारे को लगाने और इसका श्रेय लेने के लिए उत्सुक रहते दीखते हैं।मण्डप के गर्भगृह में देवी की प्राचीन प्रतिमा, अष्टधातु में ढाली गई, स्थापित

है। यद्यपि शक्तिस्थल के भवन का बार बार उद्धार किया गया है पर गर्भगृह में कोई परिवर्तन नहीं किया गया। वह उसी प्रकार तारादेवी की अष्टधातु की प्रतिमा लिए मुखर है। ऐसी मान्यता है कि इस प्रतिमा का निर्माण मंदिर के तत्कालीन महंत ताराधिनाथ के कहने पर राजा ने करवाया था और इसे एक हाथी की पीठ पर लाद कर निर्माण स्थल से यहां लाकर स्थापित किया गया था। आज भी इस शक्तिस्थल में यह प्रतिमा स्थापित है।

ट. महेषासुर मर्दिनी का अद्‌भुत मंदिर, कैगनैनों

शिमला से तेरह किलोमीटर दूर सागर सतह से सात हज़ार फुट पर स्थित मशोबरा बलूत तथा देवदार के घने जंगलों के लिए प्रसिद्ध है। यहां पर अंग्रेजों ने अति स्वास्थ्यदायक तथा प्राकृतिक छटा से ओत–प्रोत स्थान को देखते हुए पहली बस्ती बसाई थी। मंशा सेब, नाशपाती और चेरी के बगीचों को लगाना था। मौसम और ऊंचाई को देखते हुए अनेक व्यवसाई भी इस ओर आकर्षित हुए और होटल का व्यवसाय खूब फलने–फूलने लगा था। सबसे पहले होटल खोलने का श्रेय श्रीमती होट्ज को जाता है। वस्तुतः शिमला में माल रोड के ठीक मध्य में स्थित डेलज़ेल होटल तथा उसके साथ लगता स्टेट बैंक का भवन आदि डेलजेल एस्टेट के अन्तर्गत आने वाले भवन थे जिन्हें श्रीमती होट्ज ने खरीद कर 'होट्ज़ होटल प्राईवेट लिमिटिड कम्पनी की स्थापना की थी जिसमें तीन प्रमुख होटल आते थे–दो 'डेलज़ेल एस्टेट' शिमला में और एक मशोबरा में। कालान्तर में यह जयदाद उसकी बेटी ऐलिजाबेथ के हाथ लगी। उस समय कैप्टेन डुरांड इस कम्पनी के सर्वेसर्वा थे। इसकी मलकीयत प्राप्त करने के लिए उन्होंने सुश्री एलिजाबेथ से शादी कर ली थी और कालान्तर में इस जयदाद पर पूरी तरह से कब्जा कर लिया था। स्वतंत्रता के बाद उन्होंने इस जयदाद को तीन हिस्सों में बांट कर बेच दिया था और स्वयं आस्ट्रेलिया जाकर बस गए थे। बाद में मशोबरा में अनेक भारतीय व्यवसाई और प्रकृति के उपासक जाकर बस गए थे। इनमें से कुछ तो नितांत व्यवसाई थे जो गर्मियां बिताने मैदानों से यहां चले आते थे पर कुछ सचमुच प्रकृति की आगोश में रच बस जाना चाहते थे। इन्हीं में से एक आचार्य दिवाकर शर्मा भी लिए जा सकते हैं जिन्होंने यहां आश्रम जैसा वातावरण पाकर सत्य ही एक आश्रम खोल दिया जहां शौधार्थी और विद्वान विशेषकर संस्कृत के ग्रंथों का अध्ययन करने चले आते हैं। आचार्य जी का एक वृहद् पुस्तकालय तथा मुद्रणालय है। दुर्लभ पाण्डिलिपियों का संग्रह भी यहां संग्रहित है जिनके अनुवाद में अनेक शोधार्थी लगे हैं।

आचार्य दिवाकर जी के आश्रम तुल्य परिवेश से लगभग अढ़ाई किलोमीटर दूर, नीचे घाटी में, देवदारों के झुरमुट से घिरे सीपुर का प्राचीन देवस्थल है जहां हर वर्ष मई माह में द्वि–दिवसीय मेला लगता है। यह मेला सैंकड़ों वर्षों से लगता आ रहा है जिसमें युवा हृदयों की धड़कने सुनी जा सकती हैं। वे रात्रि भर नाचते गाते हैं और अनेक बार अपना जीवन साथी यहीं पर चुन लेते हैं। मैदानों से व्यवसाई अपनी जिनसों के साथ चले आते हैं। स्थानीय शिल्प से निर्मित सीपुर का मंदिर अपने कलात्मक सथापत्य के कारण स्थापत्यविदों के आकर्षण का केन्द्र है।

मशोबरा से लगभग तीन किलोमीटर दूर स्थित है एक अन्य रमणीय स्थल, प्रकृति की छटा से नहाया और घने देवदार जंगलों के बीच कटोरीनुमा छोटी घाटी से आच्छादित, 'कैगनैनों'। यह स्थान समुद्र तल से लगभग साढ़े सात हज़ार फुट ऊंचाई पर स्थित है। कटोरीनुमा घाटी के ठीक बीच में एक जलस्रोत स्थित है जिसके चहुं ओर ढालान में घास का मैदान दूर तक आच्छादित है। यहां सितम्बर माह में एक मेला लगता है और भैंसो,जिन्हें झोटों की संज्ञा दी जाती है,की लड़ाई कराई जाती है जिसे देखने दूर दराज से लोग चले आते हैं। इसमें भाग लेने के लिए साल भर झोटों को तैयार किया जाता है। अंततः जो झोटा सबको जीतने में सफल होता है उसे ईनाम दिया जाता है।

एक ओर एक पठार पर महाकाली स्वरूपा का प्राचीन मंदिर है जिसमें स्थित प्रतिमा की सदियों से

रजवाड़ों द्वारा पूजा की जाती रही है। अक्सर इसे आस–पास के रजवाड़ों की इष्टदेवी के तौर पर पूजा जाता रहा है। यद्यपि यह देवी–स्थल सदियों से यहां स्थित है पर इसका पर्वतीय शैली में निर्माण अभी हाल ही में सम्पूर्ण हुआ है। वस्तुतः यह महिशासुरमर्दिनी की ही प्रतिमा है और इसी से सम्बंधित 'झौटों का द्वन्द्व' का आयोजन यहां हर वर्ष किया जाता है।

थोड़ा आगे, मार्ग फल अनुसंधान केन्द्र तक जाकर सम्पन्न होता है। यह केन्द्र पुष्पोत्पादन के लिए भी प्रसि है और उत्तरी भारत का सबसे बड़ा अनुसंधान क्रेन्द्र है। केन्द्र के आस–पास के परिवेश की पर्यटन स्थली के तौर पर विकसित किया जा रहा है। व्यवस्था द्वारा यहां एक मनोरंजन पार्क विकसित किया जा रहा है।

क्रैगनैनों प्राकृतिक वास के लिए अति उपयुक्त स्थल है– नगर निगम ने इसी स्थिति को भुनाने के लिए एक विश्रामग्रह का भी निर्माण किया है। अक्सर घुम्मकड़ और साहसिक पर्यटन में रूचि रखने वाले युवक और युवतियां यहां खेमा गाढ़ कर रहने का सुख उलीचने के लिए चले आते हैं। आस–पास अनेक खुले 'लॉन' और घास के मैदान हैं जहां पिकनिक मनाने लोग अपनी गाड़ियों में चले आते हैं। गर्मियों के अप्रैल–मई माहों में खूब रौनक रहती है।
पर्यटकों की सुविधा के लिए दो दुकाने भी स्थानीय लोगों द्वारा चलाई जातीं हैं जहां चाल, स्नैक्स और दैन्य–दिनों की आवश्यक वस्तुयें दस्तयाब हैं।

ठ. हाटू शिखर पर स्थित है हाटू देवी स्थल

शिखरों पर देव–शक्तियों का आधिपत्य होता है और वहां जाकर स्वयं ही मन निर्मल और पवित्र हो आता है–इसे पौराणिक ग्रंथ ही नहीं मानते अथच यह भुक्त–भोगी जानते हैं। हिमाचल तो देवभूमि है–इसके पर्वतों की हर श्रृंखला पर पर पठार पर और हर शिखर पर किसी न किसी देव शक्ति का श्रद्धास्थल स्थित है। ये श्रद्धास्थल न केवल श्रद्धालुओं को अपने पास आने का आह्वान करते हैं अथच उन्हें हर उम्र में कर्मठ जीवन जीने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। चाहे हम कुल्लू जनपद में बिजली महादेव या जमलू देव की बात करें या मण्डी जनपद में कमरूनाग, किन्नौर में किन्नर कैलाश, बिलासपुर में मार्कण्डेय ऋषि स्थल, सराहन में भीमाकाली आदि इन श्रद्धास्थलों की उपस्थिति इस ओर संकेत करती है। शिमला जिले के अनेक शिखरों पर ऐसे अनेक धर्मस्थल हैं जो पर्यटकों और स्थानीय श्रद्धालुओं के श्रद्धा के केन्द्र हैं। इनमें से तारादेवी,कामना देवी, जाखू आदि के श्रद्धास्थलों को लिया जा सकता है।

शिमला से लगभग 35 किलोमीटर दूर शिमला–तत्तापानी मार्ग पर नारकण्डा स्वास्थ्यप्रद स्थल है जहां वन विभाग का 'बैरियर' है और दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति करता हुआ एक छोटा सा बाज़ार भी है। यहीं से एक पगडण्डी ऊपर वन–प्रान्तर की ओर जाती है। जो हमें देवदार के वृक्षों की वीथिकाओं में से होते हुए मानों स्वार्गिक घाटी के दर्शन करवाती हो। लगभग सात किलोमीटर लम्बी यह पगडण्डी निरंतर चढ़ाई की ओर अग्रसर होती हुई अचानक एक पठार पर जाकर खुल जाती है जहां एक नया संसार दृष्टिगोचर होता है– मीलों तक खुला पठार। यही हाटू की चोटी है, हाटू माता का परिवेश।

ऊपर घाटीनुमा पठार में पहुंचते ही एक कैसलनुमा नव–निर्मित विश्रामगृह हमारा स्वागत करता है जिसे अभी हाल ही में यात्रियों के विश्राम हेतु ,विशेषकर मेलों में, बनाया गया है। यहां से लगभग चार सौ मीटर दूर स्थित है हाटू देवी का श्रद्धास्थल। इसे हाटेश्वरी के नाम से जाना जाता है।

ग्यारह हज़ार फुट की ऊंचाई पर स्थित यह मंदिर शुद्ध पर्वतीय शैली का, पिरामिडल स्वरूप लिए हुए है जिसकी दीवारों को बिना किसी चूने या सिमेंट स्थानीय चपटे पत्थरों से चिना गया है। यह प्राचीन मंदिर पांडवों द्वारा अपने अज्ञातवास के दौरान बनाया गया बताया जाता हैं। भीतर एक पाषाण प्रतिमा स्थापित है–और

काष्ठ–मीनाकारी अति आकर्षक है। यद्यपि यही पर्वतीय शैली का पुराना मंदिर है पर हाल ही में एक पक्का मंदिर भी बनवा दिया गया है जिसकी भीत्तियों को संगमरमर की 'स्लैबों' से सजाया गया है। थोड़ा नीचे यात्रियों के ठहरने के लिए सराय बनी है। नवरात्रों में यहां पर ही मेला लगता है जब आस–पास से अनेक श्रद्धालु चले आते हैं। नारकण्डा से हाटू शिखर तक जाने के लिए अब जीप रोड भी तैयार कर ली गई है जो आठ माह तक खुली रहती है और मेई में खुलती है इस वर्ष मई माह में जब हम वहां गए तो चार किलोमीटर के बाद बर्फ के चकत्तों ने अभी भी मार्ग को अवरुद्ध कर रखा था अतः हमें तीन किलोमीटर सीधी चढ़ाई चढ़ कर ऊपर पहुंचना पड़ा। वहां छात्रों का एक संघठन भी आया था– प्यास से बेहाल। पानी की व्यवस्था न होने के कारण दिक्कत होती है। ऐसे स्थान पर पानी का या तो प्राकृतिक स्रोत हो या पानी किसी स्रोत से वहां लाया जाना चाहिए तब ही इस नैसर्गिक स्थान का आनन्द उठाया जा सकता है।

ड. हाटेश्वरी देवी मंदिर

मंदिरों के स्थापत्य की अद्भुत शैलियों का साम्राज्य सारे हिमाचल प्रदेश में फैला है। प्रस्तर शिल्प से लेकर काष्ठ शिल्प तक यह विस्तार सारे हिमाचल प्रदेश को सुशोभित कर रहा है। और शिल्प का यह अद्भुत बहुआयामी स्वरूप सिर्फ हिमाचल प्रदेश में ही मिलता हैं जहां शिखर शैली के दरावीं शताब्दी के आसपास मंदिरों से लेकर पर्वतीय शैली के देवी मंदिर, पैगोडा तथा पिरामिड शैली के परवर्ती मंदिर मिलते हैं। अथच कोठी स्वरूप ढालुआं छतें लिए देवी मंदिरों का स्वरूप शिखर शैली के मंदिरों से बहुत पहले यहां–प्रचलित था। बाद में पिरामिडल, पैगोडा और पर्वतीय शैलियों के घुलमिल जाने से अनेक अद्भुत स्वरूप मंदिर शिल्प के उभरे जो पंद्रहवीं शताब्दी के बाद की कलाकृतियां हैं।

यह जुलाई का प्रथम सप्ताह था जब मुझे बताया गया कि शिमला से लगभग एक सौ दस किलोमीटर दूर शिमला रोहड़ू राज्य मार्ग पर लगभग 1150 मीटर की ऊंचाई पर स्थित एक सुन्दर घाटी में हाटकोटी के मंदिरों का समूह है जो अपने अद्भुत शिल्प के लिए शिमला में ही नहीं अथच सम्पूर्ण हिमाचल प्रदेश में अपना विशिष्ट स्थान रखता है।

प्रातः आठ बजे शिमला से हमने प्रस्थान किया और अनेक नैसर्गिक स्वास्थ्यवर्धक स्थानों–फागू, ठियोग, शैला आदि से होते हुए हम हाटकोटी पहुचे। हाटकोटी वस्तुतः एक घाटी है जिसे पब्बर नदी की घाटी के तौर पर भी जाना जाता है। पब्बर नदी के किनारे बसे हैं हाटकोटी, रोहड़ू, चिरगांव,संधाशु आदि गांव तथा कस्बे जिनके किनारों को छूती या बनाती पब्बर नदी शान्ति से बहती रहती है पर बरसातों में इसका मुखर रूप देखा जा सकता है जब यह किसी बन्धन अथवा किनारों की मोहताज नहीं होती। ऐसी मान्यता है कि जो भी इसके रास्ते आता है उसे यह अपने साथ बहा लिए जाती है 'पतितं वृणोति सा पब्बरा' अर्थात जो इसमें गिरा वह बह गया। यह पब्बर नदी है। पर यही उत्तंग तरंगों वाली नदी हाटकोटी मंदिर परिसर के पास से गुजरती हुई एक दम शांत हो जाती है मानों यहां आकर इसके कस–बल निकल जाते हों और यह देव प्रतिमा के सामने नतमस्तक होकर चलना शुरु कर देती है।

हाटकोटी तक पहुंचने के लिए प्राकृतिक छटा से नहाए अनेक नैसर्गिक स्थलों से होते हुए सेबों व खुबानियों से लदे वृक्षों से आधे मार्ग में से होकर जाना अपने आप में स्वार्गिक अनुभूति है। सही मायने में यह स्वार्गिक यात्रा कुफरी से शुरू होती है–कुफरी,फागू, ठियोग, शैला से होते हुए कोटखाई पहुंचने का सफर अति लुभावना सफर है। कोटखाई में तो राजमार्ग के किनारे लगे सेब,गोशों और खुबानियों के वृक्षों से फलों को हाथ बढ़ाकर तोडा जा सकता है। यह जुलाई का माह था जब खुबानियां पक कर तैयार थीं और छब्बों में सडक के

दोनों ओर गिरकर सड़ रहीं थीं। कोटखाई में हमारे एक कलाकार मित्र, जो वहां लैंड डिवलपमैंट बैंक में मैनेजर थे, हमारे साथ हो लिए थे। उन्हें जब मैंने इसका कारण पूछा तो उन्होंने बताया कि यह खुबानी नहीं अथच खुबानी की तरह ही फल है जिसे साढ़ कहते हैं। इसकी गिरी कड़वी होती है जबकि खुबानी की मीठी होती है। यह फल यहां मात्र सुरा बनाने में काम आता था या इस की गिरी से तेल निकाला जाता था। पर अब चूंकि यहां के लोग सेब की बागवानी से इतने मालामाल हो आए हैं कि इन्हें फुरसत नहीं कि इनका उपयोग कर सकें। अंग्रेजी शराब और हर प्रकार के तेल तैयार मिलते हैं। चूंकि इस फल की मार्केट नहीं अतः यह यूं ही गिरता सड़ता रहता है। सुनकर अति आश्चर्य हुआ। उसने अपने चपरासी को बुलाकर ढेर सारे साढ़ मंगवा दिए थे। पहले तो लगा खट्टे होंगे पर खा कर देखा बिल्कुल खुबानी की तरह खुशबूदार और मीठे हैं। सेबों से लदे फदे वृक्षों को और गोशों के भार से झुकी हुई डालों को देखना ही अच्छा लग रहा था।

कोटखाई, वस्तुतः एक रियास्त थी जो सामान्य ऊंचाई से अनुपाततः बहुत नीचाई पर थी। यहीं पर शाही महल, किले के रूप में स्थित थे। चूंकि ये किलानुमा महल एक खाई जैसी नीचाई पर स्थित हैं इसीलिए शायद इसे कोटखाई की संज्ञा दी गई। कोट मायने किला और खाई माने खड्डनुमा गहरा स्थल। महल यद्यपि ज़र्र–ज़र्र हो रहे थे तथापि उनका स्थापत्य स्थानीय विशेष पर्वतीय शैली का था, कुछ–कुछ चौकीनुमा हवेलियों की तरह जो बीच में खुला आंगन लिए होतीं हैं जिसके चारों ओर किलानुमा दीवारें बहुत ऊंची चलीं जातीं हैं और जो बाहिरी प्रकोष्ठों की बाहिरी भीत्तियां बनातीं हैं। तीनमाला इस वृहद् इमारत के कोनों वाले प्रकोष्ठों पर ढालुआं छतों लिए छोटे छोटे प्रकोष्ठ राजस्थानी महलों की छतरियों द्वारा सज्जित हैं। फर्क यह है कि राजस्थानी छतरियां गोलाकार, अति कलात्मक, प्रस्तर सज्जा लिए होतीं हैं पर ये आयताकार ढालुआं स्लेटों की छतें लिए थीं। पर्वतीय श्रृंखलाओं से घिरा कोटखाई अद्भुत लगा किसी तिलस्मी संसार की तरह। शाही परिवार के सदस्यों ने यहां एक स्कूल खोल रखा है पर वृहद् इमारत ज़र्र–ज़र्र हो रही है। कहीं कहीं पर से स्लेटों की छत उखड़ी पड़ी थी। कोटखाई हम दुपहर बारह बजे के करीब पहुंचे थे। अतः खाना यहीं खाने की बात सबने यकमुश्त मान ली थी। बाजार से ऊपर, राजमार्ग पर एक नवनिर्मित रेस्त्रां के सामने हमने गाड़ी रोकी। भीतर रेस्त्रां के हाल में बच्चों का समूह ठण्डा पी रहा था। अध्यापिकायें उन्हें शीघ्र खत्म कर चलने के लिए कह रहीं थीं पर वे मचलते, एक दूसरे को छेड़ते, चूहलवाजी करते, बेखबर से अपने में मस्त बैठे रहते हैं। रेस्त्रां का मालिक हमें एक दूसरे बड़े, गैलरीनुमा प्रकोष्ठ में ले गया था जहां बीयर और हार्ड ड्रिंक्स की चुस्कियों में खोए युवा मस्ती में झूम रहे थे।मै आश्चर्य से यह सब देख रहा था कि शिमले के एक सुदूर गांव में सोमरस की नदियां खूब बह रहीं हैं। हमारे मित्र ने समझाया कि ये सभी सेब के बागवानों के बिगड़ैल लाडले हैं। यहां और तो कोई मनोरंजन का साधन नहीं– ये लोग दुपहर से ही यहां अपना अड्डा जमाते हैं। सिगरेट के धूंए और शराब की गन्ध ने सारा माहौल बिखरा दिया था। बाहर का प्राकृतिक वातावरण पता नहीं कहां खो गया था। हमने रेस्त्रां की छत पर कुदरती नज़ारों को आंखों से आत्मसात करते हुए खाना खाया और लगभग चार बजे कोटखाई महलों तथा आसपास के चित्र खींच कर आगे चल पड़े। कोटखाई के आगे चढ़ाई पर चढ़ती हमारी गाड़ी अनेक बार छींक चुकी थी। चारों ओर देवदारों और बांज वृक्षों का जंगल फैला था। बीच बीच में पक्षियों की काकुली हर्षा जाती थी। ज्यों ज्यों हम ऊपर चढ़ते गए त्यों त्यों ठण्डक बढ़ती गई थी। दूर–दराज तक किसी बस्ती का कोई नामों निशां नहीं था। हां पहाड़ों की तलहटियों पर वनप्रान्तर से घिरी डिब्बीनुमा झोंपडियां कहीं कहीं पर दृष्टिगोचर हो जातीं थीं जिनसे निकलता धूंआ मानों वातावरण की सघनता को और गहरा जाता हो। वह वर्तुलाकार रेखा की तरह हवा में लटका सा लगता था–पहाड़ों के तिलस्म को और गहराता हुआ कोटखाई से आगे रास्ता खत्म होने को नहीं आ रहा था और न ही चढ़ाई ही कम हो रही थी। लगभग 45 मिनट में बीस

किलोमीटर का फासला तय कर हम एक छोटी सी मार्किट में पहुंचे। ताज़े खीरे, कच्चे सेब और सब्जी ही ताज़ा थी बाकी सब कुछ बासी था। यह खड़ा पत्थर कहलाता है। यहां एक खड़ी चट्टान है जिसे बुद्धमत के अनुयाई पूजते हैं। इसकी ऊंचाई सतह समुद्र से लगभग 2673 मीटर यानिकि 8740 फुट की ऊंचाई पर स्थित यह स्थान छोटे आकार के सेवों के लिए प्रसिद्ध है। यहां एक दूरदर्शन का रिले केन्द्र भी है और खेती बाड़ी में अनुसंधान हेतु एक कार्यशाला भी चलती है।

यहां से अब रास्ता जितना उपर चढ़ा था उतना ही नीचे की ओर चल पड़ा था। सन्ध्या का धुंधलका फैली धुंध के कारण और गहरा आया था। आगे लगभग 9/10 किलोमीटर पर तहसील हैडक्वार्टर जुब्बल का कस्बा था। चूंकि हमारा रात्रि विश्राम का प्रबन्ध चीरगांव से आगे पी0एस0ई0बी0 के विश्रामालय में था अतःअब निरंतर चलना ही ठीक था। हां गाड़ी खड़ी कर दूर से जुब्बल के शाही महलों को सुनहरी धूप में देखा और इस अद्‌भुत वृहद् इमारत के कुछ चित्र खीचें और आगे चल पड़े। जुब्बल से एक बार फिर मार्ग नीचे हो लिया था हाटकोटी की ओर। हाटकोटी जुब्बल से लगभग बीस किलोमीटर दूर है– एक घाटी में। हम लगभग साढे छः बजे यहां पहुंचे थे। डूबते सूर्य की लालिमामय रश्मियां मंदिरों के कलशों पर पड़ रहीं थी जो अपने अद्‌भुत शिल्प से पूरी तरह मुखरित थे। मात्र दूर से तस्वीरें लेकर हम आगे बढ़ गए रोहड़ू की ओर चल पड़े क्योंकि रात्रि घिर आने को थी और हमें अभी लगभग तीस किलोमीटर की यात्रा और तय करनी थी अतः यही फैसला किया गया कि प्रातः नहा धोकर शुद्ध मन से यहां आकर दर्शन किए जाएं। अब रास्ता पब्बर नदी के साथ साथ अनेक शिखर शैली तथा पर्वतीय शैली के ढालुआं छतों वाले श्रद्धा–स्थलों से होते हुये आगे बढ़ रहा था। हाटकोटी से रोहड़ू लगभग ग्यारह किलोमीटर पड़ता है– घाटी के आधार में। रोहड़ू एक बड़ी मार्किट है। यहां अनेक शिक्षा स्थलों के साथ–साथ एक संस्कृत महाविद्यालय भी है जो किसी प्राईवेट संस्थान द्वारा चलाया जाता है। वर्षा होने लग पड़ी थी। हम बाज़ार देखना चाहते थे। एक चाय की दूकान के पास गाड़ी खड़ी कर हम चाय पीने भीतर ढुक आए थे। ठण्ड बढ़ आई थी। चाय की चुस्कियों में आनन्द लेते हुए किरनम किरनम वर्षा की बूंदों को स्लेट की ढालुआं छतों से टपकते देखते रहे थे– पर्वतीय घाटियों का स्वार्गिक आनन्द। रोहड़ू की सीमा से चीरगांव तक लगभग 15 किलोमीटर की यात्रा वर्षा में ही सम्पन्न की गई। चीरगांव भी एक अच्छी मार्किट है। ताज़ा पनीर और सब्जियां बाहुल्य में मिलतीं हैं। रात्रि के लिए पनीर तथा सलाद का प्रबन्ध कर हम आगे चल पड़े। यहां एक पन्नचक्की द्वारा उत्पन्न बिजली का प्राजेक्ट है। चीरगांव से आगे सदांशु तक इसी विभाग की बस्ती है और सुदांसु में पब्बर के किनारे पर स्थित है नैसर्गिक सौन्दर्य को लीलता विश्रामालय। किसी ने बहुत सोच–समझ कर इस सुन्दर और व्यवस्थित विश्रामालय को बनाया लगता है। यह पहाड़ियों से घिरी खूबसूरत वादी है और इसकी तलहटी पर पब्बर नदी अपने पूरे वेग से बहती है। इसका जुलाई के प्रथम सप्ताह में भी साफ, पारदर्शी पानी था जबकि बाकी सभी नदी नाले गंदले पानी से भर जाते हैं। बरसाती जल के साथ मिट्‌टी और दूसरा कूड़ा करकट बह आता है। पर निश्चय ही पब्बर का जल हिमनदों से निरन्तर बह रहा था। इसी नदी के ठीक किनारे पर स्थित है विश्रामालय। यह आठ 'सूइट्स' पर आधारित है जिनमें से मात्र चार ही पर्यटकों को दिए जाते हैं, बाकी चार को रिहायशी प्रकोष्ठों में बदल दिया गया है। इसका लॉन बहुत करीने से तराशा गया है। विलायती घास, मखमली कारपेट सा आभास देती है। इसके चारों ओर कश्मीरी फूलों की क्यारियां बड़े बड़े फूलों से मुखरित हो रही थी। विश्रामालय के साथ शोर करती पब्बर नदी अपने पूरे यौवन पर थी। लॉन के एक कोने से नदी का पानी एक पक्की कूहल के माध्यम से लॉन के किनारे कुछ देर चलते हुए फिर नदी की धारा की ओर बह निकलता है। इस जलधारा का पीछा करते हुए जब हम चार दिवारी के दूसरी ओर एक गड़े को छलांग मार कर पार पहुंचे तो देखा कि विश्रामालय की चार दिवारी के उस ओर एक छोटा

सा खेत नदी के साथ लगता अपने में खुबानी के वृक्ष के साथ–साथ सब्जी के पौधों को समेए हैं। इस खेत के एक कोने में मिट्टी की झोंपड़ी बनी थी जिसमें कूहल के जल की धारा आवशार की तरह पड़ रही थी। चौकीदार ने बताया कि यह घराट है। हमने बहुत चाहा था कि यह टुकड़ा भी विश्राामालय को दे दे पर वह नहीं माना। वह अपना घराट नहीं छोड़ना चाहता। घराट बंद था। यह कभी कभी जब दाने पीसने हों तो चलता था।

रात्रि में कहीं जगराता था दूर से भजनों, भेंटों की स्वर लहरियां चारों ओर मुखरित हो रहीं थी। पता चला कि विभाग के लोगों ने मिलकर इस जगराते का आयोजन किया था। शायद इसी लिए गई रात तक खूब रौनक रही थी। हमने चौकीदार द्वारा बनाया खाना खाया और कैम्प फायर कर सो गए। सुबह बहुत सुहावनी थी। नदी का जल और निर्मल हो आया था। प्रातः की चाय बड़ी देर के बाद नसीब हुई पर इस बीच पक्षियों की काकुली का आनन्द उठाते नदी के साथ चलते हुए मैं विश्रामालय के दूसरी ओर पहुंच गया था। सड़क के किनारे की पहाड़ी की ढालान पर फलों से लदे वृक्ष लगे थे जो काफी दूर तक चले गए थे। इसी पहाड़ी के दामन में तीन घरौंदे एक कतार में स्थित थे जिनमें दो दूकानों के किवाड़ों की दर्जों में दो जोड़ी मासूम आंखें झांकती सी लगीं। थेड़ी देर बाद किवाड़ खुले जिनमें से परम्परागत लिबास में सज्जित एक महिला और उसकी अंगुली पकड़े एक बच्चा बाहर आए। महिला ने स्मित मुस्कान से अभिवादन किया और पल भर को ठिठक आई थी शायद जानना चाहती थी कि हम कहां ठहरे हैं। 'ये फलों के उद्यान आपके हैं।' मुझे लगा कि कहेगी हमारे ही है क्योंकि वे उन घरौदों की ऊंचाईयों से एक दम शुरू हो जाते थे। पर उसने बताया कि यह बागवानी विभाग वालों के हैं जो यहां फलवाले वृक्षों पर अनुसंधान कर रहे हैं। इन दूकानों में क्या है? मुझे चाय की ललक सवार थी। बातचीत से पता चला कि उसने अपने पति को छोड़ दिया था। बालक उसकी बहन का था जो प्राजेक्ट में काम करती थी। दोनों नदी के किनारे घूमने जाने वाले थे कि बीच में मैं टपक पड़ा। उसने जब सुना कि मैं चाय की तलाश में निकला हूं तो तुरंत दूकान की ओर मुढ़ गई और मुझे भी भीतर आने का न्योता दिया। दो दुकानों को जोड़कर दो कमरों का रूप दिया गया था। एक कमरा बैठक के तौर पर सजाया गया था और दूसरा रसोई और स्टोर के काम आता था। उसने एक सुघढ़ गृहणी की तरह स्टोव को जलाकर चाय रख दी और इस बीच मेरा परिचय जानने लग गई थी कि मसलन कहां से आये,कैसे आये आदि।चाय सुड़कते हुए भी हम बातें करते रहे थे। मेरे बारे में वह काफी कुछ जान गई थी। ब्रेकफास्ट का न्योता मैं स्वीकार नहीं सका। बाकी साथी उठ गए होंगे अतः मुडने लगा तो उसने आकाशवाणी देखने की इच्छा जाहिर की। वह बाहर तक छोड़ने आई थी।

हम नहा धोकर और हिसाब चुकता कर चलने लगे तो गाड़ी की दाईं खिड़की में बाहर झांका तो देखा वह एक किवाड़ खोलकर खड़ी है और उत्सुक आंखों से देख रही है। गाड़ी ने छींक मारी और आगे बढ़े गई।

पब्बर नदी के किनारे किनारे चलते हुए पर्वतीय शैली में निर्मित झोंपड़ियों और घरों को देखते हुए लगभग साढ़े नौ बजे हम सड़क के किनारे नदी पर पड़े पुल को पार कर दूसरी ओर पहुंचे जहां शिखर शैली के दो मंदिर पहाड़ी के शिखर पर स्थित थे। दसवीं शताब्दी के आसपास बने ये मंदिर सदियों से झंझा झेलते यहां स्थित हैं। एक बड़ा है तो दूसरा उसके साथ लगा छोटा मंदिर समाधि सा प्रतीत होता है। लगभग 23 फुट ऊंचा मंदिर 5फुट गुणा 5 फुट आयताकार गर्भगृह लिए था जो खाली था। मंदिर का अमालक आश्चर्यजनक रूप से सुरक्षित था। मंदिर के साथ लगती दीवार के सहारे एक घर मंदिर की ओर ऊपर की ओर जाती सीढ़ियों के साथ निर्मित था। इस घर की महिला हमारे एक साथी की परिचित थी। उसने चाय पर आमंत्रित किया लेकिन हमें हाटकोटी मंदिर जाकर ही व्रत तोड़ना था, शालीनता से मना कर दिया पर उसने थोड़ा रुकने को कहा और स्वयं एक झोला लेकर नीचे उतर गई। नाले के किनारे एक लम्बे खेत की पंक्ति आगे तक चली गई

थी जिसमें खीरों, ककड़ियों की बेलें फलों के साथ लदीं पड़ीं थीं। आगे फलियों की बेलें लगीं थीं और उनसे बाद की क्यारी में भिंडियों के पौधे फल–फूल रहे थे। उक्त महिला ने अनेक छोटे–बड़े खीरे तोड़े और थैला हमारे हवाले कर दिया–' ये बिल्कुल ताज़े हैं आप बिना छीलें भी खा सकते हैं।'

यहां से इस मंदिर के बिल्कुल सामने इसी शैली में बना एक बड़ा फैला हुआ मंदिर नदी के उस ओर वृक्षों के झौंप में स्थित था। पता नहीं क्यों मुझे लगा कि इस प्रकार के पांच मंदिरों का समूह होना चाहिए था। अक्सर इस शैली में पांच मंदिर इकट्ठे निर्मित होते हैं– तीनरथी चाररथी और पांचरथी शैली में–शायद इसीलिए इन्हें पांडव मंदिरों की संज्ञा से जाना जाता है। मेरी इस बात पर ध्यान देते हुए वहां उपस्थित एक बुजुर्ग ने कहा कि इसी प्रकार के पांच छोटे मंदिरों का समूह हाटेश्वरी मंदिर के प्रांगन में हैं।

इस स्थान से लगभग एक डेढ़ किलोमीटर दूर हाटेश्वरी का मंदिर समूह एक घाटी में स्थित हैं। यह मंदिर समूह स्थापत्य की अद्‌भुत शैली में निर्मित है पर कभी यह शिखर शैली का रहा होगा क्योंकि इस मंदिर के प्रांगण के बायें पार्श्व में, दीवार के साथ शिखर मंदिर के अवशेष, वृहद् आकार में अमालक पड़े थे जो इस ओर संकेत करते हैं।

अद्‌भुत है हाटकोटी मंदिर का शिल्प

मंदिर का अहाता बड़ा विस्तृत है। वस्तुतः यह एक मंदिर न होकर मंदिरों का समूह है।दाईं ओर हाटेश्वरी का भव्य मंदिर है जो ठेठ पर्वतीय शैली के स्थापत्य का अद्‌भुत नमूना है। आयताकार मुख्य प्रकोष्ठ, जो गर्भगृह कहा जा सकता है, के ठीक बीच में मां हाटेश्वरी की प्रतिमा स्थापित है। यहां पहले एक प्रस्तर प्रतिमा स्थापित थी जिसके स्थान पर, कालान्तर में, जुब्बल के राजाओं के शासनकाल में अष्टधातु से निर्मित सुन्दर प्रतिमा को, महिशासुर मर्दिनी के रूप में स्थापित किया गया। यह प्रतिमा लगभग आदमकद की है। और शायद सारे हिमाचल में इस जैसी अन्य कोई प्रतिमा नहीं मिलती। मान्यता है कि इसके मुकुट में हीरा सुशोभित था जिसे गोरखा सैनिक उठा ले गए। मां का मुख प्रसन्न मुद्रा में स्थापित हैं पर अनेक बार यह क्रोध रूप भी धारण कर लेता है। यह एक अति अश्चार्यजनक बात है।पुजारी के अनुसार यह श्रद्धालु की नीयत पर निर्भर करता है। अष्ठभुजा धारी मां की प्रतिमा के दायें हाथों में खड़ग, चक्र, वाण और त्रिशूल हैं।और बायें हाथों में ढाल, घण्टी, धनुष और रक्तधारी खोपड़ी विराजमान है।प्रतिमा के नीचे महिषासुर दबा है जिसे माता की सवारी सिंह ने अपने दांतों से उसे दबोच रखा है।

मुख्य प्रतिमा के दायीं ओर मंदिर का प्रतीक बना है और उसके नीचे शव पर आरूढ़ चामुंडा की प्रतिमा विराजमान है। नीचे मकरारूढ़ देव को उत्कीर्ण किया गया है। आगे अप्सारायें उत्कीर्ण हैं जो मां को पंखा झुला रही हैं। ब्राम्ही लिपि में एक वाक्य भी उत्कीर्ण हैं जो मां की पूजा का बीज मंत्र–'एं ह्रीं श्रीं' है। दक्षिण की ओर पहले मंदिर का प्रतीक है बाद में सिंह पर सवार दुर्गा की चतुर्भुजी प्रतिमा है। बाहर परिक्रमा में गवाक्षों में अनेक मूर्तियां स्थापित हैं।

मुख्य द्वार के बाहर दक्षिण की ओर एक गवाक्ष में बटुकनाथ की प्रतिमा है जिसके नीचे सात मातृकाओं को उत्कीर्ण किया गया है।

यह कभी तांत्रिक शक्तिपीठ रही है। ऐसी मान्यता है कि यहां एक कुण्ड था जहां नरबलि दी जाती थी और रक्त उक्त कुण्ड में जमा होता था पर न ही वह कुण्ड है और न ही वह प्रक्रिया अब दोहराई जाती है। सामने एक यज्ञशाला का निर्माण किया गया है जिसमें सैंकड़ों भक्तजन एक साथ आहुती डाल सकते हैं।

इस मुख्य मंदिर के बाहर, द्वार के दोनों ओर, दो बड़े बर्तन जंजीरों के साथ बंधे हैं। धारणा है कि कभी

ये बड़े धातु के कुम्भ सोने चांदी और खाद्यान्न से भरे रहते थे।

इस मुख्य देवी मंदिर के दायें पार्श्व में एक अन्य, वैसी ही शैली में निर्मित भवन है जिसे भण्डार गृह की संज्ञा से जाना जाता है।

मंदिर के सामने एक अति कलात्मक विश्रामालय बनाया गया है जो काष्ठ कला का अद्‌भुत नमूना कहा जा सकता है। इसकी भीतरी छत ज्यामितीय अनेक नमूनों से सज्जित है।

भण्डार कक्ष के आगे अर्धनारीश्वर का प्राचीन मंदिर है। इसके गर्भगृह में सिलेंण्डर के आकार का श्याम वर्णीय शिवलिंग सुशोभित है जिसके पीछे एक अन्य शिवलिंग भी स्थापित है। चूंकि यह तांत्रिक शक्तिपीठ थी और ऐसी मान्यता है जहां शक्ति का वास होगा वहां शिव अवश्य होंगे। सृजन के लिए शिव और शक्ति का मेल होना आवश्यक है। शिव मंदिर का प्रवेश द्वार बहुत छोटा है अतः झुक कर जाना पड़ता है। भीतर मानों महाशिव की आभा विराजमान हो– स्वयं ही व्यक्ति नतमस्तक हो जाता है। इस गर्भगृह के दांई भीत्ति के साथ साढ़े तीन फुट की तीन विष्णु की प्रतिमायें रखी है जबकि पीछे विष्णु, लक्ष्मी की प्रतिमा सुशोभित है।

शिव मंदिर के दांईं ओर पांच शिखर शैली के लघु मंदिर एक दूसरे के साथ सटे स्थापित हैं। इन मंदिरों को देखकर लगता है कि कभी मां हाटेश्वरी और शिवमंदिर भी शिखर शैली के रहे होंगे। इसके प्रमाण भी हाटेश्वरी मंदिर के बायें पार्श्व में, दीवार के साथ पड़े खण्डित शिखर इस ओर संकेत करते हैं, पर कालान्तर में उन्हें पर्वतीय शैली के मंदिरों का रूप दे दिया गया था। मान्यता है कि 1885 ई0 में जुब्बल के राजा पद्‌मचंद,1877–1898 ई0, ने इसका पुनः उद्धार करवाया था। हो सकता है तब जीर्ण–शीर्ण शिखरों को हटाकर उनके स्थान पर वर्तमान शैली के मंदिरं बनवाए गए हों। इस अद्‌भुत स्थापत्य में धीमान वंश का भरपूर योगदान रहा है। इस वंश के वंशज पीढ़ी दर पीढ़ी प्रस्तर तथा काष्ठ शिल्प के अन्यतम शिल्पी रहें हैं। वर्तमान में इकासी वर्षीय धर्मदास धीमान इस कार्य में संलग्न हैं।

मान्यता है कि रम्भ नामक अति बलशाली असुर हाटकोटी से कुछ दूरी पर वास करता था। यहीं पर उसे अति शक्तिशाली पुत्र रत्न महिशासुर की प्राप्ति हुई। महिशासुर महाशिव का अनन्य भक्त था और उसने भगवान शिव की तपस्या कर अनेक सिद्धियां प्राप्त कर लीं थीं जिनका उपयोग वह जनसाधारण के साथ–साथ अति बलशाली राजाओं के विरुद्ध किया। वह इतना बलशाली और अभिमान से चूर हो चुका था कि उसने स्वर्ग पर भी हाथ डाल दिया था और अनेक देवों को कैद कर इन्द्र पर चढ़ दौडा था कि सभी देवों ने एक जुट होकर महादेवी का आह्‌वान किया था। यहीं पर दुर्गा की अवतार सर्व सम्पन्न देवी ने, जिसमें अनेक देवों ने अपनी शक्ति का सचार किया था, महिशासुर को मार गिराया था। अतः यह स्थान अति शक्तिशाली और तांत्रिक सिद्धपीठ बन गया। आज भी श्रद्धा से जो श्रद्धालु यहां कोई मन्नत मांगते हैं अवश्य पूरी होती है ऐसी प्रबल मान्यता है।

इस लेख को सम्पन्न करने से पहले मंदिर के शिल्प पर दो बातें करना जरूरी हो जाता है। चूंकि इस मंदिर समूह का शिल्प अन्यतम है अतः हिमाचल प्रदेश के अन्यतम मंदिर समूहों में यह अपना विशेष स्थान रखता है। इस मंदिर अहाते का प्रवेश द्वार ही अति कलात्मक है। प्रवेश द्वार प्रस्तर ठोस पर कलात्मक घटे हुए पत्थरों से बनाया गया है जिसके ऊपर कोठीनुमा काष्ठ प्रकोष्ठ को निर्मित किया गया है जिसकी ढालुआं छत पर तिकोना पिरामिडल 'स्ट्रक्चर' विद्यमान है। इसके साथ ही मंदिर की परकोटे की दीवार शुरू हो जाती है।

इस अहाते में अनेक मंदिर स्थापित हैं। मुख्य मंदिर एक उंचे मंच पर स्थापित महेशासुर मर्दिनी को समर्पित है जो दो मालों पर निर्मित किया गया है–नीचे का माला आयताकार प्रकोष्ठ है जिसपर ढालुआं छत स्लेटों से बनी है। ऊपर एक अन्य अति लघु आयताकार प्रकोष्ठ है जिसे ढकती हुई ढालुआं छत धीरे धीरे

पिरामिड का कोन बनाती हुई गोलाकार कलशनुमा 'स्ट्रक्चर' पर जाकर सम्पन्न होती है।

इस मंदिर के दाएं पार्श्व में भण्डारण प्रकोष्ठ यद्यपि मंदिर के मुख्य प्रकोष्ठ से बड़ा है तथापि इसका निर्माण भी उसी शैली में किया गया है मात्र एक खुले प्रकोष्ठ को ढकती ढालुआं छत कलश के रूप में स्थित 'स्पिंडल' में सम्पन्न होती है। इसके दाईं ओर प्रस्तर कारीगिरी का अन्यतम नमूना शिव मंदिर है जिसे अध ीनारीश्वर की संज्ञा से नवाज़ा गया है।यद्यपि इसका गर्भगृह पहले की दो इमारतों से छोटा है पर इसकी कलात्मक उकेरी गईं भीत्तियां बाकी दोनों भवनों से अनुपाततः ज्यादा आकर्षक हैं।छोटे द्वार के दोनों ओर स्तम्भाकार में द्वार फलक हैं जिनके बाहर त्रिदेव आकृति लिए दो मस्तक 'स्टोन' सजे खड़े हैं।
इसकी ढलुआं छत भी उसी शैली में निर्मित है जैसे भण्डार कक्ष की छत। फर्क यह है कि इसका कलशनुमा 'स्ट्रक्चर' ऊपर शिखर या अमालक बनाता दीखता है जो पैगोडानुमा छत की तरह लगता है जो अपने ऊपर एक छोटा कुम्भाकार कलश लिए है। भीतर महाशिव का सिलंडर आकार में श्याम वर्णीय लिंग स्थापित है जिसके पीछे एक और लिंग स्थापित है जो सामान्यतः दीखता नहीं। इसके दोनों ओर भीत्तियों के पास विष्णु और सूर्य भगवान की अनेक अर्धमूर्तियां रखीं गई है जो कभी पुरातन मंदिर में स्थापित होंगी।

मुख्य देवी मंदिर के सामने यज्ञशाला का निर्माण किया गया है पर इस यज्ञशाला के दाईं ओर अति कलात्मक बैठक बनाई गई है। अठकोणा यह बैठक काष्ठशिल्प का अन्यतम नमूना कही जा सकती है। बैठक आठों दिशाओं में खुली है और काष्ठ स्तम्भों द्वारा मेहराब बनाती छत ऊपर टिकी है। इस प्रकार हर दिशा में दो मेहराब द्वार खुले द्वार हैं– कुल मिलाकर इनकी संख्या 16 हो जाती हैं ये छत को सम्भाले स्तम्भ नीचे अति कुशल हाथों से उत्कीर्ण काष्ठ फलकों से एक दूसरे से जुड़े हैं और उपर काष्ठ छत बाहर की ओर बल्लरियों से सजी फलक पट्टियों से मुखरित है जो काष्ठ लड़ियों के माध्यम से झालर बनाती चहुं दिशाओं में अपनी छटा बिखेर रही है। भीतरी छत अनेक कोनी कमल के आकारों द्वारा सज्जित हैं इन अनेकायामी काष्ठ कमल के फूलों का आणुक्रमिक विन्यास अति संतुलित है– कहीं पर भी कोई नाप तोल में कमी नहीं दिखती। इस बैठक का निर्माण चर्चित शिल्पी धर्मदास धीमान ने किया था। मंदिर का प्रवेश द्वार और परकोटे के बनाने में भी उसी का योगदान रहा है।

श्री ओमप्रकाश जी इसके पुजारी और गुर है। इनके पूर्वज लगभग सौ वर्ष पहले यहां आये थे तभी से राज्याश्रय में रहकर यहां पुजारी हुए। अब यह वंश पीढ़ी दर पीढ़ी इस मंदिर का पुजारी पद सम्भाले है और समय समय पर, विशेषकर मेलों मे 'ट्रांस में आकर खेल खेलता है और श्रद्धालुओं की समस्याओं का निदान करता है।पुजारी ने हमें बताया कि बाहर मंदिर के प्रवेश द्वार के दोनों ओर जो ताम्बे की बड़ी बटलोईयां पड़ीं है–ये सोने चांदी से भरी रहतीं थीं पर अब खाली हैं। हां कभी मेलों में इन्हें अनाज से भर दिया जाता है जो श्रद्धालु यहां चढ़ाते हैं। मंदिर की व्यवस्था देखने के लिए सात कारदार हैं जिन्हें गुर के माध्यम से माता ने स्वयं चयनित किया है। मंदिर की अपनी सराय है जिसमें 28, 29 कमरे हैं जहां दूर–दराज से आये श्रद्धालु ठहर सकते है।

ढ. नैसर्गिक परिवेश में स्थित है सीपुर का श्रद्धास्थल

ऐतिहासिक एवम् सांस्कृतिक महत्व के अनेक श्रद्धास्थल शिमला के आस–पास स्थित हैं जिनका जिक्र अंग्रेज पर्यटकों और विद्वानों ने अपने संस्मरणों में बड़े चाव से किया है। इनमें सीपुर श्रद्धा स्थल और इसके मेले की सर्वोपरि चर्चा हमें मिलती है। प्रसिद्ध अंग्रेज लेखक रूदयार्ड किपलिंग ने भी इसका जिक्र अपने संस्मरणों में किया हैं वस्तुतः इन पाश्चात्य विद्वानों एवम् पर्यटकों को सीपुर मंदिर का वातास, चुप्पी और घने देवदारों के

बीच ठहरा हुआ वातावरण प्रभावित करता रहा है जैसे वे किसी रहस्यमयी दुनिया में, बाकी संसार से कटे, पहुंच गए हों। मेले के दिनों को छोड़कर यह मंदिर बंद रहता है यदि यह कहा जाए कि वर्ष में केवल एक बार ही यह मंदिर खुलता है तो गलत नहीं होगा। अतः बाकी दिनों में खामोशी व्याप्त रहती है अतः परिवेश रहस्यमय हो जाता हैं दिन में भी घने, लम्बे, ऊंचे देवदार के वृक्ष मंदिर को ढके रहते हैं।

सीपुर शिमला से लगभग 16 किलोमीटर दूर एक घाटीनुमा नयनाभिराम स्थली में स्थित है। मशोबरा, सेब के घर तक, सड़क मार्ग से जाया जा सकता हैं निरंतर बसें चलतीं रहतीं हैं। मशोबरा से एक पहाड़ी पगडण्डी नीचे वनप्रान्तर की ओर जाती है। अभी तक हमारी नज़र में जितने भी मंदिर अथवा यात्रा–स्थल आये हैं वे सभी के सभी ऊंचे पठारों या पर्वत की श्रृंखलाओं पर स्थित है अतः उन तक पहुंच चढ़ाई चढ़कर हो सकती है और दर्शन लाभ कर श्रद्धालु को उतराई की ओर व ढलान की ओर अग्रसर होना होता है पर सीपुर के श्रद्धास्थल तक पहुंच ऊपर से नीचे जाकर होती है। एक कटोरीनुमा घाटी में स्थित है यह अद्‌भुत मंदिर बिल्कुल एकांतवास की तरह जिसके किनारों पर प्रकृति ने सघन वन उगायें हैं। मुशोबरा से एक कच्ची सड़क भी निकाली गई है जो मंदिर से थोड़ी दूर तक जाती है पर यह 'फेयर वेदर' सड़क है और हमारा वहां जाना बरसातों में हुआ था जब यह अति खतरनाक हो जाती है अतः पैदल ही वहां पहुंचने का निश्चय किया गया।

मुशोबरा की सड़क से एक पगडण्डी नीचे सेबों के बाग की ओर चली जाती है जो वर्तुलाकार रास्ता बनाती हुई मशोबरा में स्थित आचार्य दिवाकर के तपोवन और गौशाला से आगे वनप्रान्तर की ओर हो लेती है। फिसलन भरा रास्ता बरसातों में और भी मुश्किल भरा हो जाता है। यह पगडण्डी आगे जाकर निकाली गई कच्ची सड़क के साथ मिल जाती है जो एक बावड़ी, प्राकृतिक जलस्रोत, के पास जाकर खत्म होती लगती है। यहां से एक सीधा मार्ग ढालान की ओर अग्रसर होता है लगभग डेढ़–दो किलोमीटर की यात्रा तयकर खुल जा सिम सिम की तरह अचानक सामने देवदारों से घिरि घाटी पाकर यात्री की सारी थकान काफूर हो जाती है–नैसर्गिक सौन्दर्य चारों ओर अपनी छटा बिखेरता लगता है।घाटी के बीचोबीच परम्परागत शैली में बना मंदिर स्थित है।

काष्ठकुणी वास्तुशिल्प में ढला यह मंदिर अपने लघु पर अद्‌भुत स्वरूप को लिए उजागर होता है। आयताकार आधार ठोस पत्थरों और लकड़ी के पूरे शहतीरों से बनाया गया है जो लगभग आठ फुट ऊंचाई तक चला गया है उसके ऊपर मंदिर का मुख्य प्रकोष्ठ बना है जो आधारभूत ठोस रकबे से लगभग एक चौथाई ज्यादा बड़ा है क्योंकि इसे चारों ओर लगभग तीन फुट गलियारे से बाहर की ओर बढ़ाया गया हैं इस प्रकार एक खुला हाल कमरा ऊपर बना है जिस तक पहुंच बरामदे से ऊपर जातीं सीढ़ियों से होती है। सीपुर देवता की प्रतिमा ऊपर विद्यमान है जिसे केवल मेले के दिनों में ही देखा जा सकता है जब इस देव प्रतिमा को मंदिर से बाहर निकाला जाता है।

मंदिर के मुख्य प्रकोष्ठ के ऊपर चारों ओर ढलुआं छत स्लेट से ढकी जड़ी गई है और उसके ऊपर ठीक बीच में पिरामिड के आकार का तिकोना प्रकोष्ठ है जिसके ऊपर कोन के शीर्ष पर एक बड़ा शहतीर, इसकी दोनों दिशाओं को बांधता लगता है।

सीपुर के मुख्य मंदिर को तीन और भवन इसे तीन ओर से घेरे हैं जबकि सामने खुला मैदान है। इसके बांई ओर थोड़ा हटकर, पार्श्व में शक्ति का त्रिपुर सुन्दरी रूप लिए देवी का मंदिर है जो एक छोटे पर कलात्मक प्रकोष्ठ के रूप में अपना विलक्षण स्वरूप लिए है– पहाड़ी शैली में बना आकर्षक प्रकोष्ठ। इससे आगे की ओर एक अन्य, अति लघु पर वैसा ही स्वरूप लिए,मंदिर है जो देवगण के स्थल के रूप में जाना जाता है। यह मुख्य देव का गण है।

सीपुर देवता वर्ष में एक बार अपने स्थान से बाहर निकलते हैं– हर वर्ष मेई में यहां एक मेला लगता है जिसमें दूर–दराज़ से लोग देवता के दर्शन करने और मेले का लुत्फ उठाने आते हैं। आस–पास के गांवों, कनौथ, बंगणा, ड्योठी आदि के अनेक वासियों का यह कुल देवता है अतः उनके परिवार के सदस्यों के लिए यह श्रद्धा का केन्द्र तो है ही अथच इस मेले के आयोजन में भी वे अपना भरपूर योगदान देते हैं। इस मेले में खाने–पीने की वस्तुओं के स्टॉल तो लगते ही हैं अथच पंजाब से बहुत व्यवसाई विशेषकर दुआबे से यहां हर वर्ष आकर व्यवसाय करते हैं। यह मेला तिथि विशेष पर संक्राति के रोज़ से शुरू होता है। बच्चों के लिए खेल प्रतियोगितायें आयोजित की जाती है। 'सीपी' मेले के तौर पर यह अति चर्चित मेला है जो कोटी के राज्यकाल में राजा के संरक्षण में शुरू किया जाता रहा हैं। अंग्रेज पर्यटकों ने इस मेले का बखान अपने संस्मरणों में खूब किया हैं अक्सर इस मेले में युवा वर्ग के घटक एक दूसरे को पसंद कर शादी के लिए अपना जीवन साथी भी ढूंढते रहे हैं।

मुख्य मंदिर के साथ एक प्राकृतिक जल स्रोत है जिसमें कभी कमल तथा कमलनियों की शोभा रहती थी पर जल धीरे धीरे सूख गया है और अब मात्र दलदल सी दीखती हैं इसे साफ कर फिर से निखारा जा सकता है। दायीं ओर एक और भवन मंदिर के कारदारों के लिए हैं। यह भवन भी पहाड़ी शैली में निर्मित है और मेले के दिनों में ही खुलता है।

थोड़ा आगे जाकर नीचे ढालान की ओर एक अन्य मंदिर पवनपुत्र हनुमान जी को समर्पित है। इसक स्थापत्य भी पर्वतीय शैली से ही प्रभावित है। इस मंदिर के साथ एक गोठ और रात्रि विश्राम के लिए एक अलग से प्रकोष्ठ है जहां आराम किया जा सकता है। जब हम वहां पहुंचे तो वर्षा शुरू हो चुकी थी परिणामतः हमें उसी की शरण में जाना पड़ा। सामने एक मैदान में बच्चे हल्की हल्की वर्षा के बावजूद खेल में मस्त थे। पता चला कि साथ ही स्कूल था जहां अभी आधी छुट्टी हुई थी।

बूंदा–बांदी में ही हम वापिस चल पड़े थे मशोबरा की ओर जहां हमारी गाड़ी हमारा इन्तजार कर रही थी वापिस आते मैं सोच रहा था कि 'सीपुर' संज्ञा का अर्थ क्या है–चूंकि यह स्थानीय देवता शिवरूप लिए है अतः हो सकता हैं कि कभी इसका नाम शिवपुरी अथवा शिवपुर रहा हो और भाषा की शार्टकट मारने की खूबी के कारण शिवपुर से कालान्तर में 'व' उड़ गया और 'शिपुर' बाकी रह गया–तर्कसंगत लगा। इस ओर आचार्य जी ने भी हमें संकेत दिए थे।

ण. देवता चिखड़ेश्वर का श्रद्धास्थल

चिखड़ेश्वर ठियोग के देवता माने जाते हैं जिनका मुख्य स्थान चिखड़ है पर इनका दूसरा स्थान जनोग गांव में है। ये दोनों देवस्थल क्रमशः बड़ी डियोठी और छोटी डियोठी कहलाते हैं।

देवते का स्वरूप कांसे के मुखौटे का प्रतीक चिन्ह है जिसके अनेक स्वरूप मुख्य मंदिर के सबसे ऊंचे प्रकोष्ठ में उच्च आसन पर करीने से सजाकर रखे गए हैं जिनमें से चार चांदी के कलात्मक पालने में सज्जित हैं। पहले मुखौटे को धर्मेट वंशजों ने वहां स्थापित किया था अपनी जीत की खुशी में। उन्होंने देवता से मन्नत मांगी थी जो पूरी हो गई। बाकी के तीन देव मुखौटों की उत्पत्ति स्वयं ही हुई थी। और उन देवप्रतिमाओं के मुखौटों को स्थान स्थान से भेंट में लिया गया,विशेषकर नगरकोट में नहाने जाते हुए देवता को वापिसी में ये मुखोटे भेंट स्वरूप दिए गए।

देवता के दो स्थान हैं एक तो मुख्य मंदिर जिसमें लगभग 20 फुट ठोस पत्थरों का आधार है जिसके ऊपर एक समकोन प्रकोष्ठ तक सीढ़ियां जाती हैं जो खाली होता है जहां रात्रि के समय पंडित सोते है और अनुष्ठानों

के समय ज्यादा भीड़ होने पर श्रद्धालु वहां अपनी बारी की प्रतीक्षा करते हैं। यहीं से एक एकल पेड़ से बनाई गई एक पीढ़ी ऊपर गर्भगृह में जाती है जो वैसा ही प्रकोष्ठ है जिसकी दक्षिण दिशा में ,मंच पर उत्तरोन्मुखी देव प्रतिमायें स्थापित हैं जिनमें से चार चांदी की कलात्मक पालकी जिसे शयन कहा जाता है,पर विराजमान हैं और इसके दोनों ओर लगभग पांच पांच देव मुखौटे रखे गए हैं। मंदिर का पुजारी हर दो समय पूजा करता है। पुजारियों में जराईक, धर्मेट ,कुम्हार और जावटा आदि मुख्य ब्रम्हण जातियां हैं जिन्हें पूजा करने का अधिकार है। जबकि साजी और संक्रांति पर बड़गांव के पंडित पूजा करते हैं। वर्ष में चार साजियां और चार सांक्रातियां मनाई जाती हैं–साजियों में दीवाली, लोहड़ी, बैसाखी और सावन में अनुष्ठान किए जाते हैं जब देवता को पूजा करके पालकी में बाहर लाया जाता है। दीवाली को मंदिर के प्रांगन में बलराज अर्थात बहुत सी लकड़ियों को ठीक मध्य में जलाया जाता है–उसके चहुं ओर दीवाली खेली जाती है–

जाया मेरेया अनुआ पूता
लायां मेरेया सियां पैता

गायन होता है जिसमें रामायण की कथा गाई जाती है। दो दो गायकों का युगल नाचता है और गायन किया जाता है। और रात्रि को सात बार देवता की पूजा की जाती है। जिसे धवेले कहा जाता है। एक तरह से नाच गाने में व्यवधान लाने के लिए देवता की पूजा आवश्यक मानी जाती है। इसमें केवल पुरूष ही भाग लेते हैं नारियां नहीं। हां वे भीतर बैठकर देख सकती हैं। इस बीच रात्रि के समय करियाला तथा दूसरे नाटक नाटक मंडलियों द्वारा खेले जाते हैं। कार्यक्रम प्रातः सातवीं बार पूजा कर सम्पन्न होता है। देवता को भोग लगाया जाता है और सभी श्रद्धालुओं को खाने के लिए भोग दिया जाता है। लोहड़ी की साजी तथा अन्य साजियों–बैसाखी तथा सावन में देवां अपनी गोद में केन्द्रीय चार देव मुखौटों को उठाकर देवताओं को नहलाने के लिए दो किलोमीटर दूर स्थित देवताओं के नहाने की बावड़ी ,जिसे स्थानीय भाषा में गोणाक कहा जाता है ,ले जाते हैं। बाद में इसे बंद कर दिया जाता है और इसका जल कोई नहीं प्रयोग में ला सकता। केवल देवता की पूजा के लिए ही इसे उपयोग में लाया जाता है। बाद में इन देव मुखौटों को इनके शयन कक्ष ,चांदी की पालकी, में सजाकर पूजा की जाती है।

बाद में लोग चढ़ावा चढ़ाते हैं और देवां उस समय देवता के गुर के रूप में लोगों के प्रश्नों का उत्तर देता है। बाद में लोगों को इलायची और चावल के दानों के रूप में भोग दिया जाता है।

माह में एक बार जागरण होता है जिसे स्थानीय भाषा में जागर कहा जाता है जब रात्रि भर कीर्तन किया जाता है। देवता के चारों देव मुखौटों को मुख्य मंदिर से निकालकर धार्मिक जलूस के रूप में 'जॅगर' नामक एक अति कलात्मक मंदिर में ले जाया जाता है पिरामिड नुमा प्रकोष्ठ के पीछे एक गर्भगृह में, जहां शिवलिंग स्थापित है,रखा जाता है। अब चांदी की पालकी भी साथ होती है। बाहर मंडप अति कलात्मक तौर पर सजा है जिसके ठीक बीच में एक हवन कुण्ड है जिसे शान्द कुण्ड कहा जाता है। सैंकड़ों वर्षो से यह हवन कुण्ड एक पाषाण कटोरेनुमा शिला से बंद पड़ा है और इसे तभी खोला जाता है जब देवता की शान्द का अनुष्ठान सैंकड़ों वर्षो बाद किया जाता है। अब तक तीन चार सौ वर्षो से यह अनुष्ठान नहीं हुआ। लोग व्रत रखते हैं और मनौती मांगते हैं।

अनेक बार लोगों की मनौती पूरी हो जाने पर लोग देवता को अपने यहां निमंत्रित करते हैं जहां देवता की पूजा की जाती है। यह पूजा बड़े पंडितों द्वारा ही की जाती है। यज्ञ होता है जिसे 'खीण' की संज्ञा से जाना जाता है। तब देवां अर्थात 'गुर' में देवता प्रवेश कर प्रश्नकर्त्ताओं के प्रश्नों का उत्तर देते हैं। बाद में भोज आदि होता है और देवता को वापिस मंदिर में ले जाया जाता है। इससे पहले खाना खाने के बाद भारद्वाज ब्राह्मण

देवता को घेरे में लिए नाचते हैं जिसे स्थानीय भाषा में 'जातर' कहा जाता है। इस अनुष्ठान में जनोग परगने के सभी परिवार भाग लेते हैं। जनोग गांव में कुल 14 परिवार है जिनकी कुल संख्या 250 के करीब है। उनमें धर्मेट, जावटा, कुम्हार, जराईक आदि ब्रम्हण जातियां हैं। अन्य जातियों में, गन्धर्व, बाड़ी तथा हरिजन आदि जातियों के लोग हैं।

देवता को, देवता के गुरू के माध्यम से सूचना पाकर नहलाने के लिए नगर कोट, कांगड़ा की माता वज्रेश्वरी के स्थान पर ले जाया जाता हैं देवता के साथ उसकी धर्म बहन मां जयश्वरी, जो कि जैस नामक गांव की कुल देवी है, जहां उसका मंदिर स्थापित है, भी ले जाई जाती है। यह यात्रा पैदल की जाती है जिसमें परगने के हर खानदान से एक व्यक्ति अवश्य साथ जाता है। देवां, वज़ीर, सियाना, पुजारी और दूसरे अहलकार जिनकी संख्या लगभग पचास होती है, साथ जाते हैं। रास्ते में अनेक पड़ावों पर देवता विश्राम करता है जहां पूजा की जाती है और भोग स्थानीय लोगों द्वारा लगाया जाता है। यात्रा सुन्नी बसंतपुर की ओर से की जाती है और इनके विश्राम स्थल निश्चित हैं जहां देवता विश्राम करता है और स्थानीय श्रद्धालु देवता तथा उसके साथ आये कारकुनों का प्रबन्ध करते हैं–उनके ठहरने खाने का प्रबन्ध भी स्थानीय लोगों के हाथों ही किया जाता है ऐसा एक स्थान शिमला के बालुगंज इलाके में प्रास्पेक्ट्स पर्वत श्रृंखला पर स्थित कामना देवी मंदिर के पिछवाड़े भी आरक्षित है जहां एक पट्टिका ठियोग के देवता चिखड़ेश्वर के नाम की लगी है जिस पर सूचना दर्ज है कि अपने प्रवास के दौरान देवता यहां विश्राम करता हैं। यहां पर देवता तथा कारकुन वापिसी में ठहरते हैं।

देवता को नहाने के लिए जाने से पहले देवां के माध्यम से देवता आदेश देता है तब मंदिर कमेटी के अहलकार बुलाए जाते हैं–बैठक होती है और खर्चा आदि निर्धारित किया जाता है। इस बैठक में धर्मेट, कुम्हार, जावटा और जराईक परिवारों के प्रतिनिधियों के अलावा पूरे परगने से प्रतिनिधि भाग लेते हैं और खर्चा निर्धारित कर य़ात्रा शुरु की जाती है। खर्चे का स्रोत चढ़ावा होता है। औसतन तीन चार हज़ार, आम दिनों वाले म़ाह में, चढ़ावा चढ़ता है पर साजी या कोई दूसरा अनुष्ठान, संगरांद–संक्राति होने पर ज्यादा भी चढ़त होती है। जो भी देवता का दर्शन करने आता है वह चढ़ावा चढ़ाता ही है–खाली हाथ कोई भी दर्शन करने नहीं आता। यह सारा पैसा भण्डारी के पास रहता है जिसे समय समय पर, अनुष्ठानों पर उपयोग में लाया जाता है पर इससे पहले मंदिर कमेटी की बैठक में खर्चा पारित होना जरूरी है। एक बार खर्चे का निश्चित कर देवां तथा दूसरे कारक़ुनों के साथ देवता की सवारी कांगड़ा की ओर नहाने के लिए निकलती है। लगभग पन्द्रह दिन पैदल यात्रा कर कांगड़ा के वज्रेश्वरी मंदिर के प्रांगण के कोने में स्थित एक बावड़ी के पानी से स्नान कराया जाता है। यह बावड़ी अकसर बन्द रहती है केवल देवता के आने के बाद ही इसे खोला जाता है। देवता का विधिवत स्नान कराकर पूजा की जाती है। यह पूजा कांगड़ा के पुजारी–वर्तमान भोजकी ओम प्रकाश विधिवत करते हैं।

यद्यपि देवता की पूजा मुख्यता जावटा और जराईक खानदान के पुजारियों द्वारा ही की जाती है तथापि जराईक और कुम्हार खानदानों की संतति के लोग ही देवां या गुर हो सकते हैं। जब देवता मंदिर के बाहर अनुष्ठानों के लिए ले जाया जाता है तो पूजा बडू गांव के शांडिल्य ब्राम्हण ही करते है। अन्य काम भी विभिन्न जातियों में बांटे हुए हैं। मसलन बजंतरी अर्थात नगाड़ा आदि बजाने वाले तूरी जात के हैं तो मंदिर के निर्माण, मुरम्मत और काष्ठ शिल्पि बाड़ी कहलाते हैं। मंदिर का निर्भाण इस परगने के काष्टशिल्पि और राजमिस्त्री ही करते है।

वर्तमान देवां या गुर पंडित सीताराम जी हैं जिनका घर देव मंदिर के पिछवाड़े स्थित है। देवता की दो बार पूजा की जाती है जो विधि विधान से होती है। ऐसा न होने पर देवता का प्रकोप भी आ सकता है। तब देवता देवां के माध्यम से अपनी बात कहता है तो सभी कारकुन बैठक कर पश्चाताप का निश्चय करते हैं। कई

बार देवता किसी चेतावनी की ओर भी संकेत करता है और अपने गुर के माध्यम से उसका समाधान भी बताता है जिसे उचित मार्गदर्शन में सम्पन्न कर लिया जाता है। अक्सर साजियों पर देवां लोगों के प्रश्नों को उत्तर देते हैं। मंदिर कमेटी में चार नम्बरदार हैं, एक प्रधान और दस सदस्य होते हैं जिनके बैठक में फैसला होने पर ही अनुष्ठान सम्पन्न किए जाते हैं।

मुख्य मंदिर का शिल्प

स्थानीय मंदिर शिल्प का यह अद्भुत नमूना कहा जाएगा। समकोन लम्बाकार भवन का आधार लगभग बीस फुट ऊंचा ठोस पत्थरों से बना है जब ऊपर जाकर वीथियां लगभग तीन–साढ़े तीन फुट बाहर निकलकर प्रकोष्ठ का रकबा ठोस आधार से चहुं ओर बढ़ा देती हैं। इस प्रकार यह भी समकोन प्रकोष्ठ बन जाता है जो 15 फुट गुणा 15 फुट का होगा। इसका फर्श ठोस लकड़ी के तख्तों से बनाया गया है। यहीं से एक पूरे वृक्ष के तने को तराशकर बनाई गई सीढ़ी एक दूसरे प्रकोष्ठ में जाती है जो वस्तुतः देव स्थल या गर्भगृह है। वस्तुतः मण्डप और गर्भगृह एक ही खुला प्रकोष्ठ है। इसका रकबा भी नीचे के प्रकोष्ठ के बराबर है। नीचे से एक सीढ़ी ठोस आधार पर स्थित पहले प्रकोष्ठ की ओर ले जाती है जो ऊपर एक भीत्ति की ओर खुलने वाली खिड़कीनुमा द्वार के पास रूकती है। इस द्वार को ऊपर उठाकर ही प्रकोष्ठ क़ी बीथिका में जाया जा सकता है और प्रकोष्ठ के भीतर जाने के लिए एक बहुत छोटा सा प्रवेश द्वार है जहां से झुक कर जाना पड़ता है। एक दर्शन के अनुसार ये द्वार जानबूझ कर छोटे बनाए गये हैं ताकि व्यक्ति को झुककर भीतर जाना पड़े।
ऊपर ढालुआं छत है स्लेटों से ढकी। मंदिर के परिसर में दो मंजिला प्रकोष्ठ प्रांगन में चहुं ओर फैले हैं। हमें बताया गया कि ये प्रकोष्ठ देवता के भण्डार और देवता के विश्रामस्थल हैं। एक ओर दूसरी मंजिल पर एक प्रकोष्ठ के बाहर वीथिका में नई बनी पालकी पड़ी है जो अति कलात्मक काष्ठ शिल्प द्वारा सज्जित है।
एक प्रकोष्ठ में, निचली मंजिल में नगाड़े रखे गए हैं। नगाड़े बजाने के लिए श्याम जी हैं जो पूजा ताल, नौवत ताल,देव ताल आदि में निपुण हैं और अनुष्ठानों तथा धार्मिक पर्वों पर वह नगाड़े बजाते हैं। उनका नौ वर्षीय बेटा भी इन तालों में निपुण है और वह भी श्याम जी के उपस्थित न होने पर अपनी कार्यकुशलता तथा प्रतिभा दर्शाता है।

देवता का विश्राम स्थल

देवता का विश्राम स्थल देवता के मुख्य मंदिर से थोड़ी दूर, एक ऊंचे पठार पर हैं यह एक अति सुन्दर और व्यवस्थित शुद्ध काष्ठ फलकों और पत्थरों से बनाया गया प्रकोष्ठ है जिसकी भीत्तियों, छत को घेरे झालरों आदि पर अति कलात्मक काष्ठ मीनाकारी की गई है। सामने के फलक पर झालर के ऊपर एक कतार में 60 देव आकृतियों को बनाकर सजाया गया है। ठीक बीच में हथियार बंद पुरूष प्रतिमायें है। जिसके दोनों ओर 28, 28 की संख्या में देवी प्रतिमायें या अप्सरायें दर्शाई गईं हैं। बाईं ओर 28 इन प्रतिमाओं के बाद तीन और प्रतिमायें कोने में स्थित हैं जिनमें एक पुरुष प्रतिमा है और दो महिलाओं की। पर ये महिला आकृतियां पहली प्रतिमाओं से बढ़ कर बनाई गई हैं। इसी प्रकार भीतर की भीत्तियां भी इन कलात्मक काष्ठ फलकों से सज्जित हैं। यह एक समकोन प्रकोष्ठ है, धरती की सतह से ऊंचा जिसे मण्डप के तौर पर उपयोग में लाया जाता है। ऊपर पिरामिडल आकार की ढालुआं छत है जिसकी भीतरी छत को कलात्मक ज्यामीत्तीय फलकों द्वारा सज्जित कर रखा है। फर्श पर एक बहुत बड़ा पाषाण कटोरे के आकार का पत्थर औंधा रखा गया है। हमें बताया गया कि यह विशाल पाषाण कटोरा हवन कुण्ड को ढके है जो सैंकड़ों वर्षों से ऐसे ही पड़ा है और सैंकड़ों वर्षो से इसे

खोला नहीं गया। इसको तब ही खोला जाता है जब 'शांद' होती है। शांद का अनुष्ठान बहुत विशाल स्तर पर अनुष्ठानित किया जाता हैं इसमें लाखों रुपये खर्च होते हैं और यह, अनुष्ठान अनेक दिनों तक चलता है जब तांत्रिक पूजा पद्धति से हवन कुण्ड को खोला जाता है और आहूती दी जाती है ,बकरों की बलि लगती है और सामूहिक यज्ञ के बाद सामूहिक भोज होता है। इसमें न केवल इस परगने के लोग भाग लेते हैं अपितु देवता की बड़ी डियोठी के कारकुन तथा उस परगने के लोग भी भाग लेते हैं।

अंतिम 'शांद' का अनुष्ठान कब हुआ था कोई नहीं जानता। देवता का गुर पंडित सीताराम कहते हैं कि उन्होंने अपने बुजुर्गों से सुना था कि तीन चार सौ वर्ष पहले इस अनुष्ठान को आयोजित किया गया था। इस मण्डप के पीछे एक छोटा सा प्रकोष्ठ है जिसके ठीक बीच में एक शिवलिंग स्थित है और पीछे की दीवार के साथ कुछ पाषाण प्रतिमायें रखीं गईं हैं वस्तुतः यह गर्भगृह है जिसमें देवता मुख्य मंदिर से बाहर आकर विश्राम करता हैं जब देवता यहां आता है तो सारी रात्रि कीर्तन भजन होता है इसे जागर की संज्ञा से जाना जाता है और इस विश्राम स्थल को जगैर कहा जाता है। यहां देवता की पूजा बडू गांव के शांडिल्य ब्राम्हण करते हैं। मंदिर का स्थापत्य काठकुणी शैली में बने भवन का अद्‌भुत नमूना है। बड़े बड़े लकडी के शहतीरों को लम्बाकार और एक-दूसरे को 90 कोन से काटते स्थापित किया गया है जिन्हें आड़े तिरछे अनेक लठ सहायता देते लगते हैं। बीच की जगह में मलबा, पत्थर आदि भरा गया है। छत तिकोनात्मक ढालुआं काष्ठ फलकों से बनाई गई है। मण्डप और गर्भगृह के ऊपर एक ही छत है जिसके ऊपर के कोनात्मक शिखर पर एक पूरे के पूरे देवदार वृक्ष का शहतीर इस तरह रखा गया है कि वह ठीक बीच में स्थिर है जिसके दोनों ओर से स्लेटें ढालुआं छत बनाती दीखतीं हैं। इस बड़े शिखर बनाते शहतीर को कुरूड़ की संज्ञा से जाना जाता है। जब ऐसे धार्मिक भवन की बनावट होती है तो कुरूड़ को तैयार कर विधिवत स्थापित किया जाता है। निर्माण स्थान से परगने के लोग इसे कन्धा देकर मंदिर तक बिना विश्राम किए लाते हैं और बिना इसे कहीं रखे शिखर पर स्थापित करते हैं। मण्डप की भीतरी छत के सामने वाले शिखर के नीचे अनेक लड़ियों वाली एक काष्ठ झालर सारे आमुख के सामने सज्जित है। इस काष्ठ झालर में स्पींडल आकार की काष्ठ प्रतिमायें ,सैंकड़ों की संख्या में ,जैसे एक के बाद एक माल में पिरोई हों,सज्जित हैं। हवा से हिलने पर ये संगीतात्मक ध्वनियां पैदा करती हैं। इन्हें गरूड़ी की संज्ञा से जाना जाता हैं

चिखड़ेश्वर देवता की उत्पत्ति

एक कथानक के अनुसार चिखड गांव की एक पशु चारने वाली अपने पशुओं को चराने जंगल-जाड में जाया करती थी तो उसने देखा कि उस की एक गाय एक ही पौधे की पत्तियां चर कर उस पर मूत कर दिया करती थी पर वह पौधा कभी सूखता नहीं था अथच उसकी कोंपले दूसरे दिन ही हरी हो जातीं थीं। ग्वालिन आश्चर्य चकित थी कि ऐसा कैसे और क्यों होता है। उत्सुक ग्वालिन ने एक रोज खुरपे से उक्त पौधे को उखाड़ फेंका तो उसके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा जब उसने देखा कि पौधे के नीचे से एक आभामय मुखौटा निकल आया है। मान्यता है कि उस समय इतनी जोरदार बिजली चमकी कि उसने उक्त ग्वालिन को जला दिया। लोगों को जब इस चमत्कार का पता चला तो उन्होंने उस देव मुखौटे को एक देवस्थान बना कर उसे पूजना शुरु किया। सर्वप्रथम चिखड़ के स्थान पर इस देव प्रतिमा की पूजा शुरू हुई अतः इसका नाम चिखड़ेश्वर के तौर पर, अर्थात चिखड़ के देवते के रूप में यह प्रसिद्ध हुआ। वर्तमान में इस देवता के दो मंदिर हैं। एक चिखड़ में और दूसरा जनोग में। चूंकि पहले इसे चिखड़ में स्थापित किया गया था जहां इसका बड़ा मंदिर बनाया गया था अतः इसे बड़ी ड्योठी के नाम से जाना गया जब कि जनोग में इस देवता की छोटी डयोठी है।

चिखड़ेश्वर की मान्यता सात परगनों तक होने लगी थी। मधान, गुठान, धमान्दरी, घूंड, मानल, शड़ी देवी, धरेच तथा जैंसा आदि में उन्हें मुख्य देवता के तौर पर आमंत्रित किया जाता है। इन परगनों में होने वाले देव समागमों में चिखड़ेश्वर देवता को सर्वोच्च स्थान पर बैठाया जाता है और सर्वप्रथम इसकी पूजा की जाती है।

देवता की अनेक चमत्कृत कथायें प्रचलित हैं। एक गाथा में बताया गया है कि एक रोज चिखड़ गांव के सभी लोग किसी अन्य देवता की शांद में गये हुए थे। शांद एक बहुत बड़ा अनुष्ठान होता है जो अनेक दशकों, कई बार सैंकड़ों वर्षों में एक बार मनाया जाता है। केवल भण्डारी और जगाला अर्थात चौकीदार वहां रह गए थे। आधी रात के समय जब वे सोए थे कि उनकी गफलत का लाभ उठाते हुए चोरों ने किसी प्रकार लोहे की छड से देवस्थल का द्वार खोला और देव प्रतिमा को उठा ले गए। दूसरे रोज शांद से जब मंदिर के पुजारी तथा दूसरे लोग वापिस आये तो उन्हें बहुत चिंता हुई। एक मजलिस में भण्डारी और जगराले से दरयाफ़्त करना चाहा पर भय से वे कुछ न बोल सके तो तत्कालीन बीजा ठाकुर से शिकायत की गई। ठाकुर ने बहुत प्रयास किया पर कुछ भी पता नहीं चला तो उसने तांत्रिकों को बुलाकर उनसे तांत्रिक विधि से इन चोरों को ढूंढ निकालने के लिए कहा। पर उन्हें अपने अनुष्ठानों से मात्र यह पता चला कि देवता की प्रतिमा को ठाकुर के बासे के रास्ते एक चोटी पर से होते हुए ले जाया गया है पर यह पता नहीं चल सका कि उसे कहां ले जाया गया है।

लोकगाथा में बताया गया है कि इस देव प्रतिमा को पछूंछ गांव, तहसील कुमारसेन का एक व्यक्ति चुरा ले गया था। ज्यों ही उसने चिखड़ेश्वर देवता के क्षेत्र की सीमा से कुमार सेन की सीमा में प्रवेश किया तो देवता के गले से सोने की माला गिर गई। पर वह व्यक्ति उसे अपने गांव पछुंछ ले गया। उसने जब देव मूर्ति को अपने गांव तक पहुंचा दिया तो उसके सभी कदम उलटे पड़ने लगे। अनेक विपत्तियों का उसे सामना करना पड़ा। उसका कोई भी काम सीधा नहीं हो रहा था। फलस्वरूप उसे लगा कि शायद इसका कारण मूर्ति ही है अतः यदि इसे पिघला दिया जाये विपत्ति खत्म हो जाये। उसने यह मूर्ति एक लुहार को दे दी कि वह इसे पिघला दे ताकि इसका असर खत्म हो जाये। यह रुपु नामक लुहार था। लुहार की पत्नी समझदार थी उसने अपने पति को मना किया लेकिन रुपु नहीं माना उसने देव प्रतिमा को गर्म कर जब हथोड़ा चलाया तो वह हथोड़ा उसके सिर पर ही आ पड़ा तो उसके सिर से खून बह निकला। रुपु को तब अपनी पत्नी की बात समझ आई। उसने तुरंत देव प्रतिमा से क्षमा मांगी और वह हथोड़ा और चिमटा देवता के हवाले कर दिया।

पंछुछ निवासी के बारे में जब गांव के कुछ समझदार व्यक्तियों को पता चला तो उन्होंने पंचायत कर यह फैसला किया कि इस देव प्रतिमा को इसके स्थान पर पहुंचा कर प्रायश्चित किया जाये। चुनाचे एक व्यक्ति को इस कार्य को सर अन्जाम देने के लिए कहा गया। उसने बड़ी श्रद्धा से इस प्रतिमा को चिखड पहुंचाया। कहते हैं कि जो व्यक्ति उस प्रतिमा को वापिस चिखड़ लाया था उसे देवता की ओर से आवास और अनेक सुविधायें दी गईं जब कि पंछूछ गांव देवता के प्रकोप से उजाड़ हो गया।

गाथा का एक अंश इस प्रकार है

चिखड़– अरै खाइड़े दै चोरटै लुकै/चोरटे लुकै भाइअ चोरटे लुकै

चिखड़– अरै पजैरे बादै शांदीएं ढुकै/शांदिएं ढुकै पोरै शांदिएं डुकै

आदी आदी रातीएं गोंए बण–अदैपुजी/ वण–अदै पुजी गोएं वाणन्अ दै पुजी

ज़गाला भंडारी कींए सार वीना जाण अ'सार बीना जान कींए सार न ज़ाण

ठाकुरीएं डीन्गुलीएं कर तालै रा नवाण/तालै रा नवाण कर तालै रा नवाण

जोड़ी पजैरै री ठीयोग–अ कै जाउ / ठियोग–अकैजाउ भाइअ ठिओग–अके जाउ
बीजा सिंह–अ–ठाकुर–अ मारा बोल–अ ला का–अ
बोल–अ ला–अ भाइअ बोल–अ ला का–अ
बीजैसिंहै ठाकुरै गालै शादणै लाइ। जोड़ी पजैर री कैंई जोगी आई।
कैंई जोगी आइ भाइअ कैंई जोगी आई।।
बीज़ै सिंहा ठाकुरा म्हारा देओ नींआ चौरे।
देओ नींआं चौरे साइबा देओ नीआं चौरे।।
रूपुरी भरीड़ी भाइअ सुनै रीशलाई, सोनैरी शलाई, भाइउ सुनैरी शलाई
ऐसी जैइ मरती दै केरै देणै गाई। करै देणै गाइए रूपुआ करै शलाई देणै गाई।।
पलकीजै थअड़ अबी माथै के लाई। माथै के लाई अबी माथै के लाई
आवणो पोड़ो इत्तै साइबा धणी री मांड–अ।
धणीरी मांड साइबा धणी री मांड–अ।।
थउड़ाशणैशी देमा चिखड़–अकै डांड–अ।
चिखड़–अ कै डांड–अ दैया चिखड़–अकै डांड–अ।।

चिखड़ेश्वर देवता को अनेक दूसरे नामों से भी जाना जाता है।सयाणा नानू तथा देव बांठिया इस देवता के दूसरे नाम हैं।

यद्यपि सात परगणों में चिखड़ेश्वर देवता का यश फैला है तथापि ठियोग तथा इसके आस–पास के क्षेत्र, सैंज, बल्ग आदि में इस देवता के अनन्य भक्त है। अनेक परिवारों का यह देवता कुल देवता है और बिना इसकी पूजा अर्चना के कोई भी सामाजिक एवम् धार्मिक अनुष्ठान सम्पन्न नहीं होता।

■■■

BOOKS AND JOURNALS CONSULTED

1. Alexander Gerard ,Travels in Koonawar,1841
2. Andrew Wilson,Abode of Snow ,1873
3. Charles J.French,Journal of a tour of upper Hindustan
4. East India Magazine Vol.16 by Alexander
5. Edward J.Buck,Simla Past & Present,Second Edition
6. E.G.Wace Col.Settlement Report ,1881
7. G.F.WhiteViews in india chiefly among himalaya Mountains edited by Emma Roberts,1838
8. G.P.Thomas,Views of Simla,1846
9. Henery Edward Fane,five years in India,1842
10. James Baillie Fraser,The Journal of a tour through part of the Himalaya Mountains,1820
11. J.F.Wymen,Calcutta to Snowy range by an old Indian,1865
12. John C.Omen,Mystics,Ascetics and Saints of India,1894
13. Lady Dufferin,Our Viceregal life in India,1885
14. The Story of Penitent,1867,Biography of Mrs.James
15. Lord Combermere,Journal of a tour in India,1828
16. Lt.George Francis White,Simla & Mussoori Himalaya Mountains
17. Shimla Gazzetteer
18. Village Tales published by John Murray,London,1921
19. W.H.Carey,Simla Guide,1870

PAPERS CONSULTED

The Tribune,Chandigarh

The Times of India

Indian Express,weekend,Chandigarh edition

Dainik Bhasker

Divya Himachal,Shimla edition

PERSONS CONSULTED

Mr. A.N.Walia,Ex. ANE. AIR

Ms. Dhara Sarswati, P.Ex, AIR Shimla

Mr. A.S. Parmar, Sr.Announcer, AIR Shimla

S.K Didwal,Public Library, Ridge,Shimla

Mr. Brij Bhardwaj, Theog,Shimla

Mr. Yogesh Kashyap, manager,Kiayarighat,restaurent

Rev. Avon, Dalhousie

Sister Jane Kelar,Dalhousie

Rev. Bishop Candeth

Pt. Satya Prakash, Kamna Devi, Shimla

Ms. Shanti Bisht, performing artist, AIR, Shimla

Pt. Sita Ram, Chikhad

Assistance

Mr.M.L.Verma

डॉ0 अशोक जेरथ लब्धप्रतिष्ठ लेखक हैं जिनकी चौंतीस पुस्तकें प्रकाशित हो चुकीं हैं। साहित्य,संस्कृति एवं लोकसाहित्य पर डॉ0 जेरथ की मान्यता सर्वविदित है। हिमालयी संस्कृति पर रचित इनकी पुस्तकें 'फोक आर्ट ऑव डुग्गर','स्पेलेंडर ऑव मिनि. एचर पेंटिंग्स','रिपल्स इन द' हिमालयाज' 'हिन्दू शराईन्ज ऑव वेस्टर्न हिमालयाज', शराईन्ज ऑव शक्ति इन द' वेस्टर्न हिमा. लयाज','रजत शिखरों के रूपहले स्वर' देश एवं विदेश में चर्चा का विषय बन चुकी हैं। डॉ0 जेरथ तुलनात्मक साहित्य पर प्रतिष्ठित विद्वान हैं। इनकी कृति,'चेतना प्रवाह और हिन्दी कथा साहित्य' एक मान्यता प्राप्त शोध ग्रंथ है जिसे समालोचकों,शोधकर्त्ताओं एवं चिंतकों ने मन से सराहा है और लगभग सभी विश्वविद्यालयों के भाषा संकायों में इसे उच्च स्थान प्राप्त है। हिन्दी.डोगरी कहानी के तुलनात्मक अध्ययन पर इन्हें साहित्य अकादेमी,दिल्ली ने राष्ट्रवृत्ति देकर सम्मानित किया है। धरती अपनी अपनी व रजत शिखरों के रूपहले स्वर कृतियों पर डॉ0 जेरथ को केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय ने राष्ट्रीय पुरस्कार से सम्मानित किया है। 'आधे चान्द की दुनिया,अद्‌भुत लद्‌दाख' कृति पर डॉ0 जेरथ को इन्दिरागान्धी राजभाषा के प्रतिष्ठित पुरस्कार सें सम्मानित किया जा चुका है। इनके कहानी संग्रह 'अनजाने क्षितिज' पर जम्मू कश्मीर अकादेमी ने सर्वश्रेष्ठ हिन्दी कृति के तौर पर प्रथम पुरस्कार से सम्मानित किया। अभी हाल ही में डॉ0 जेरथ को जम्मू कश्मीर अकादेमी ने 'लाईफ टाईम अचीवमैंट' एवार्ड देकर सम्मानित किया है।

डॉ0 जेरथ अनेक राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की संस्थाओं,अमेरीकन बायोलाजिकल इन्स्टीच्यूट,स्टेट इन्स्टीच्यूट ऑव फोकलोर, एन्थ्रोपॉलोजिकल सोसाइटी,बाल कल्याण संस्थान,कानपुर,जुवेनाईल लिटरेटीयर्स एसोसिएशन,कोलकत्ता,पंजाबी लेखक संघ,हिन्दी साहित्य मण्डल,हिमोत्कर्ष आदि द्वारा सम्मानित किए जा चुके हैं।

डॉ0 जेरथ द्वारा आकाशवाणी एवं दूरदर्शन के लिए प्रस्तुत दस्तावेजी रूपक राष्ट्रीय स्तर पर प्रसारित किए गए हैं और मुक्त कण्ठ से उनकी प्रशंसा हुई है। सम्प्रति इन्स्टीच्यूठ ऑव किएटिव राईटिंग,मास क्योमनीकेन्शन एण्ड हिमालियन स्टडीज़ के निदेशक के पद पर आसीन हैं।